इकाई I शैक्षणिक अध्ययन

PART A - भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं का योगदान 9

शिक्षा (Education) 9

दर्शन (Philosophy) 10

भारतीय परिवेश में दर्शन का अर्थ 10

दर्शन के तत्त्व 12

दर्शन के कार्य 13

भारतीय दर्शन (Indian Philosophy) 13

शिक्षा दर्शन का अर्थ 14

शिक्षा एवं दर्शन का सम्बन्ध 15

शिक्षा दर्शन के सरोकार व क्षेत्र 16

शिक्षक के लिए शिक्षा-दर्शन की उपादेयता 17

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा दर्शन का महत्त्व 17

शिक्षा के दार्शनिक आधार 18

दर्शन का शिक्षा पर प्रभाव 19

शिक्षा का दर्शन पर प्रभाव 19

शिक्षा में भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं का योगदान 20

सांख्य दर्शन 21

सांख्य दर्शन में शिक्षा का अर्थ एवं प्रक्रिया 22

सांख्य दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य 22

सांख्य दर्शन का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण 22

सांख्य दर्शन में शिक्षा का पाठ्यक्रम 22

सांख्य दर्शन में शिक्षण विधियाँ 23

सांख्य दर्शन में गुरु-शिष्य की भूमिका 24

सांख्य दर्शन में अनुशासन 24

सांख्य दर्शन में विद्यालय 24

योगदर्शन 24

योगदर्शन और शिक्षा 25

www.studyofeducation.com

योगदर्शन में शिक्षा का अर्थ एवं प्रक्रिया 25
योगदर्शन में शिक्षा के उद्देश्य 26
योगदर्शन का शिक्षा में महत्त्व 26
वेदान्त दर्शन 27
अद्वैतवाद दर्शन 27
अद्वैतवाद का शैक्षिक चिन्तन 28
विशिष्टाद्वैत दर्शन 28
विशिष्टाद्वैत दर्शन पर आधारित शिक्षा 29
वेदान्त दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य 30
वेदान्त दर्शन में शिक्षा का पाठ्यक्रम 30
वेदान्त दर्शन में शिक्षण विधियाँ 31
वेदान्त दर्शन में अनुशासन 31
वेदान्त दर्शन में शिक्षक की भूमिका 32
वेदान्त दर्शन में छात्र की भूमिका 32
बौद्ध दर्शन 33
बौद्ध दर्शन के उद्देश्य 34
बौद्ध संघ के नियम 34
बौद्ध शिक्षा-दर्शन 35
बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम 35
बौद्ध शिक्षा में शिक्षण विधियाँ 35
बौद्ध शिक्षा में अध्यापक-छात्र सम्बन्ध 36
जैन दर्शन 37
जैन दर्शन में शिक्षा का अर्थ 39
जैन दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य 39
जैन दर्शन में पाठ्यक्रम 40
जैन दर्शन में शिक्षण विधि 40
जैन दर्शन में अनुशासन 41
जैन दर्शन में छात्र 41
जैन दर्शन में शिक्षक 42
दयानन्द दर्शन 43
दयानन्द दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य 43

www.studyofeducation.com

सार्वभौम और अनिवार्य शिक्षा 44
घर में शिक्षा 44
माता द्वारा शिक्षा 44
पिता द्वारा शिक्षा 45
पुरस्कार एवं दण्ड का सिद्धान्त 45
आदर्श द्वारा नैतिक शिक्षा 45
आदर्श शिक्षक द्वारा शिक्षा 46
दयानन्द दर्शन में शिक्षा व्यवस्था के सिद्धान्त 46
दयानन्द दर्शन में बहुमुखी पाठ्यक्रम 46
दयानन्द दर्शन में शिक्षा में विघ्न 46
दयानन्द दर्शन में ब्रह्मचर्य का महत्त्व 47
दयानन्द दर्शन में स्त्रियों की शिक्षा 47
इस्लामी धर्म दर्शन पर आधारित शिक्षा (Education Based on Islamic Religion) 47
इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षा का अर्थ 48
इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षा का उद्देश्य 48
इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षा का पाठ्यक्रम 49
इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षण विधियाँ 49
इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षक 49
इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षार्थी का कर्तव्य 50
इस्लामी धर्म दर्शन में अनुशासन 50
पाश्चात्य विचारधाराओं का योगदान 51
पाश्चात्य शिक्षा दर्शन (Western Education Philosophy) 51
आदर्शवाद (Idealism) 51
आदर्शवाद के प्रमुख सिद्धान्त 52
आध्यात्मिक जगत का सिद्धान्त 53
वस्तु या पदार्थ की अपेक्षा विचार का सिद्धान्त 53
जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य के महत्त्व का सिद्धान्त 53
आध्यात्मिक मूल्यों का सिद्धान्त 53
मन के महत्त्व का सिद्धान्त 54
व्यक्तित्व के विकास का सिद्धान्त 54
भिन्नता में एकता के सिद्धान्त का पूर्ण समर्थन 54

www.studyofeducation.com

आदर्शवाद और शिक्षा के उद्देश्य 55

आत्मानुभूति 55

व्यक्तित्व का विकास 55

आध्यात्मिक उन्नति करना 55

सांस्कृतिक विरासत की रक्षा, विकास एवं हस्तान्तरण 56

आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति 56

पवित्र जीवन के लिए तैयारी करना 56

आदर्शवाद और पाठ्यक्रम 57

आदर्शवाद और शिक्षण विधियाँ 58

आदर्शवाद और शिक्षक 59

आदर्शवाद और बालक 60

आदर्शवाद और विद्यालय 60

आदर्शवाद और अनुशासन 60

आदर्शवादी शिक्षा की विशेषता - 61

आदर्शवाद की आलोचना 62

यथार्थवाद (Realism) 63

यथार्थवादी विचारधाराएँ 64

यथार्थवादी शिक्षा की विशेषताएँ 65

यथार्थवाद के प्रमुख सिद्धान्त 65

प्रमुख पुस्तकें एवं उनके लेखक 66

यथार्थवाद एवं शिक्षा का उद्देश्य 66

यथार्थवाद एवं शिक्षा की इकाइयाँ 67

यथार्थवाद एवं पाठ्यक्रम 67

यथार्थवाद एवं शिक्षण विधियाँ 68

यथार्थवाद एवं शिक्षक 68

यथार्थवाद एवं बालक 68

यथार्थवाद एवं विद्यालय 69

यथार्थवाद एवं अनुशासन 69

यथार्थवादी शिक्षा की देन 69

प्रकृतिवाद की परिभाषाएँ 71

शिक्षा में प्रकृतिवाद के रूप 72

www.studyofeducation.com

प्रकृतिवाद की विशेषताएँ 72
प्रकृतिवादी शिक्षा के दोष 73
प्रकृतिवाद के सिद्धान्त 74
प्रकृतिवादी शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ 74
प्रकृति का अनुसरण 74
बाल-केन्द्रित शिक्षा पर बल 75
पुस्तकीय शिक्षा का विरोध 75
बालक की स्वतन्त्रता पर बल 75
बालक की योग्यताओं, क्षमताओं और रुचियों पर बल 75
इन्द्रिय प्रशिक्षण पर बल 76
प्रकृतिवादी शिक्षा के उद्देश्य 76
प्रकृतिवाद एवं पाठ्यक्रम 77
प्रकृतिवाद और शिक्षण विधियाँ 78
प्रकृतिवाद एवं अनुशासन 79
प्रकृतिवाद एवं शिक्षक 79
प्रकृतिवाद एवं बालक 80
प्रकृतिवाद एवं विद्यालय 80
प्रकृतिवादी शिक्षा के प्रभाव 81
प्रयोजनवाद/व्यवहारवाद/व्यावहारिकतावाद (Pragmatism) 82
प्रयोजनवाद की परिभाषाएँ 83
प्रयोजनवाद सम्बन्धी विचार 83
प्रयोजनवाद के रुप 85
प्रयोजनवाद के सिद्धान्त 85
प्रयोजनवाद एवं शिक्षा 86
प्रयोजनवाद एवं शिक्षा के उद्देश्य 87
प्रयोजनवाद और पाठ्यक्रम 88
प्रयोजनवाद एवं शिक्षण विधियाँ 89
प्रयोजनवाद एवं शिक्षक 89
प्रयोजनवाद एवं विद्यालय 90
प्रयोजनवाद एवं अनुशासन 90
प्रयोजनवाद के गुण 90

www.studyofeducation.com

प्रयोजनवाद के दोष 90
प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव 91
मार्क्सवाद (Marxism) 91
मार्क्सवाद पर आधारित शिक्षा 92
मार्क्स के अनुसार शिक्षा 93
मार्क्स के अनुसार शिक्षा के प्रकार 93
मार्क्स के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य 94
मार्क्सवाद और शिक्षा का पाठ्यक्रम 95
मार्क्सवादी शिक्षण विधियाँ 96
मार्क्सवाद और अध्यापक 96
मार्क्सवाद और छात्र 96
मार्क्सवाद और विद्यालय 96
मार्क्सवादी शिक्षा में अनुशासन 97
मार्क्सवाद का शिक्षा पर प्रभाव 97
अस्तित्ववाद (Existentialism) 98
अस्तित्ववाद के सिद्धान्त 99
अस्तित्ववाद की विशेषताएँ 100
अस्तित्ववाद एवं शिक्षा 100
अस्तित्ववाद एवं शिक्षा के उद्देश्य 101
अस्तित्ववादी शिक्षा में शिक्षक एवं शिक्षार्थी 102
अस्तित्ववाद और पाठ्यक्रम 103
अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षण विधियाँ 103
अस्तित्ववाद और अनुशासन 104
शिक्षा का समाजशास्त्रीय आधार 104
शिक्षा का समाजशास्त्रीय उपागम (Sociological Approaches of Education) 104
प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया (Symbolic Interaction) 105
परस्पर क्रिया की परिभाषाएँ 106
परस्पर क्रिया के प्रकार 106
मीड का प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया सिद्धान्त 107
हरबर्ट ब्लूमर का प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया सिद्धान्त 108
संरचनात्मक प्रकार्यवाद (Structural Functionalism) 109

www.studyofeducation.com

दुर्थीम का प्रकार्यवाद (Durkheim's Functionalism) 111
संघर्ष सिद्धान्त (Conflict Theory) 113
मार्क्स का संघर्ष सिद्धान्त 115
डेहरेनडॉर्फ का संघर्ष सिद्धान्त 116
कोजर का संघर्ष सिद्धान्त 116
कॉलिन्स का संघर्ष सिद्धान्त 117
सामाजिक संस्थाओं की संकल्पना (Concept of Social Institutions) 117
शिक्षा के विकास में विद्यालय का महत्त्व 123
शिक्षा के विकास में समाज का महत्त्व 124
सामाजिक आन्दोलनों की संकल्पना (Concept of Social Movements) 126
सामाजिक आन्दोलन के प्रकार 127
सामाजिक आन्दोलनों के सिद्धान्त 127
सापेक्षिक वंचन के सिद्धान्त 128
संसाधन गतिशीलता का सिद्धान्त 128
राजनीतिक प्रक्रिया का सिद्धान्त 129
नव सामाजिक आन्दोलन सिद्धान्त 129
समाजीकरण तथा शिक्षा 130
शिक्षा एवं समाजीकरण में सम्बन्ध (Relation between Education and Socialisation) 130
शिक्षा द्वारा सामाजिक एवं वैयक्तिक मूल्यों का विकास 131
शिक्षा और संस्कृति (Education and Culture) 132
सामाजिक परिवर्तन (Social Change) 133
सामाजिक परिवर्तन के निर्णायक कारक 134
सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया 135
सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ 136
सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त 136
सामाजिक परिवर्तन के रुप 137
सामाजिक परिवर्तन के मूल तत्त्व 137
सामाजिक परिवर्तन में बाधक तत्त्व 138
शैक्षिक विकास में विचारकों का योगदान 139
स्वामी विवेकानन्द (Swami Vivekanand) 139
स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा 140

www.studyofeducation.com

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा में योगदान 142
रवीन्द्रनाथ टैगोर (Rabindranath Tagore) 142
टैगोर के शिक्षा सम्बन्धी विचार 143
टैगोर के शिक्षा के उद्देश्य 143
महात्मा गाँधी (Mahatma Gandhi) 144
गाँधीजी के अनुसार शिक्षा का अर्थ 145
गाँधी जी के शिक्षा के उद्देश्य 146
गाँधीजी का शिक्षा में योगदान 148
श्री अरबिन्दो (Aurobindo) 148
श्री अरबिन्दो के अनुसार शिक्षा का अर्थ 149
श्री अरबिन्दो के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य 150
जे कृष्णामूर्ति (JKrishnamurthy) 152
कृष्णामूर्ति के अनुसार शिक्षा का अर्थ 152
पाउलो फ्रेरे (Paulo Freire) 153
पाउलो फ्रेरे के अनुसार शिक्षा 154
मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट (Marry Wollstonecraft) 154
नेल नौडिंग्स (Nel Nodding) 156
सावित्रीबाई फुले (Savitribai Phule) 157
सावित्रीबाई फुले का शिक्षा में योगदान 158
भारतीय संविधान में प्रतिष्ठापित राष्ट्रीय मूल्य 159
संविधान के आदर्श (Ideal of Constitution) 159
समाजवाद 159
भारतीय संविधान तथा समाजवाद 160
धर्मनिरपेक्षता 160
धर्मनिरपेक्ष शिक्षा के उद्देश्य 161
न्याय 161
सामाजिक न्याय 161
आर्थिक न्याय 162
राजनैतिक न्याय 162
स्वतन्त्रता 162
लोकतन्त्र (जनतन्त्र) 163

www.studyofeducation.com

शिक्षा का लोकतान्त्रिक प्रारूप 163
लोकतान्त्रिक शिक्षा के उद्देश्य 164
समानता 164
स्वाधीनता 165

PART A - भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं का योगदान

शिक्षा (Education)

www.studyineducation.com

शिक्षा जीवन की वह विशिष्ट प्रक्रिया है, जो निरन्तर जीवन को नया रूप एवं नया नाम प्रदान करती है। "किसी भी दर्शन के निर्धारण तथा विकास के लिए पर्याप्त सूक्ष्म निरीक्षण, मनन तथा चिन्तन की आवश्यकता होती है। दार्शनिक सिद्धान्तों को मूर्त रूप शिक्षा की प्रक्रिया के माध्यम से ही दिया जाता है। दर्शन से सम्बन्ध बनाए बिना शिक्षा की प्रक्रिया उत्तम रीति से नहीं चल सकती है।"

शिक्षा शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार, शिक्षा एक विकास सम्बन्धी प्रक्रिया है अर्थात् शिक्षा मानव जीवन में निरन्तर प्रवाहमान प्रक्रिया है। इस विकास की गति एवं प्रकृति को समझने के लिए शिक्षा की सामग्री का ज्ञान होना परम आवश्यक है। शिक्षा को आंग्ल भाषा में 'एजुकेशन' (Education) कहते हैं। 'एजुकेशन' शब्द की व्युत्पत्ति निम्नलिखित शब्दों से हुई है -

शिक्षा शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा से हुई है। लैटिन भाषा के "एडूकेटम' (Educatum) शब्द का अर्थ है-शिक्षित करना। "प्रत्येक बालक के अन्दर जन्म से ही कुछ जन्मजात प्रवृत्तियाँ होती हैं। जैसे-जैसे बालक वातावरण के सम्पर्क में आता जाता है, वैसे-वैसे उसकी शक्तियों को अन्दर से बाहर की ओर विकसित करना ही शिक्षा है।" इस प्रकार शिक्षा शब्द का अर्थ जन्मजात शक्तियों का सर्वांगीण विकास करना है। अतः व्यापक अर्थ में शिक्षा का तात्पर्य मानव जीवन के उन समस्त पक्षों से जो उसे परिष्कृत रूप में ढालते हैं तथा सभ्य बनाते हैं। शिक्षा का संकुचित रूप से तात्पर्य विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा से है। वास्तविक रूप में शिक्षा का प्रथम स्रोत राज्य होता है। शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के मत निम्नलिखित हैं

- **जे एस मिल** के अनुसार, "शिक्षा द्वारा एक पीढ़ी के लोग दूसरी पीढ़ी के लोगों में संस्कृति का संक्रमण करते हैं, ताकि वे उसका संरक्षण कर सकें और यदि सम्भव हो तो उसमें उन्नति भी कर सकें।"
- **टैगोर** के अनुसार, "शिक्षा का अर्थ मस्तिष्क को इस योग्य बनाना है कि वह सत्य की खोज कर सके तथा अपना बनाते हुए उसको व्यक्त कर सके।"
- **फ्रोबेल** के अनुसार, "शिक्षा वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियों बाहर निकलती हैं।"
- **विवेकानन्द** के अनुसार, "शिक्षा मनुष्य के अन्दर सन्निहित पूर्णता का प्रदर्शन है।"
- **काण्ट** के अनुसार, "शिक्षा व्यक्ति को उस पूर्णता का विकास है, जिसकी उसमें क्षमता है।"
- **सुकरात** के अनुसार शिक्षा का अर्थ प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में अदृश्य रुप से विद्यमान संसार के सर्वमान्य विचारों को प्रकाश में लाना।"
- **जे. कृष्णामूर्ति** के अनुसार, "शिक्षा संवाद की प्रक्रिया और स्नेह की अनुभूति है।"
- **पाल फ्रेरे** के अनुसार, "शिक्षा का अर्थ सम्प्रेषण एवं संवाद है न कि ज्ञान का हस्तान्तरण।"
- **मैकेंजी** के अनुसार, "शिक्षा के संकुचित अर्थ का तात्पर्य बच्चों द्वारा उनकी शक्तियों के विकास के लिए चेतनापूर्ण प्रयास से है।"

www.studyofeducation.com

दर्शन (Philosophy)

दर्शन अंग्रेजी भाषा के 'फिलॉसफी' (Philosophy) शब्द का रुपान्तर है। इस शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के दो शब्दो 'फिलोस' (Philos) तथा सोफिया' (Sophia) से हुई है। 'फिलोस' का अर्थ है- प्रेम अथवा अनुराग और 'सोफिया' का अर्थ है-ज्ञान अर्थात् फिलॉसफी का शाब्दिक अर्थ ज्ञान के प्रति अनुराग अथवा ज्ञान का प्रेम है। विशिष्ट तथा अधिक प्रत्यक्ष रुप में दर्शन का अर्थ अमूर्त चिन्तन करने के उस प्रयास से है, जिसके द्वारा आत्मा, ईश्वर, प्रकृति तथा सम्पूर्ण जीवन का रहस्य उद्घाटन किया जाता है। वास्तव में सत्य की खोज करना ही दर्शन है।

भारतीय परिवेश में दर्शन का अर्थ

'दर्शन' पद की व्युत्पत्ति के दो अर्थ है। पहले, दुश्यते अनेन इति दर्शनम्'। इस व्युत्पत्ति के अनुसार, संस्कृत में दर्शन का अर्थ होता है जिसके द्वारा देखा जाए। दूसरे, 'दर्शन' शब्द से वे सभी पद्धतियाँ अपेक्षित हैं, जिनके द्वारा परमार्थ का ज्ञान होता है। देखा जाए' इस पद का अर्थ यो तो ज्ञान प्राप्त किया जाए' यह भी हो सकता है, फिर भी इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना उचित है कि ज्ञान प्राप्त करने के अनेक साधन है; जैसे-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि, किन्तु इन सभी में सबसे प्रसिद्ध और प्रमुख साधन प्रत्यक्ष है।

दर्शन के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के मत निम्नलिखित है

- **प्लेटो** के अनुसार, "जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करने तथा नई-नई बातों को जानने के लिए रुचि प्रकट करता है तथा जो कभी सन्तुष्ट नहीं होता, उसे दार्शनिक कहा जाता है।" .
- **हैण्डरसन** के अनुसार, "दर्शन ऐसी सबसे जटिल समस्याओं का कठिन, अनुशासित तथा सावधानी से किया हुआ विश्लेषण है, जिनका मानव ने कभी अनुभव किया हो।"
- **ज्ञान शोपेनहावर** के अनुसार, "संसार का प्रत्येक व्यक्ति जन्मजात दार्शनिक है।"
- **कौटिल्य** के अनुसार, "आन्वीक्षिकी विद्या ही दर्शन है।"
- **डॉ. बलदेव उपाध्याय** के अनुसार, "दर्शन एक ठोस सिद्धान्त है, न कि अनुमान या कल्पना, इसे व्यवहार में लाकर व्यक्ति निर्धारित लक्ष्य या माग प्रशस्त कर लेता है।"
- **डॉ. राधाकृष्णन** के अनुसार, "यथार्थता के स्वरुप का तार्किक विवेचन दर्शन है।"
- **महात्मा गाँधी** के अनुसार, दर्शन एक प्रयोग है जिसमें मानव व्यक्तित्व एवं सत्य उसकी विषय-वस्तु होती है और उसको जानने के लिए हम प्रमाण एकत्रित करते हैं।"

www.studyofeducation.com

अतः दर्शनशास्त्र को एक ऐसे प्रयास के रुप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके | सत्यता से विचार किया जाता है द्वारा मानव-अनुभूतियों के सम्बन्ध में समग्र रुप अथवा जो सम्पूर्ण अनुभूतियों को बोधगम्य बनाता है।

दर्शन के प्रकार एवं प्रकार्य - दर्शन के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं

1. आदर्शवादी या विचारवादी
2. भौतिक या प्रकृतिवादी
3. बहुवादी या अनेकेश्वरवादी

दर्शन के प्रमुख प्रकार्य निम्नलिखित है

1. विश्लेषणात्मक प्रकार्य
2. मानकी प्रकार्य
3. बौद्धिक प्रकार्य

दर्शन के तत्त्व

दर्शन के तत्त्व शिक्षा की प्रक्रिया, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, विधियाँ, प्रविधियाँ, शिक्षक की भूमिका, शिक्षा की व्यवस्था आदि का स्वरुप विकसित करते हैं। दर्शन को शिक्षा सिद्धान्त माना जाता है। इसलिए दार्शनिकों ने शिक्षण संस्थाओं तथा आश्रमों की स्थापना की, जिससे दार्शनिक विचारों को व्यावहारिक रुप प्रदान किया जा सके। दर्शन केवल मीमांसा का ही विषय नहीं, अपितु इसका जीवन से सीधा सम्बन्ध होता है। शिक्षा व दर्शन के सम्बन्ध को निम्न चार्ट से समझा जा सकता है

दर्शन एवं शिक्षा

दर्शन के तत्त्व	शिक्षा के घटक
1 तत्त्वमीमासा (सत्य का प्रकाश)	1 शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य
2 ज्ञानमीमासा (ज्ञान स्वरुप)	2 शिक्षा की प्रक्रिया
3 मूल्यमीमांसा (ज्ञान के चयन के मानक)	3 पाठ्यक्रम का स्वरुप
4. तर्कमीमांसा (ज्ञान प्राप्त करने के साधन)	4 शिक्षण की विधियाँ 5 शिक्षण की प्रविधियाँ 6 शिक्षक की भूमिका 7 विद्यालय प्रबन्धन 8 परीक्षा प्रणाली

www.studyofeducation.com

दर्शन के तत्त्वों का सम्बन्ध सत्य के प्रत्यय से होता है, जिसे **तत्त्वमीमांसा** कहा जाता है। ज्ञान के प्रत्यय का सम्बन्ध ज्ञानमीमांसा से होता है। ज्ञान को अर्जित करने की प्रक्रिया तार्किक चिन्तन पर आधारित होती है, जिसमें **आगमन** व **निगमन** चिन्तन को प्राथमिकता दी जाती है। ज्ञान के चयन के लिए जो मानक प्रयोग किए जाते हैं,
मूल्य कहा जाता है। इसका विवेचन मूल्यमीमांसा के अन्तर्गत होता है। होती है। दर्शन के ये सभी तत्त्व शिक्षा के घटकों के स्वरुप को आधार मुल्यों के प्रति प्रतिबद्धता संवेदनशीलता तथा आचरण की आवश्यकता प्रदान करते हैं।

दर्शन के कार्य

दर्शन के कार्य निम्नलिखित हैं

- दर्शन व्यक्ति की जिज्ञासा की तृप्ति करके ज्ञान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।
- यह शब्दों और अर्थों का विश्लेषण करके कार्य की सही दिशा निश्चित करता है।
- यह वास्तविक सत्य की खोज करने का प्रयास करता है तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा प्राप्त सत्यो में अन्तर्विरोधो को यह दूर करता है।
- यह ध्यान को केन्द्रित करने में व्यक्ति की सहायता करता है। सांसारिक इच्छाएँ एवं इन्द्रियजनित कामनाएं संयम प्राणायाम, धारणा द्वारा चित्तवृत्तियों का विरोध करना सम्भव है तथा इस कार्य में दर्शन सहायता करता है।
- यह जीव, जगत्, सत्, चित्, आनन्द, आत्मन्, परमात्मन्, मनम् आदि से सम्बन्धित प्रश्नो का समाधान ढूँढने का प्रयास करता है।
- यह मानव-जीवन के आदि अन्त पर विचार करके जीवन को उद्देश्यपूर्ण बनाता है।
- यह जीवन की विभिन्नताओं और विसंगतियों को सामंजस्य में लाने का प्रयास करता है।
- यह तथ्यों का मात्र संग्रह न करके उनमें व्याप्त सम्बन्धों को देखता है तथा प्रत्येक अनुभवगम्य वस्तु की आत्मा को देखने का प्रयास करता है।

भारतीय दर्शन (Indian Philosophy)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के प्राचीनतम ग्रन्थ 'वेद' ही हैं, भारतीय दर्शन का स्रोत वेद है। वेद कोई दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है, वरन् दर्शनों के आधारभूत ग्रन्थ है। वेदों ने बाद के भारतीय दर्शनों पर अत्यधिक प्रभाव डाला, जिन्हें आज हम षड्दर्शन कहते हैं। वे सभी वेदों को मानने वाले हैं।

यद्यपि कुछ दर्शन वेदों को नहीं मानते, इनमें चार्वाक, बौद्ध तथा जैन शामिल है। इस दृष्टि से भी वेदों का महत्त्व है, क्योंकि भारत में जो चिन्तन हुआ, वह या तो वेदों के समर्थन के लिए या खण्डन के लिए। उल्लेखनीय है कि पहले 'नास्तिक' शब्द वेदनिन्दक के लिए प्रयुक्त होता था, किन्तु बाद में इसका अर्थ 'अनीश्वरवादी' हो गया।

- ★ श्रीमद्भागवद्गीता नीतिशास्त्र का विश्वविख्यात ग्रन्थ है गीता का मुख्य सन्देश 'निष्काम कर्म' है अर्थात् बिना फल की इच्छा किए हुए कर्म करना चाहिए। गीता में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म-तीन मार्गों की महिमा बताई गई है।

www.studyofeducation.com

★ चार्वाक दर्शन भौतिकवादी दर्शन है। इसके अनुसार जड़-जगत सत्य है और यह वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-इन चार भौतिक तत्त्वों से बना है। चेतना की उत्पत्ति भौतिक तत्त्व से ही है।

★ जैन दर्शन के अनुसार, प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान एवं शब्द भी प्रमाण है। इस दर्शन के अनुसार जितना सजीव शरीर है, उतना ही चैतन्य जीव है। संसारिक बन्धन से छुटकारा पाने हेतु सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र, तीन उपाय बताए गए हैं।

★ बौद्ध दर्शन के अनुसार, जगत के सभी जीवों में एवं सभी दशाओं में दुःख वर्तमान है और इस दुःख का कारण है क्योंकि कोई भी भौतिक आध्यात्मिक वस्तु अकारण नहीं है। संसार की सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। मरण का कारण जन्म जन्म का कारण तृष्णा है और तृष्णा का कारण अज्ञान है। दुःखों के कारण यदि नष्ट हो जाए तो दुःख का अन्त भी हो जाएगा। चौथा सत्य 'दुःख-निवृत्ति के उपाय के रुप हैं।

शिक्षा दर्शन का अर्थ

www.studyofeducation.com

प्राचीनकाल में किसी भी प्रकार को दर्शन कहा जाता था, परन्तु जैसे-जैसे ज्ञान के क्षेत्र में विकास हुआ. वैसे-वैसे हमने उसे अलग-अलग अनुशासनों (विषयों) में विभाजित करना प्रारम्भ किया। यथा-मानव शास्त्र, धर्मशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र इत्यादि। ज्ञान की उस शाखा को जिसमें अन्तिम सत्य (Ultimate Reality) की खोज की जाती है, उसे दर्शन कहा जाता है।

सर जॉन एडम्स (Sir John Adams) के अनुसार, "शिक्षा, दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पहलू तथा जीवन के आदर्शों को वास्तविक रुप देने का क्रियात्मक साधन है।' सामान्यतः शिक्षा वह प्रभाव है, जो किसी प्रबल विश्वास से युक्त व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति पर इस उद्देश्य से डाला जाता है कि दूसरा व्यक्ति भी उसी विश्वास को ग्रहण कर ले।

एडम्स ने शिक्षा-विषयक के अनेक विश्लेषण में निम्नलिखित बातें रखी हैं-

- **यह प्रक्रिया केवल चेतनशील (Conscious) ही नहीं, वरन् आयोजित (Deliberate) भी है।**
- **शिक्षक या गुरु के मस्तिष्क में स्पष्ट रुप से यह आशय होता है कि वह शिष्य के विकास को सुधारे।**
- **शिक्षा की द्विमुखी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व के विकास में सुधार करने के लिए उस पर प्रभाव डालता है।**

शिक्षा के विकास को सुधारने के दो साधन हैं

(i) शिक्षक के व्यक्तित्व का शिष्य के व्यक्तित्व पर सीधा प्रभाव डालना

(ii) ज्ञान के विभिन्न रुपों का प्रयोग।

हेण्डरसन के मतानुसार, "शिक्षा-दर्शन शिक्षा की समस्याओं के अध्ययन में दर्शन में प्रयोग है।"

शिक्षा दर्शन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कनिंघम (Cunningham) ने लिखा है-प्रथम, दर्शन सभी वस्तुओं का विज्ञान है, इस प्रकार शिक्षा-दर्शन, शिक्षा की समस्याओं को अपने सभी मुख्य पक्षों में देखता है।

द्वितीय, दर्शन सभी वस्तुओं को अन्तिम तर्कों एवं कारणों के माध्यम से जानने का विज्ञान से है। इसलिए भी शिक्षा-दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में गहनतम समस्याओं का समग्र रुप में अध्ययन करता है और शिक्षा विज्ञान उन समस्याओं को अध्ययन के लिए छोड़ देता है, जो तात्कालिक हैं तथा जिनका वैज्ञानिक विधि से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है, उदाहरणस्वरुप-"छात्र-योग्यता के मापन की समस्या।"

शिक्षा एवं दर्शन का सम्बन्ध

शिक्षा तथा दर्शन के बीच केवल घनिष्ठ सम्बन्ध ही नहीं, अपितु दोनों एक-दूसरे पर आश्रित भी हैं। दर्शन जीवन के उस वास्तविक लक्ष्य को निर्धारित करता है, जिसे शिक्षा को प्राप्त करना है। दर्शन शिक्षा के विभिन्न अंगों को प्रभावित करता है। शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक साधन है। शिक्षा लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन भी है। शिक्षाशास्त्री समय-समय पर दार्शनिकों के सम्मुख प्रायः ऐसी नई-नई तथा कठिन समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रस्तुत करते हैं, जो उन्हें अध्यापन कार्य के समय कठिनाई देती हैं।

इस प्रकार शिक्षा नए दर्शन को जन्म देती है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि महान् दार्शनिक महान् शिक्षाशास्त्री भी हुए हैं। सभी दार्शनिकों ने अपने-अपने दर्शन को क्रियात्मक अथवा व्यावहारिक रुप देने के लिए अन्त में शिक्षा का ही आश्रय लिया है। शिक्षा तथा दर्शन के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विचार निम्नलिखित है

- **स्पेन्सर** के अनुसार, "वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दर्शन ही कर सकता है।"
- **एडम्स** के अनुसार, "शिक्षा दर्शन का क्रियाशील पक्ष है। यही दार्शनिक चिन्तन का सक्रिय पहलू है।"
- **जे एस रॉस** के अनुसार, "दर्शन तथा शिक्षा किसी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जो एक ही वस्तु के विभिन्न दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करते हैं और वे एक-दूसरे में अन्तर्निहित हैं।"
- **हरबर्ट** के अनुसार, "जब तक समस्त दार्शनिक समस्याओं को व्यावहारिक रुप नहीं दिया जाएगा, तब तक शिक्षा को चैन नहीं आ सकता।"

www.studyofeducation.com

- **रॉस** ने अपनी परिभाषा में स्पष्ट किया है कि "शिक्षा एवं दर्शन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दर्शन सैद्धान्तिक पहलू है, जबकि शिक्षा गतिशील तथा व्यावहारिक पहलू है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। दर्शन तब तक अधूरा रहता है जब तक उसकी व्यावहारिकता न हो और शिक्षा का स्वरुप बिना दर्शन के विकसित नहीं किया जा सकता।"

शिक्षा से सम्बन्धित मूल प्रश्नों का उत्तर दर्शन ही देता है; जैसे

- शिक्षा क्यों दी जानी चाहिए?
- गणित क्यों पढ़ाया जाना चाहिए?
- शिक्षा के पाठ्यक्रम का स्वरुप क्या हो?
- शिक्षा की प्रक्रिया क्या हो?
- शिक्षक की क्या भूमिका होनी चाहिए?

शिक्षा दर्शन के सरोकार व क्षेत्र

सरोकार (Concerns) शिक्षा-दर्शन शिक्षा के सभी पहलुओं पर विचार करता है। इसके अन्तर्गत शिक्षा का उद्देश्य क्या हो? उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए क्या पाठ्यक्रम बनाया जाए तथा अन्त में उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पढ़ाने या शिक्षा देने की विधि क्या हो इत्यादि सभी पक्षों पर विचार किया जाता है। उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में ज्ञान को विभिन्न शाखाओं में विभाजित नहीं किया गया था। उस समय ज्ञान की सभी शाखाएँ दर्शन ही थीं। थेल्स को पश्चिमी-दर्शन का जन्मदाता माना है, किन्तु उसने वैज्ञानिक पद्धति अपनाई थी। अरस्तू उच्चकोटि का दार्शनिक था, किन्तु इसे विज्ञान का जन्म दाता माना जाता है।

www.studyofeducation.com

क्षेत्र (Scope) शिक्षण-विधि के में विज्ञान तो योगदान देता ही है, शिक्षा-दर्शन का योगदान भी कम नहीं है। आज शिक्षा-दर्शन का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो गया है। इसके अन्तर्गत शिक्षा सम्बन्धी समस्त तत्त्वों एवं समस्याओं
यथा-शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, शिक्षक, शिक्षालय संगठन और अनुशासन आदि का अध्ययन करते हैं। इन क्षेत्रों में शिक्षा दर्शन की भूमिका का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है

- **उद्देश्यों** का निर्धारण शिक्षा की प्रक्रिया में सर्वप्रथम जो बात हमारे सामने आती है, वह है शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करना। अत: शिक्षा-दर्शन शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- **पाठ्यक्रम** केवल पाठ्यक्रम को बना लेने से ही उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो जाती, बल्कि पाठ्यक्रम का कार्यान्वियन करना उसे सफल बनाना भी आवश्यक होता है। पाठ्यक्रम को संचालित करने वाला शिक्षक होता है और इसकी सफलता शिक्षण-विधियों पर ध्यान देकर उपयोगी शिक्षण-विधि के प्रयोग में सहायता देता है।

- **सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र** शिक्षा-दर्शन सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक उपलब्धियों आदि के क्षेत्र में भी गहन अध्ययन और विचार करता है और उसी के अनुरुप शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ आदि निर्धारित करती है।

- **शिक्षालय संगठन और अनुशासन** शिक्षा-दर्शन का एक विशेष महत्त्वपूर्ण क्षेत्र विद्यालय संगठन एवं अनुशासन आदि की समस्या का अध्ययन करना है। विद्यालय में अनुशासन का स्वरुप क्या हो अथवा अनुशासनहीनता को किस प्रकार दूर किया जाए आदि विषयों का अध्ययन दिशा-दर्शन में ही किया जाता है।

शिक्षक के लिए शिक्षा-दर्शन की उपादेयता

शिक्षक के लिए शिक्षा-दर्शन की उपादेयता के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है

जॉन डीवी के अनुसार, "शिक्षा-दर्शन बने बनाए विचारों को व्यवहार की एक व्यवस्था पर लागू करना नहीं है, जिसमें पूर्णतया भिन्न उद्गम और प्रयोजन होते हैं। वह तो समकालीन सामाजिक जीवन की समस्याओं के विषय में सही मानसिक और नैतिक अभिवृत्तियों के निर्माण की समस्याओं से सम्बन्धित है अर्थात् शिक्षक शिक्षा-दर्शन से शिक्षण सिद्धान्त प्राप्त करता है।"

स्पेंसर के अनुसार, "केवल एक सच्चा दार्शनिक ही शिक्षा को व्यावहारिक रुप दे सकता है। वह विद्यार्थियों से कैसे व्यवहार करता है और उन्हें अपनी बात कैसे समझाता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षार्थी उसके लिए क्या हैं।"

बर्टेण्ड रसेल के अनुसार, "दर्शन शास्त्र का अध्ययन प्रश्नों के सुनिश्चित उत्तर प्राप्त करने हेतु नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि स्वयं प्रश्नों के लिए किया जाना चाहिए, क्योंकि ये प्रश्न सम्भावनाओं की हमारी अवधारणा को व्यापक बनाते हैं। हमारी बौद्धिक कल्पना को समृद्ध करते हैं और हठवादी सुनिश्चितता को कम करते हैं, जोकि कल्पना के विरुद्ध मस्तिष्क को बन्द कर देती है, बल्कि सर्वोपरि क्योंकि विश्व की महानता जिस पर दर्शन विचार करता है मस्तिष्क को भी महान् और विश्व से एकीकरण के योग्य बना देती है, जोकि उसके सर्वोच्च शुभ का निर्माण करता है।" "

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा दर्शन का महत्त्व

www.studyofeducation.com

शिक्षा-दर्शन में 'शिक्षा' और 'दर्शन' दो शब्द मिले हुए हैं तथा ये दोनों शब्द मानव के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। ये दोनों अंग एक सिक्के के दो पहलू माने जाते हैं। दर्शन जीवन का विचारात्मक (सैद्धान्तिक) पक्ष है, जबकि शिक्षा क्रियात्मक (व्यावहारिक) पक्ष है।

शिक्षा-दर्शन का महत्त्व शिक्षक के लिए निम्नलिखित कारणों से है

- शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का हल
- शिक्षा का पथ-प्रदर्शन
- शैक्षणिक प्रश्न जीवन दर्शन से सम्बन्धित
- शिक्षा प्रक्रिया की स्पष्टता
- शिक्षा में प्रयोग के लिए अवसर
- शिक्षा और दर्शन अन्योन्याश्रित
- शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण
- शिक्षा के सिद्धान्त, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, छात्र प्रकाशक आदि की सम्यक जानकारी
- शिक्षण विधियों का निर्माण
- अनुशासन की स्थापना हेतु

शिक्षा के दार्शनिक आधार

दर्शन और शिक्षा में अटूट सम्बन्ध पाया जाता है और ये एक-दूसरे पर आश्रित होते है। दर्शन ब्रह्माण्ड और उसमें मानव जीवन की व्याख्या करता है। इसमें मनुष्य जीवन के अन्तिम उददेश्य और उस उददेश्य की प्राप्ति के साधन मार्गो पर भी विचार किया जाता है। अब ये उद्देश्य कैसे प्राप्त हो, इसमे शिक्षा हमारी सहायता करती है। शिक्षा हमारे आचार-विचार में परिवर्तन करती है और हमे नए ज्ञान की खोज करने के लिए अवलोकन, परीक्षण, चिन्तन और मनन शक्तियों का विकास करती है।

इस ज्ञान एवं कौशल के आधार पर हम दर्शन का पुनर्निर्माण करते है। नया दर्शन नई शिक्षा को जन्म देता है और नई शिक्षा नए दर्शन को जन्म देती है और यह चक्र सदैव चलता रहता है। दर्शन और शिक्षा की इस अन्योन्याश्रितता को समझने के लिए दर्शन के शिक्षा पर प्रभाव और शिक्षा के दर्शन पर प्रभाव को अलग-अलग समझना होगा।

www.studyofeducation.com

दर्शन का शिक्षा पर प्रभाव

दर्शन का शिक्षा पर पड़ने वाला प्रभाव निम्नलिखित है

दर्शन और शिक्षा का सम्प्रत्यय दर्शन शिक्षा के स्वरुप की व्याख्या करता है। इस व्याख्या से हमें शिक्षा के सही सम्प्रत्यय का ज्ञान होता है।

दर्शन और शिक्षा के उद्देश्य दर्शन का सर्वप्रथम भाग तत्त्वमीमांसा होता है। इसमें सृष्टि-सृष्टा, आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत और जन्म-मरण आदि की व्याख्या होती है और उसके आधार पर मानव जीवन के उद्देश्य दिए जाते है। शिक्षा द्वारा इन उद्देश्यो की प्राप्ति की जाती है। .

दर्शन शिक्षक तथा शिक्षार्थी दर्शन की तत्त्वमीमांसा में मनुष्य के स्वरुप और आचारमीमांसा में उसके करणीय तथा अकरणीय कर्मों की विशद् व्याख्या की जाती है। दर्शन की इस व्याख्या के अनुसार ही शिक्षक और शिक्षार्थी का स्वरुप एवं उनके कर्तव्य निश्चित होते हैं।

दर्शन और शिक्षा की पाठ्यचर्या पाठ्यचर्या तो शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होती है। अतः यदि शिक्षा के उद्देश्य दर्शन से प्रभावित होते हैं, तो उसको पाठ्यचर्या भी उससे प्रभावित होनी चाहिए। .

दर्शन और शिक्षण विधियाँ दर्शन की ज्ञानमीमांसा से मानव बुद्धि, ज्ञान और ज्ञान प्राप्त करने की विधियों की व्याख्या होती है। इसी के आधार पर दार्शनिक शिक्षण विधियों का विधान करते हैं।

दर्शन और अनुशासन दर्शन का तीसरा मुख्य भाग आचारमीमांसा होता है। इसमें मनुष्य को क्या कर्म करने चाहिए और क्या नहीं, इसकी विशद् व्याख्या होती है। इस ज्ञान के आधार पर ही अनुशासन का सम्प्रत्यय निश्चित किया जाता है।

दर्शन और विद्यालय प्राय: सभी दार्शनिक मनुष्य के लिए आचार संहिता तैयार करते हैं और इसके लिए शिक्षा का विधान करते है। अब यह शिक्षा कहाँ दी जाए और कैसे दी जाए, इस पर भी वे प्रकाश डालते हैं।

शिक्षा का दर्शन पर प्रभाव

www.studyofeducation.com

शिक्षा का दर्शन पर प्रभाव निम्नलिखित है

- **शिक्षा दर्शन के निर्माण की आधारशिला है** शिक्षा के द्वारा ही हम भाषा सीखते है और उसी के द्वारा हम विचार करना सीखते हैं। अशिक्षित व्यक्ति से दर्शन जैसे विषय के विकास की आशा नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से शिक्षा दर्शन के विकास की आधारशिला होती है।
-
- **शिक्षा दर्शन को जीवित रखती है** कोई भी समाज अपने पूर्वजों द्वारा निश्चित इन सिद्धान्तों का ज्ञान शिक्षा द्वारा ही प्राप्त करता है। शिक्षा के अभाव में हम दार्शनिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार शिक्षा दर्शन के ज्ञान को सुरक्षित रखती है।
-
- **शिक्षा दार्शनिक सिद्धान्तों को मूर्त रूप देती है** दर्शन इस ब्रह्माण्ड और उसमें मानव जीवन की व्याख्या करता है, मनुष्य जीवन की व्याख्या करता है। मनुष्य जीवन के उद्देश्य निश्चित करता है और यह स्पष्ट करता है कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति कैसे की जा सकती है। शिक्षा वह प्रकिया है, जिसके द्वारा हम दर्शन के निश्चित उददेश्यों को प्राप्त करते हैं। अंग्रेज विद्वान् जॉन एडम्स महोदय इस सत्य को स्वीकार करते हुए कहा करते थे कि "शिक्षा दर्शन का एक गतिशील पहलू है।' अमेरिकी विद्वान् जॉन डीवी ने इसी सत्य को दूसरे शब्दों में व्यक्त किया है "दर्शन अपने सामान्य रुप में शिक्षा का सिद्धान्त ही है।"
-
- **शिक्षा दर्शन को नई समस्याओं से परिचित कराती है** मनुष्य एक गतिशील और प्रगतिशील प्राणी है। विकास के इस पथ में उसके सामने नित्य नई समस्याएँ आती रहती हैं। शिक्षा हमें इन समस्याओं से परिचित कराती है और यदि हम में दार्शनिक की तीक्ष्ण बुद्धि होती है, तो हम उन समस्याओं पर विचार करने लगते हैं जिससे दर्शन का विकास होता है।

इस प्रकार जनशिक्षा, स्त्री-शिक्षा और शिक्षा में राज्य के हस्तक्षेप आदि पर भी विचार करता है, इतना ही नहीं अपितु शिक्षा के क्षेत्र में कभी भी और किसी भी प्रकार की समस्याओं के समाधान लिए हम दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रयोग करते हैं।

शिक्षा में भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं का योगदान

भारतीय सन्दर्भ में दर्शन का अर्थ परम तत्त्व का साक्षात्कार करना है। भारतीय दर्शन का लक्ष्य आध्यात्मिक, अधिभौतिक तथा अधिदैविक तीनों प्रकार के दुःख का विनाश एवं अखण्ड आनन्द की प्राप्ति है। वैदिक दर्शना में षड्दर्शन अत्यधिक प्राचीन एवं प्रसिद्ध है। ये सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा एवं वेदान्त के नाम से विदित हैं। शिक्षा और दर्शन दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर हैं, दर्शन शिक्षा को प्रभावित करता है और शिक्षा दार्शनिक दृष्टिकोणों पर नियन्त्रण रखती है तथा उसकी कमियों को दूर करती है।

इसके अतिरिक्त दर्शन और शिक्षा दोनों का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है, क्योंकि जीवन को उन्नत बनाने हेतु दोनों ही आवश्यक होते हैं। इस प्रकार शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन अपना योगदान देता है। इनमें भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं; जैसे- साख्य, योग, वेदान्त, बौद्ध, जैन इत्यादि दर्शनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है

सांख्य दर्शन

षड्दर्शनों मे सांख्य दर्शन (Sankhya) सबसे प्राचीन दर्शन है। महाभारत में सांख्य शब्द का प्रयोग ज्ञान के सन्दर्भ में किया गया है। सांख्य एक स्वतन्त्र दर्शन है, जिसमें शुद्ध ज्ञान की विवेचना की गई है। इस दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल माने जाते हैं। महर्षि कपिल प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने वेद साहित्य में निहित दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन शुद्ध रुप में करके सांख्य दर्शन का प्रतिपादन किया। महर्षि कपिल के दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं सांख्य सूत्र तथा तत्त्व समास। तत्त्व समास में 22 सूत्र हैं और सांख्य सूत्र में 537 सूत्र है। इन सूत्रों के अन्तर्गत सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों का मीमांसा सहित प्रतिपादन किया गया है। इसके बाद अनेक दार्शनिकों ने सांख्य दर्शन की व्याख्या की है।

ईश्वरवादी या आस्तिक दर्शनों में सांख्य दर्शन वह दर्शन धारा है, जो इस ब्रह्माण्ड को प्रकृति एवं पुरुष के योग से निर्मित मानती है। यह दर्शन धारा विश्वास करती है कि प्रकृति तथा पुरुष दोनों ही अनादि तथा अनन्त हैं। यह ईश्वर के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती है। इसके अनुसार आत्मा को पुरुष अथवा चेतन तत्त्व माना जाता है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति अथवा मोक्ष को प्राप्त करना है, जिसकी प्राप्ति ज्ञान और योग साधना से की जा सकती है।

पुरुष एवं प्रकृति सांख्य दर्शन के दो मूल तत्त्व है। प्रकृति की 23 प्रवृत्तियाँ मानी गई है। इस प्रकार सांख्य दर्शन के कुल 25 तत्त्व है। कुछ विद्वानों का कहना है कि संख्या बताने के कारण इस दर्शन को सांख्य नाम दिया गया है। सांख्य दर्शन प्रकृति और पुरुष की स्वतन्त्र सत्ता में विश्वास करता है। इसीलिए इसे **द्वैतवादी दर्शन** भी कहा जाता है। भागवत दर्शन को **तत्त्व संख्यान** या **तत्त्व गणन** कहा गया है। सांख्य में तत्त्वों की संख्या को भी निर्धारित किया गया है। श्रीधर स्वामी ने सांख्य दर्शन की टीका में सांख्य को तत्त्व गणक कहा है।

सांख्य दर्शन में ज्ञानमीमांसा तथा तत्त्वमीमांसा का अधिक विवेचन हुआ है, जबकि योग दर्शन में उसकी व्यावहारिकता को प्राथमिकता दी गई है कि सांख्य दर्शन में जिन तत्त्वों को महत्त्व दिया गया है उनको कैसे प्राप्त किया जा सकता है। इसका उपाय तथा साधनों का विवेचन योग दर्शन में किया जाता है। अत: यह कहना उचित प्रतीत होता है कि सांख्य ज्ञान काण्ड है और योग कर्म काण्ड है।

www.studyofeducation.com

सांख्य दर्शन में शिक्षा का अर्थ एवं प्रक्रिया

सांख्य दर्शन में प्रकृति तथा पुरुष दोनों को मूल तत्त्व माना जाता है और इन दोनों में मूलभूत अन्तर भी किया है। इस प्रकार शिक्षा की प्रक्रिया भी ऐसी होनी चाहिए जो प्रकृति और पुरुष के भेद का ज्ञान प्रदान कर सके। मनुष्य की बाह्य तथा आन्तरिक रचनाओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान कर सके। इसके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक नियमों पर आधारित होनी चाहिए, जिससे बालक की प्रकृति अनुसार उसका विकास किया जा सके। शिक्षा प्रक्रिया बाल केन्द्रित मानो गई है।

सांख्य दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य

सांख्य दर्शन के अन्तर्गत ज्ञानमीमांसा की विवेचना अधिक मिलती है, जबकि योग दर्शन में साधना के लिए नैतिक आचरणों का उल्लेख मिलता है। शिक्षा के उद्देश्यों की दृष्टि से सांख्य तथा योग दर्शन में अधिक समानता मिलती है। अन्तर केवल इतना है कि सांख्य सैद्धान्तिक पक्ष है तथा योग व्यावहारिक पक्ष है।

सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं

शारीरिक विकास करना और इसमें कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों का विकास सम्मिलित किया गया है।
मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक तथा नैतिक विकास करना।
मोक्ष प्राप्त करना।
सद् तथा असद् को समझना तथा उचित आचरण करने का विकास करना।
सर्वांगीण विकास करना।

www.studyofeducation.com

सांख्य दर्शन का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

सांख्य दर्शन में शिक्षा के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण उसके द्वारा दिए शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, गुरु-शिष्य की भूमिका, अनुशासन, विद्यालय आदि सम्बन्धित विचारों में दिखाई देते हैं, जो निम्नलिखित हैं

सांख्य दर्शन में शिक्षा का पाठ्यक्रम

सांख्य दर्शन में भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास को महत्त्व दिया गया है। इसीलिए पाठ्यवस्तु का स्वरुप ऐसा होना चाहिए जिससे आरम्भ में बच्चों की कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों का विकास किया जा सके। इसके लिए ऐसी परिस्थितियाँ

उत्पन्न की जाएँ, जिनमें छात्रों की कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ क्रियाशील हो सके। इसके लिए पाठ्य सहगामी क्रियाओं (खेलकूद तथा शारीरिक व्यायाम) को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए।

सांख्य दर्शन पाठ्यक्रम को बाल केन्द्रित बनाने का संकेत दिया है। इसके तहत विभिन्न विकास की अवस्थाओं के लिए उनकी आवश्यकताओं के अनुरुप और विकास क्रम को ध्यान में रखते हुए पाठ्य-सामग्री को स्थान देने का उल्लेख किया गया है, जैसे कि बाल्य, किशोर तथा युवावस्था के लिए अलग-अलग पाठ्यक्रमों का विकास किया जाए। सांख्य दर्शन के अनुसार मनुष्य को जीवनपर्यन्त स्वाध्याय करना चाहिए। सांख्य दर्शन के ज्ञान को व्यावहारिक रुप प्रदान करने के लिए योग दर्शन के नियमों को भी पाठ्यक्रम समुचित स्थान देना चाहिए, क्योंकि योग साधना के द्वारा ही आत्मा की अनुभूति की जा सकती है।

सांख्य दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम का आधार मनोवैज्ञानिक, व्यापक, विकासात्मक एवं क्रियाओं से युक्त रहा है, जिससे जीवन के लक्ष्यों को सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है।

www.studyofeducation.com

सांख्य दर्शन में शिक्षण विधियाँ

सांख्य दर्शन ज्ञानमीमांसा का दर्शन है। इसमें ज्ञान के स्रोत के सम्बन्ध में मनोविज्ञान की विधियों को महत्त्व दिया गया है। मनोविज्ञान की विधियों में ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को ही ज्ञान की प्रक्रिया में क्रियाशील किया जाता है, जबकि सांख्य दर्शन के तत्त्वों की प्रकृति भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार की हैं। इसलिए सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियों में भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों विधियों को प्रयुक्त किया जाता है। प्रमुख तीन शिक्षण विधियाँ-प्रत्यक्ष विधि, अनुमान विधि तथा शब्द विधि हैं।

प्रत्यक्ष विधि में ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को क्रियाशील बनाया जाता है, जिससे अनुभव तथा प्रत्यक्षीकरण का अवसर मिलता है।
अनुमान विधि में इन्द्रियों स परे चेतना जिसमें अनुभूति के लिए अवसर दिया जाता है, इसमें भाव पक्ष प्रधान होता है।
शब्द विधि के अन्तर्गत दृष्टान्तों, उदाहरणों का उपयोग किया जाता है, जिससे ज्ञान की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षण की मुख्य विधियाँ इस प्रकार हैं सूत्र विधि, प्रत्यक्ष विधि, अनुमान विधि, व्याख्यान विधि, कहानी विधि, तर्क विधि, क्रिया एवं अभ्यास विधि।

सांख्य दर्शन में गुरु-शिष्य की भूमिका

सांख्य दर्शन एक गहन मीमांसा का दर्शन माना जाता है, इसलिए इसके अनुसार शिक्षक को अपने विषय का स्वामित्व होना आवश्यक है। शिक्षक में प्रकृति, पुरुष तथा जगत सम्बन्धी ज्ञान और उनके भेद को स्पष्ट करने की योग्यता होनी चाहिए। शिष्य में के प्रति आदर तथा सम्मान का भाव होना चाहिए और सीखने की उत्सुकता भी आवश्यक है। गुरु द्वारा शिष्य को नैतिक आचरण का प्रशिक्षण देना चाहिए और उसे अनुशासन में रहने का उपदेश भी देना चाहिए।

सांख्य दर्शन में अनुशासन

सांख्य तथा योग दर्शन एक-दूसरे के पूरक हैं। योगाभ्यास के लिए अनुशासन प्रथम आवश्यकता है। इसके लिए अष्टांग योग मार्ग में 'यम' को विशेष महत्त्व दिया गया है। यम शब्द का तात्पर्य है कि मन, वचन तथा कर्म का संयम तथा यह अनुशासन के मुख्य लक्षण हैं। योग के अनुशासन का दूसरा तत्त्व नियम है। शिष्य के लिए पाँच नियमों का अनुसरण आवश्यक माना गया है-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा प्राणिधान (समर्पण)। इन नियमो के अनुसरण से शिष्य अनुशासित रहता है एवं शारीरिक व मानसिक रुप से भी स्वस्थ रहता है। इन नियमों का पालन करने से शिष्य आत्म तत्त्व का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

सांख्य दर्शन में विद्यालय

सांख्य तथा योग समकालीन दर्शन है। उस समय गुरुकुल प्रणाली प्रचलित थी। गुरु अपने आश्रम में शिक्षा प्रदान किया करते थे। सांख्य दर्शन के विकास काल में विद्यालय का सम्प्रत्यय विकसित नहीं हुआ था वैसे भी सांख्य मनुष्य के वैयक्तिक विकास का समर्थक है और उस दृष्टि से व्यक्ति शिक्षण ही उपयोगी होता है।

www.studyeducation.com

योगदर्शन

योगदर्शन छ: आस्तिक दर्शनों में से प्रमुख दर्शन माना जाता है। इस दर्शन का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को परम लक्ष्य की प्राप्ति करना है। प्रकृति, पुरुष के स्वरुप सहित ईश्वर के अस्तित्व को मिलाकर मनुष्य जीवन की आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति हेतु दर्शन का एक विस्तृत स्वरुप व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप योगदर्शन में प्रस्तुत किया गया है। इसकी शुरुआत सर्वप्रथम पतंजलि मुनि के योगसूत्रों से होती है। योगसूत्रों को सर्वोत्तम व्याख्या व्यास मुनि द्वारा लिखित व्यास भाष्य से प्राप्त होती है। इसमें बताया गया है कि मनुष्य अपने मन की वृत्तियों पर नियन्त्रण स्थापित कर जीवन को सफल बना सकता है।

अग्नि पुराण के अनुसार, योग मन की एक विशिष्ट अवस्था है। जब मन में आत्मा को और स्वयं मन को प्रत्यक्ष करने की योग्यता आ जाती है, तब उसका ब्रह्म के साथ संयोग हो जाता है। जिस प्रकार नमक जल में मिलकर जल की समानता को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार जब मन वृत्तिशून्य होकर आत्मा के साथ ऐक्य को प्राप्त करता है, मन की उस अवस्था को समाधि कहा जाता है। आत्मा और मन की एकता भी समाधि का फल है।

योगदर्शन और शिक्षा

वैज्ञानिक आविष्कारों के इस युग में जीवन को आरामदायक बनाने हेतु अनगिनत साधन विद्यमान हैं, परन्तु सीमित लोग ही ऐसे साधनों का प्रयोग कर पाते हैं। अस्वस्थता के कारण लोग प्रारब्ध (भाग्य) में होते भी सुख की जिन्दगी व्यतीत नहीं कर पाते हैं। अध्ययनकर्ता पठन-पाठन में ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता है, इससे शिक्षा के प्रति उसका लगाव कम होने लगता है, परन्तु योगदर्शन के माध्यम से अध्ययनकर्ता अपनी शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक संस्कृति को सुदृढ़ कर पठन-पाठन के प्रति अपनी जिज्ञासा को दृढ़ कर सकता है। वर्तमान समय में शिक्षा जगत में योग की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि वर्तमान परिवेश में अधिकतर छात्र-छात्राएँ शारीरिक व मानसिक रुप से अस्वस्थ रहते हैं, जिसके कारण उनमें शिक्षा का विकास नहीं हो पाता।

योग एक मानस शास्त्र है, जिसमें मन संयत करना एवं पाश्विक वृत्तियों को नियन्त्रित करना सिखाया जाता है। जीवन की सफलता किसी भी क्षेत्र में संयत मन पर भी निर्भर करती है। मन संयम का अभिप्राय है किसी एक समय मे किसी एक ही वस्तु पर चित्त का एकाग्र होना। लम्बे समय निरन्तर अभ्यास करने के कारण मन का ऐसा स्वभाव बन जाता है। किसी विषय को सोचते या किसी काम को करते हुए मन एकाग्र रहे, ऐसा अभ्यास करना प्रारम्भ में तो कठिन होता है, परन्तु निरन्तर अभ्यासरत् होने से कार्य अत्यन्त आसान हो जाता है, ऐसा योग द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

www.studyofeducation.com

अस्थिर मन काम की गुणात्मकता को कम करता है। सुसंगत रीति से नहीं सोच पाना, अच्छे ढंग से कोई काम नहीं कर सकना, विचार और काम की चंचलता से ही होता है। बहुत से छात्र-छात्राएँ जो प्रतिवर्ष विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में असफल होते हैं, इसका मूल कारण अध्ययन में मन को एकाग्र करने की शक्ति की कमी होना है। यही बात मुख्यतः सांसारिक विषयों में होने वाली विफलताओं की है। जब तक मनुष्य अपने विचारणीय विषय या करणीय कार्य में तन्मय नहीं होता है, तब तक उसे उसमें सफलता नहीं मिल सकती है।

योगदर्शन में शिक्षा का अर्थ एवं प्रक्रिया

सांख्य दर्शन की भाँति योगदर्शन में भी प्रकृति एवं पुरुष दोनों को मूल तत्त्व माना जाता है। इसके अनुसार दोनों की स्वतन्त्र सत्ता मानी गई है, परन्तु तात्विक रुप में पुरुष की सत्ता ही सर्वोच्च है। योग मन की एकाग्रता से पुरुष को शिक्षित करता है, मन की एकाग्रता के अभाव में, अविधा की भावना प्रबल होती है इससे पुरुष जड़ एवं परिणाम चित्त को स्वयं में आरोपित कर लेता है। यह अज्ञान ही पुरुष के समस्त दुःखों, क्लेशों का कारण है। योग के अभ्यास से जिस प्रकार की शक्तियों का उदय होता है, इन्हें विभूति या सिद्धि कहा जाता है। योगाभ्यास के माध्यम से ही मनुष्य के शरीर में विद्यमान इन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती हैं। इस प्रकार योगदर्शन शिक्षा ग्रहण करने का मूल साधन माना जाता है। योग के माध्यम से मनुष्य अपनी सोच एवं विचार को प्रगाढ़ बना सकता है।

योगदर्शन में शिक्षा के उद्देश्य

योगदर्शन में मुख्यत: व्यावहारिक शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। इसमें साधना के लिए नैतिक आचरणों का विशेष उल्लेख किया गया है। योगदर्शन में, शिक्षा के गुणात्मकता के विकास पर विशेष बल दिया गया है। इसका एकमात्र उद्देश्य एकाग्रता को विकसित करते हुए शिक्षा ग्रहण करना है। एकाग्रता के कारण चित्त शान्त रहता है, जिससे विधा का विकास होता है। चंचल मन एवं चित्त के कारण अधिगम प्रक्रिया पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न होता है।

इस प्रकार योग-दर्शन में शिक्षा का उद्देश्य योग के माध्यम से छात्रों के व्यक्तित्व में निम्न गुणों का अभिवर्द्धन करना होता है

- सीखने की क्षमता, स्मृति क्षमता, तर्कक्षमता, एकाग्रता, अन्तर्ज्ञान, त्वरित निर्णय क्षमता, सुस्पष्ट प्रत्यक्षण आदि का क्रमिक विकास।
- आईक्यू, ईक्यू एवं एस. क्यू का समानान्तर एवं सन्तुलित विकास जिसके माध्यम से प्रतिभा का जागरण करना।
- सजगता, वेधेयात्मक चिन्तन, आत्मविश्वास, भावनात्मक वृद्धि आदि का विकास।
- आत्मानुशासन, उत्कृष्ट चरित्र-चिन्तन, व्यवहार, सुसंगठित व्यक्तित्व। स्वप्रबन्धन का ज्ञान, सुव्यवस्थित जीवन-शैली अपनाने की प्रवृत्ति, संयमित एवं सन्तुलित आहार-विहार करने की प्रेरणा।
- मानसिक व भावनात्मक विकास में बाधा डालने वाले तत्त्व-तनाव, विकृतियो का समुचित निराकरण।
- मानवीय मूल्य-सेवा, सहिष्णुता, दया, करुणा, परोपकार, सौजन्य, त्याग उदारता, सहानुभूति, सहअस्तित्व का भाव आदि का विकास।

पतंजलि के योग सूत्रों में जिस विषय का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया है वह है 'चित्तवृत्ति निरोध' अर्थात् अन्य विषयों से चित्त को खींचकर एक ही विषय में एकाग्र करना। मन को एकाग्र करने की शक्ति निरन्तर अभ्यास एवं सांसारिक सुखों से विरक्त होने से ही प्राप्त होती है।

www.studyofeducation.com

योगदर्शन का शिक्षा में महत्त्व

- योग शिक्षा से मन की एकाग्रता बढ़ती है। यह बच्चों के मन-मस्तिष्क को उसके कार्य के प्रति जागरुक करता है। इससे स्वस्थ शरीर एवं मन का निर्माण होता है।
- योग शिक्षा से बच्चों में दृढ़ता एवं एकाग्रता को बढ़ावा मिलता है। इससे पढ़ाई के प्रति रुचि पैदा होती है। मन-मस्तिष्क का सन्तुलन बना रहता है।
- योगदर्शन से व्यसनों से मुक्ति मिलती है, क्योंकि योग से मन-मस्तिष्क की चेतना जाग्रत होती है।

- इससे लक्ष्य प्राप्ति को प्रबलता मिलती है। योग दर्शन से मन की एकाग्रता बढ़ती है, निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में परस्पर सहयोग देती है।

इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में योग दर्शन का विशेष महत्त्व होता है। तनाव को कम करके, एकाग्रता एवं स्मृति शक्ति पर योगदर्शन सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है। शिक्षा के क्षेत्र में योग के बढ़ते प्रचलन का अन्य कारण इसका नैतिक जीवन पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभाव हैं।

"स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है।" यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार के प्रयासों के लिए स्वस्थ शरीर एवं मन का होना आवश्यक है। योग शिक्षा में आहार-विहार के नियमों का पालन अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। योगसूत्रों के दो प्रमुख भाग हैं-हठयोग और राजयोग। हठयोग में आसनों की शिक्षा है, इससे आरोग्य एवं बल प्राप्त होता है। हठयोग से सद्गुणों का विकास होता है और आरोग्य तथा बल बढ़ता है।

www.studyofeducation.com

वेदान्त दर्शन

वेदान्त के (Vedanta) अन्तर्गत मूलतः अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैत सम्बन्धी मतों का अध्ययन किया जाता है। मुक्तिक उपनिषद के अनुसार, उपनिषदों को संख्या 108 है।

अद्वैतवाद दर्शन

शंकराचार्य ने औपनिषद् दर्शन पर आधारित, जिस अद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की तथा जीवन भर जनसामान्य में घूम-घूमकर जिस आचार-मीमांसा को हृदयंगम कराया उससे शिक्षा क्षेत्र में उनके असाधारण योगदान का पता चलता है। जीवन के अत्यन्त प्रारम्भिक काल (केवल आठ वर्ष की अल्पायु) में उन्हे शिक्षा के महत्त्व का पता चल गया था। अतः संन्यास लेकर वह गुरु की खोज में उसी अल्पायु में चल दिए थे। थोड़े ही समय में अपने शैक्षिक कार्यों, धार्मिक प्रवचनों एवं आध्यात्मिक वार्तालापों से उन्होंने इतनी ख्याति अर्जित कर ली कि उनकी शैक्षिक मीमांसा ने शिक्षा जगत को नूतन प्रकाश प्रदान किया, किन्तु आचार्य शंकर को जगद्गुरु के रुप में भारतीय समाज द्वारा अभिनन्दित किया जाना उनके महत्त्व को अत्यधिक बढ़ा देता है। उनका यह अभिनन्दन उनके शैक्षिक मूल्यांकन का ही प्रतिफल है।

- शंकराचार्य के अनुसार, 'आत्मा अव्यभिचारी है, स्वयं सिद्ध है व ज्ञानात्मक तर्क की अवस्था है।
- शंकराचार्य के भाष्य के अनुसार मोक्ष की सर्वोत्तम रेभाषा ब्रह्मभावश्च है। उनके अनुसार सृष्टि, प्रलय, जीवन आदि का महत्त्व पारमार्थिक है।

अद्वैतवाद का शैक्षिक चिन्तन

शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में ज्ञान का अत्यधिक महत्त्व है। अद्वैत दर्शन के अनुसार ज्ञान का अर्थ है अविधा निवारण। वेदान्त की केन्द्रीय समस्या ब्रह्म की धारणा है, अत: ब्रह्म तत्त्व की खोज करना शंकराचार्य के शैक्षिक चिन्तन का मुख्य लक्ष्य है। उनके अनुसार शिक्षा व्यक्ति के लिए ज्ञान प्राप्ति का साधन है और उसके अज्ञान की निवृत्ति का माध्यम है। शंकराचार्य कहते हैं कि शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति का साधन ही नहीं है वरन् यह व्यक्ति के मनोगत ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, मोह और आसक्ति आदि दोषों का उपनयन कर उसके मन को प्रसन्न, स्वच्छ और शान्त करती है, जिससे मनुष्य के अज्ञान, शोक, मोह, क्रोध, आदि दोषों की निवृत्ति होती है, वह शिक्षा है। शंकराचार्य के अनुसार आध्यात्मिक ज्ञान से भिन्न कोई शिक्षा नहीं है।

शिक्षा प्रक्रिया एक ऐसी धार्मिक और पवित्र प्रक्रिया है, जो मुक्तिपर्यन्त चलती है। उन्होंने आध्यात्मिक शिक्षा को भौतिक शिक्षा की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। शंकराचार्य जीवन और शिक्षा को एक रुप मानते हैं। उनके अनुसार जीवन की अवधारणा मात्र भौतिक सुख समृद्धि का भोग करने के लिए ही नहीं हुई वरन् ज्ञानार्जन के लिए भी हुई है। अत: शिक्षा और जीवन में पार्थक्य न होकर अभेद है।

इस प्रकार शंकराचार्य जीवन और शिक्षा के गहन सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं और दोनों को परस्पर अन्योन्याश्रित मानकर श्रेष्ठ जीवन को सुशिक्षा का फल स्वीकार करते हैं। वे शिक्षा के महत्त्व को व्यक्ति और समाज दोनों के सन्दर्भ में स्वीकार करते हैं।

वेदान्त के सात शीर्षक: ब्रह्मविचार 4. ज्ञान और कर्म 5. अविधा 7. जीव विचार 2. मोक्ष 3. आत्मा 6. माया

www.studyeducation.com

विशिष्टाद्वैत दर्शन

विशिष्टाद्वैत दर्शन को रामानुज के द्वारा दिया गया। यह अद्वैत (Monism) इसलिए है, क्योकि इसमें जगत और जीव को परमब्रह्म का अंश माना गया है और परम तत्त्व को एक माना गया है, परन्तु यह विशेष प्रकार के विशिष्ट अद्वैत हैं, क्योंकि इस परम तत्त्व में आत्मा, जगत और ब्रह्मा में अन्तर माना गया है। इनके दर्शन में आत्मा और ईश्वर तथा जगत और ईश्वर में एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध माना गया है। रामानुज के अनुसार भक्ति का उदय ज्ञान व कर्म से है। रामानुज जीव और ईश्वर को अंश और अंशी के रूप में एक मानते है, जिस प्रकार अंश को अंशी अथवा पूर्ण पृथक् नहीं किया जा सकता, जिस प्रकार शरीर से बाहर हाथ-पैर आदि का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता उसी प्रकार ईश्वर एवं जीव का सम्बन्ध अविच्छेद है।

रामानुज के अनुसार आत्मा की सर्वोच्च स्थिति मोक्ष में भी आत्मा एवं ब्रह्म का भेद बना ही रहता है। जीव ईश्वर लोक में रह सकता है, उसके समीप रह सकता है, उसके सान्निध्य में रह सकता है, उसका रंग-रूप पा सकता है, परन्तु ईश्वर कभी भी नहीं हो सकता है। जीव और ईश्वर में प्रकार और प्रकार नियाम्य और नियन्ता का सम्बन्ध पाया जाता है। इस प्रकार रामानुज के दर्शन और ईश्वर के सम्बन्ध को विशिष्टाद्वैत कहा जाता है।

इसी प्रकार ईश्वर और जगत के सम्बन्ध को विशिष्टाद्वैत इसलिए कहा जाता है कि ईश्वर कण-कण में विद्यमान है। विश्व ईश्वर के अंश से बना है। चेतन, अचेतन जीव और जगत ईश्वर के स्वागत भेद है। अतः दोनों में अद्वैत सम्बन्ध है, परन्तु ईश्वर चेतन और अचेतन से परे भी है। वह जीव और जगत से परे पुरुषोत्तम है। रामानुज एक ईश्वरवादी है, सर्वेश्वरवादी नहीं।

"ब्रह्म ही ज्ञान की सृष्टि, स्थिति तथा लय करता है।" यह सिद्धान्त ब्रह्म परिणामवाद पर आधारित है।

विशिष्टाद्वैत दर्शन पर आधारित शिक्षा

www.studyofeducation.com

रामानुज जगत को ब्रह्मा की लीला मानते हैं। इनके अनुसार ब्रह्मा के साथ जगत का ज्ञान महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए शिक्षा की प्रक्रिया में जगत तथा ब्रह्मा दानाको महत्त्व दिया जाना चाहिए। शिक्षा की प्रक्रिया भौतिक तथा आध्यात्मिक होनी चाहिए। अत: विशिष्टाद्वैत दर्शन पर आधारित शिक्षा का उल्लेख इस प्रकार है

शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा के उद्देश्य में रामानुजाचार्य का मानना है कि भौतिक ज्ञान को प्रमुख माना है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम इस सन्दर्भ में रामानुजाचार्य ने जगत को ईश्वर की लीला बताया है इसलिए इन्होंने ब्रह्म ज्ञान के साथ जगत का ज्ञान भी प्रदान किया। विशिष्टाद्वैत दर्शन के अन्तर्गत सभी पदार्थों को प्रमेय तथा प्रमाण के रूप में विभाजित किया है और यथार्थ ज्ञान प्रमाणों के आधार पर ही दिया जाए जबकि इसमें वेदों को ज्ञान का मुख्य प्रमाण माना जाता है। इनके अनुसार पाठ्यवस्तु में वेदों के ज्ञान के साथ-साथ इस दर्शन के तीन मूल तत्त्व-चित्, जगत का ज्ञान तथा ईश्वर के ज्ञान को शामिल किया जाए।

शिक्षण विधियाँ विशिष्टाद्वैतवाद में यथार्थ ज्ञान को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। इसके लिए प्रमेय तथा प्रमाण दो साधन माने गए है। प्रमेय का सम्बन्ध पदार्थ की समस्याओं तथा उनकी प्रामाणिकता से होता है। पदार्थों के साथ यथार्थ ज्ञान के लिए ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की क्रियाशीलता आवश्यक है।

गुरु-शिष्य की भूमिका रामानुजाचार्य जगत को महत्त्व देते हैं। इनके अनुसार गुरु द्वारा शिष्यों को ब्रह्म-ज्ञान के साथ-साथ जगत का ज्ञान भी देना आवश्यक है तभी शिष्यों को ब्रह्म की सार्थकता का बोध हो सकता है।

वेदान्त दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य

शंकराचार्य के अनुसार शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य विद्यार्थी को अज्ञान से मुक्त करके उसे ज्ञान का प्रतीत कराना है, जिससे वह सत्य और मिथ्या, विधा और अविधा में भेद कर सके तथा अपने अन्दर निहित अनन्त ज्ञान व अनन्त शक्ति को पहचान सके। ब्रह्म और मोक्ष की एकरूपता स्वीकार करने के कारण शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म की धारणा मानवीय जीवन के सर्वोत्तम चिन्तन का फल है। अत: उनके शैक्षिक चिन्तन के आधार पर शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य कहे जा सकते हैं

ब्रह्मनिष्ठ शिक्षा का उद्देश्य ब्रह्मनिष्ठ को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानकर व्यक्ति को दीक्षित किया जाना चाहिए। ब्रह्मनिष्ठ का तात्पर्य ब्रह्म के प्रति अनन्य भाव और ब्रह्म की प्राप्ति है।

ऐक्य की भावना शिक्षा का उद्देश्य मानव समाज में ऐक्य की भावना का विकास करना है।

अद्वैत भावना आत्मा और ब्रह्म का समन्वय ही मानव जाति का सर्वोच्च लक्ष्य है। यही ब्रह्म और आत्मा का समन्वय अद्वैत कहलाता है। ब्रह्म और आत्मा का ऐक्य ही शिक्षा है, यही शिक्षा का उद्देश्य है।

आत्मानात्म विवेक इस शिक्षा का उद्देश्य यह है कि व्यक्ति में आत्म और अनात्म का यथावत विवेक हो और उसको यह दृढ़ निश्चय हो कि आत्म का स्वरुप नित्य है और दृश्य वस्तु उसके विपरीत अनित्य होने से अनात्म है।

आत्मनिष्ठ शिक्षा इसका उद्देश्य व्यक्ति को आत्मनिष्ठ बनाना है। उसमें आत्मविश्वास का विकास करना है, जिससे उसका अन्तर्निहित ब्रह्म ज्ञान जागृत हो। शिक्षा के विषय में शंकराचार्य के विस्तृत दृष्टिकोण की जानकारी उनके द्वारा दिए गए शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, अनुशासन, शिक्षक की भूमिका, छात्र की भूमिका छात्र के विचारों में दिखाई देती है।

वेदान्त दर्शन में शिक्षा का पाठ्यक्रम

वेदान्त दर्शन में विधा के दो रुप माने गए हैं परा विधा और अपरा विधा। परा विधा आत्मज्ञान या ब्रह्म ज्ञान से सम्बन्धित है और अपरा विधा का सम्बन्ध दृश्यमान जगत तथा आत्मा को धारण करने वाले इस शरीर से है। शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के लिए परा विधा अधिक उपयोगी है। भौतिक तथा व्यावहारिक प्रगति के लिए अपरा विधा उपयोगी है। शंकराचार्य ने सत्ता के तीन प्रकार बताए हैं; जो इस प्रकार हैं

आध्यात्मिक/प्रतिभाविकी सत्ता इसका अभिप्राय पारलौकिक सत्ता से है जो प्रतीत में सत्य मालूम पड़ती है, परन्तु बाद में उसका विरोध हो जाता है और प्रकाश के आने पर वास्तविकता से अवगत हो जाते हैं तथा पूर्व का ज्ञान साधित हो जाता है। इसकी प्राप्ति हेतु धर्म व अर्थ के पुरुषार्थ आवश्यक होते हैं।

व्यावहारिक सत्ता इसका अभिप्राय उस सत्ता से है जो पदार्थ या वस्तु संसार की व्यवहार-दशा में सत्य प्रतीत होती है। इन पदार्थों की सत्यता ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति पर नष्ट हो जाती है। इस सत्ता का ज्ञान प्राप्ति हेतु धर्म, अर्थ, काम व पुरुषार्थ आवश्यक होते हैं।

पारमार्थिक सत्ता यह सत्ता वास्तविक सत्ता है। ऐसी सत्ता विकास में बाधक नहीं होती, इसे लौकिक सत्ता भी कहते हैं। भौतिक जगत में उपस्थित सांसारिक ज्ञान पाने हेतु अर्थ एवं काम के पुरुषार्थ इस सत्ता की प्राप्ति में सहायक होते हैं।

शंकराचार्य के अनुसार पाठ्यक्रम में उन विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, जो उक्त तीनों सत्ताओं का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान कर सकें। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों ही प्रकार के विषयों का समावेश होना चाहिए। पारमार्थिक विषयों के अन्तर्गत आत्मा एवं ब्रह्म का ज्ञान सम्मिलित किया जाता है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म की प्रकृति निर्गुण है। व्यावहारिक विषयों के अन्तर्गत इस संसार को समझने तथा इसमें समायोजित होने के लिए आवश्यक ज्ञान का समावेश किया जाता है। शंकराचार्य के भाष्य के अनुसार

तर्क, श्रुति पर आधृत है।
तर्क, श्रुति और ज्ञान पर आधृत है।
तर्क अपर्याप्त है।
तत्त्व-ज्ञान में परम सत्य ब्रह्म है।
ब्रह्म के अस्तित्व का सर्वोच्च प्रमाण अपरोक्षानुभूति है।

www.studyofeducation.com

वेदान्त दर्शन में शिक्षण विधियाँ

शंकराचार्य के शिक्षा दर्शन का विकास उपनिषद् दर्शन के आधार पर हुआ है। उन्होंने उपनिषद्-वर्णित शिक्षा पद्धतियों को अपने सिद्धान्त के अनुसार विकसित, परिवर्द्धित और परिमार्जित करके प्रस्तुत किया है। इन पद्धतियों का विकास भले ही उनके शिक्षा दर्शन में मौलिक रुप से न हुआ हो, लेकिन शिक्षा में इन विधियों के उपयोग और महत्त्व की स्थापना में उनका योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

ये विधियाँ निम्न प्रकार है - प्रश्नोत्तर विधि उपदेश विधि, तर्क विधि मनन विधि, स्वाध्याय विधि, व्याख्या विधि, निदिध्यासन विधि, श्रवण विधि, अध्यारोप अपवाद विधि, दृष्टान्त विधि, कथा विधि.

वेदान्त दर्शन में अनुशासन

वेदान्त में बालक की प्रकृति की चार अवस्थाएँ बताई गई है

1. मूर्छावस्था इस अवस्था में इन्द्रियो तथा मन पर सीमित नियन्त्रण होने लगता है। बालक अल्प काल के लिए अवधान को केन्द्रित रख सकता है। संकल्प शक्ति का विकास होने लगता है। इस अवस्था में अल्पकालीन अध्ययन सम्भव है।

2. क्षिप्तावस्था इस अवस्था में बालक किसी भी कार्य में ध्यान नहीं लगा पाता। उसका ध्यान इधर-उधर बँटता रहता है। यह अन्त:करण की चंचल अवस्था है। अध्ययन के लिए यह प्रतिकूल अवस्था है।

3. एकाग्रावस्था इस अवस्था में आत्मा का मन, बुद्धि और इन्द्रियों आदि सभी पर नियन्त्रण हो जाता है तथा संकल्प शक्ति का पूर्ण विकास हो जाता है। बालक का आचरण उसकी आत्मा की प्रकृति के अनुरुप हो जाता है। वह स्वयं को नियामक और नियन्ता मानने लगता है। यह अवस्था एकाग्रता की अवस्था होती है। यही अनुशासन की उच्चतम स्थिति है। इसमें बालक नैतिक कार्यों को ही करता है और अनैतिक कार्यों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है।

4. विक्षिप्तावस्था इस अवस्था में बालक पूरी तरह से इन्द्रियो का दास होता है। उसका अपने ऊपर कोई नियन्त्रण नहीं रहता। वह इन्द्रियों को सुखद लगने वाला कार्य करता है। इस अवस्था में 'स्व' तथा 'अस्व' के बीच टकराव पाए जाते है।

वेदान्त दर्शन में शिक्षक की भूमिका

शंकराचार्य के अनुसार, गुरु को केवल शास्त्रों का ज्ञाता होना ही पर्याप्त नहीं है वरन् उसे स्वयं ब्रह्मानुभूति सम्पन्न भी होना चाहिए। उसमें नैतिक गुणों का पूर्ण परिपाक होना चाहिए। मानसिक शान्ति, जितेन्द्रियता और सभी प्रकार के भोगों से विरक्ति तथा अहंकारशून्यता और परोपकार परायणता गुरु के आभूषण हैं। उसे धर्म का ज्ञान और उसके निर्वहन के लिए सदैव तत्पर रहने वाला होना चाहिए। उसे छात्र के व्यक्तित्व का आदर करना चाहिए और अध्ययन-अध्यापन में रत रहना चाहिए। उसे छात्रों के प्रश्नों और शंकाओं का समाधान करने में कुशल होना चाहिए। अतः ब्रह्मज्ञानी, धर्म का ज्ञाता, ज्ञान का स्रोत, विनम्र, अहंकार, शून्य, ईर्ष्याहीन, करुणामय, धैर्यवान, संयमी और नैतिक गुणों की प्रतिमूर्ति होनी चाहिए और उसे प्रलोभनहीन होकर शिक्षा दान करनी चाहिए।

वेदान्त दर्शन में छात्र की भूमिका

वेदान्त दर्शन छात्र को हाड़-मांस के द्वारा निर्मित एक शरीर ही नहीं मानता, वरन् उसके अनुसार छात्र अनन्त और असीम शक्तियाँ होती हैं, उन शक्तियों को विकास करने की आवश्यकता होती है। वेदान्त दर्शन छात्र को पारमार्थिक सत्ता के रूप में ब्रह्म ही मानता है। ब्रह्म का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए शंकराचार्य जी ने श्रुति, शाब्दिक व मनोवैज्ञानिक प्रमाण दिए है।

यह ब्रह्म अपने कर्मफल के संस्कारों के कारण जीवात्मा के रूप में जन्म ग्रहण करता है। उसमे जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, संवेगात्मक आदि विभिन्नताएँ दिखाई पड़ती है, वे कर्मजनित फलों का ही परिणाम है। शंकराचार्य के अनुसार चार ऐसी योग्यताएँ

www.studyofeducation.com

हैं, जिनके होने पर ही छात्र को ब्राबोध की क्षमता प्राप्त होती है.---वैराग्य, शम दम आदि साधन, मुमुक्षता एवं नित्यानित्यवस्तु विवेक।

बौद्ध दर्शन

महात्मा बुद्ध ने सांसारिक दुःखों का कारण अविधा को माना है। तत्कालीन समाज पर इस दर्शन का व्यापक प्रभाव पड़ा। बौद्ध दर्शन के जिन सिद्धान्तो और तत्त्वों का जनमानस और शिक्षा पर व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। बुद्ध अनुसार जन्म, मृत्यु, संयोग, वियोग आदि सभी दुःखमय है। तृष्णा या लालसा सम्पूर्ण दुःखों का कारण है। तृष्णा के निरोध से दुःख की निवृत्ति होती है। बुद्ध के अनुसार चार आर्य सत्य है-दुःख हैं, दुःख का कारण है, दुःख का उपचार है तथा दुःखो से मुक्ति सम्भव है। दुःख का निरोध करने के लिए इन्होंने आठ आर्य सत्य बताए हैं

1. सम्यक् दृष्टि सम्यक् दृष्टि के लिए चार आर्य सत्यो का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। सम्यक् दृष्टि प्राप्त करने पर ही मानव निर्वाण हेतु प्रयास करने का संकल्प करता है।

2. सम्यक संकल्प सांसारिक भोग विलास एवं सुखों की कामना का परित्याग करना है। आत्म परिष्कार ही संकल्प का दूसरा मार्ग है।

3. सम्यक वाक सदैव सत्य- भाषण एवं असत्य बोलने का त्याग निर्वाण हेतु यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

4. सम्यक कर्म इसका अभिप्राय शुभ कर्म करने से है, जो सदाचार का आधार है।

5. सम्यक आजीव इसका सम्बन्ध जीवन-यापन में ईमानदारी का व्यवहार तथा अहिमा मे है।

6. सम्यक भाव इसका अर्थ है मनुष्य को असद प्रवृत्तियों के दमन तथा सद प्रवृनिया के विकास का सदैव यत्न करना चाहिए।

7. सम्यक् स्मृति बुद्ध के ठपदशा को रमरण रखना तथा मन, वचन व कप में उन्हें क्रियान्वित करना है।

8. सम्यक समाधि मन की एकाग्र करके परमानन्द प्राप्त करना समाधि है।

www.studyofeducation.com

इन्हें **अष्टांगिक मार्ग** भी कहा जाता है। हय अष्टांगिक मार्ग से ही मोक्ष प्राथन है। मोक्ष (निर्वाणा) के सम्बन्ध में शिक्षा देने हेतु संघ बनाए गए। बौद्ध कालीन शिक्षा की संघों तक सीमित थी तथा पूरी तरह धार्मिक प्रवृत्ति की थी।

बौद्ध ने अपने विचारो को अतिगृह रहस्यों से दूर रखा फलतः । न तो लग्य मीमाया के विवेचना के भ्रम में पड़ा और न आत्मा परमात्मा के भ्रम में पड़े। में जीवन के अमरत्व तथा नश्वरता की विवेचना से भी दूर रहे। उनको धारणा थी कि जिय लक के अकादय प्रमाण न हो, उनसे दूर ही रहना चाहिए। अप्रत्यक्ष तथा शंका से चल तथ्य तथा सस्य सदेव निर्माण के मार्ग में बाधक होते है। जीव तणा जगत ही सत्य है, शेष सब मिथ्या है ऐसा कहकर बौद्ध नास्तिक की श्रेणी में आ गए।

बौद्ध दर्शन के उद्देश्य

बौद्ध कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को सदाचार या नैतिक आचार-व्यवहार की शिक्षा देना, सदाचार की शिक्षा के लिए पंचशील की व्यवस्था थी। पंचशील व्रत -

मैं झूठ बोलने से विरत रहने की शिक्षा लेता है।
मैं प्राणी हिसा से दूर रहने का व्रत लेता है।
में व्यभिचार से अलग रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
मैं नशीली वस्तुओ के सेवन से दूर रहने की शिक्षा लेता हूँ।
मैं चोर कम से विरत रहने का व्रत लेता हूँ।

www.studyofeducation.com

प्रत्येक माह की अष्टमी, पूर्णिमा तथा अमावस्या को अष्टशील व्रत लेने की शपथ दिलाई जाती थी। जो निम्न है

चिन्तन तथा मनन प्रक्रियाओ को तीव्र बनाना।
अष्टांगिक मागों को प्राप्त करने में सहायता देना।
शिक्षा द्वारा सत्वत्व को प्राप्त करना।
अविधा समस्त दुःखो का कारण
शिक्षा द्वारा निर्वाण की स्थिति को प्राप्त करना।

बौद्ध संघ के नियम

संघ में रहकर उसे दस निम्न बातों को ध्यान में रखते हुए जीवन व्यतीत करना होता था

1. जीव हत्या न करना

2. बुरा आचरण न करना

3. झूठ न बोलना

4. असमय भोजन न करना

5. उत्तेजक व मादक पदार्थ न लेना

6. बुराई न करना

7. शृंगार प्रसाधनों का त्याग

8. नृत्यादि से दूर रहना

9 बिना मांगे किसी भी वस्तु को न लेना

10 सोना चांदी जैसी मूल्यवान वस्तु भिक्षा में स्वीकार न करना।

बौद्ध शिक्षा-दर्शन

बौद्ध शिक्षा दर्शन के अन्तर्गत शिक्षा समूहों में प्राप्त की जाती थी तथा अनुशासन नियम थे, जिनका अनुसरण आधुनिक सिद्धान्तों में किया जाता है। 20 वर्ष की आयु में उपसम्पदा संस्कार होता था। उपसम्पदा रकार के उपरान्त सामनेर संघ का पूर्ण एवं विधिवत् सदस्य बनकर धर्म के प्रचार-प्रसार के कार्य में लग जाया करता था। बौद्ध दर्शन का शिक्षा के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण उसके शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, अध्यापक-छात्र सम्बन्ध आदि विचारों में दिखाई देते है, जो निम्नलिखित है

www.studyoneducation.com

बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम

बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम में धार्मिक विषयों और क्रियाओं के साथ-साथ लोकिक विषयों और क्रियाओं को भी महत्वपूर्ण माना गया है और उनके शिक्षण पर भी बल दिया गया है। धार्मिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत चार आर्य सत्यो का ज्ञान, बोद्ध धर्म साहित्य त्रिपिटक, मुवन्त, विनय, धम्म आदि का ज्ञान-तुलनात्मक ज्ञान के लिए वैदिक साहित्य का ज्ञान और मठो तथा विहारों के निर्माण का व्यावहारिक ज्ञान कराया जाता था। लौकिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सामान्य विषयों में पटन, लेखन, गणित, शास्त्रार्थ; कला-कोशल में, शिल्प कलाएँ-जैसे कातना, बुनना, छपाई, रंगाई, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला तथा संगीत; व्यावसायिक विषयों में कृषि, पशुपालन, आयुर्वेद व शल्य चिकित्सा और शारीरिक शिक्षा में व्यायाम व खेलकूद आदि का ज्ञान और अभ्यास कराया जाता था। बौद्ध विहारो तथा मठो में निम्नांकित पाँच प्रकार की विधाएँ प्रचलित थी-शब्द विधा, शिल्पासन विधा, चिकित्सा विधा, हेतु विधा एवं अध्यात्म विधा।

बौद्ध शिक्षा में शिक्षण विधियाँ

बौद्ध काल में लेखन विधि का प्रचलन हो चुका था, परन्तु वह जनसाधारण में प्रचलित नहीं थी। इसलिए बोद्ध विहारी तथा मटो में ब्राह्मणकालीन शिक्षा के ही समान शिक्षण की भौतिक विधि ही प्रमुख रूप से प्रचलित थी। अध्यापक पढ़कर छात्रों को सुनाते थे तथा छात्र सुनकर कण्थस्थ करते थे। बौद्ध शिक्षा में उपदेश प्रणाली का भी प्रचलन था, जो जनसाधारण बौद्ध धर्म में श्रद्धा रखते थे वे बौद्ध भिक्षुओं को अपने यहाँ बुलाकर उनके उपदेश सुनते थे।

इन्हें उपासक कहा जाता था। मठो से गृह विषयो के रहस्य जानने के लिए तर्क विधि का प्रयोग किया जाता था। मटो व विहारी में विशेषज्ञों के भाषणो की भी व्यवस्था की जाती थी। इससे स्पष्ट है कि तब भाषण-पद्धति का भी प्रचलन था। बौद्ध भिक्षु ज्ञान प्राप्त करने हेतु एकान्त में मरन भी किया करते थे। मनन विधि उच्च स्तरीय ज्ञान प्राप्त करने की प्रमुख विधि थी। इसे 'एकान्त साधना विधि भी कहते है।

बौद्ध काल में अध्ययन की कई विधियाँ प्रचलित थी, जो निम्नांकित है-

- पाठ विधि
- उपदेश या प्रवचन या व्याख्यान विधि
- शास्त्रार्थ विधि
- प्रश्नोत्तर विधि
- संगोष्ठी विधि
- व्याख्या विधि
- उपमा विधि
- स्वाध्याय विधि

www.studyofeducation.com

मठों में छात्रों के छोटे-छोटे समूह बनाकर अध्यापक व्याख्या द्वारा उनकी शंकाओं का समाधान करते, अभ्यास कराते तथा छात्रों को पढ़ने हेतु उत्प्रेरित करते थे। इस प्रकार मठों में लघु समूह विधि तथा व्याख्या विधि भी में प्रचलित थीं।

बौद्ध शिक्षा में अध्यापक-छात्र सम्बन्ध

वैदिक तथा गीताकाल के समान ही बौद्ध संघों में गुरु तथा शिष्यों के मध्य बड़े ही आध्यात्मिक मधुर, स्नेहिल तथा सम्मानजनक सम्बन्ध हुआ करते थे। शिष्य गुरु की तन-मन से सेवा किया करते थे। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य मानी जाती थी। प्रातः उठकर शिष्य गुरु के आवश्यक कार्यों की व्यवस्था करते, भोजन पकाते, विहार की सफाई करते, भिक्षा माँगने जाते तथा विहार या मठ के अन्य कार्य पूरी लगन के साथ करते।

इन मठों में गुरु-शिष्य सम्बन्ध मधुर तथा समानता के आधार पर आधारित थे। शिष्यों के समान गुरु के कार्य भी निश्चित थे। यदि कोई गुरु अपने कार्यो में चूक करता तो मठ की परिषद् उस गुरु के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करती है। बौद्ध मठों में दो प्रकार के शिक्षक होते थे—आचार्य तथा उपाध्याय। एक आचार्य के अधीन कई उपाध्याय होते थे।

वास्तविक शिक्षण-कार्य उपाध्यायों द्वारा किया जाता था, जबकि आचार्य अनुशासन, प्रशासन, व्यवस्था जैसे कार्यों को देखते थे। आचार्य ही उपाध्यायों तथा छात्रों के कार्यों व दायित्वों का निर्धारण किया करते थे। बौद्ध काल तक आते-आते शिक्षा के आश्रम बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शिक्षा केन्द्रों में परिवर्तित हो चुके थे, जिन्हें हम आधुनिक भाषा में विश्वविद्यालय कह सकते हैं। इस प्रकार के शिक्षा के केन्द्र प्रमुख रूप से वल्लभी, विक्रमशिला, बंगाल, जगद्ला, मिथिला, नदिया तथा नालन्दा में चल रहे थे।

जैन दर्शन

जैन शब्द की व्युत्पत्ति 'जिन' शब्द हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है, विजय प्राप्त करना। धार्मिक विचारधाराओं में यह बौद्ध दर्शन से काफी पुराना है। यह दर्शन वैदिक नियमों का खण्डन करता है, ईश्वर में विश्वास से इनकार करता है और जीवन के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण प्रकट करता है। जैन धर्म के प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकर थे। जैन धर्म का साहित्य अत्यन्त विशाल है। आरम्भ में साहित्य की भावना प्राकृत थी। संस्कृत भाषा जैन दर्शन के साहित्य का आधार बनी।

ऋषभदेव जैन दर्शन के प्रथम तीर्थंकर और महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे। जैन धर्म के विकास, प्रसार और प्रचार का श्रेय अन्तिम तीर्थंकर महावीर को ही दिया जाता है। उन्होंने ही जैन धर्म को पुष्पित और पल्लवित किया। जैन धर्म मुख्यत: महावीर के उपदेशों पर ही आधारित है। महावीर को 'जिन' अर्थात् आध्यात्मिक विजय करने वाला और 'वर्धमान' भी कहा जाता है। महावीर ने तपस्या के बल पर राग, द्वेष, लोभ, क्रोध आदि पर विजय प्राप्त कर ली थी और आत्मशुद्धि को अपने जीवन का अंग बना लिया था, इसलिए इन्हें 'महावीर' कहा गया। जैन धर्म में अनेक सम्प्रदाय हुए हैं, लेकिन मुख्य सम्प्रदाय दो हैं-दिगम्बर और श्वेताम्बर।

जैन धर्म के मूल सिद्धान्त

जैन धर्म के मूल सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

मन एवं आत्मा की पवित्रता को धर्म माना गया है।

सम्यक् पुरुषार्थ करना प्रत्येक मानव का मुख्य कर्त्तव्य बताया गया है।

जैन दर्शन में देव-शास्त्र एवं गुरुओं की पूजा आत्म-गुणों की प्राप्ति के लिए की जाती है।
प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है।
दिगम्बर सम्प्रदाय में वस्तुओं का संग्रह वर्जित है।
दिगम्बर सम्प्रदाय में स्त्रियों को मोक्ष प्राप्त करने योग्य नहीं माना गया है।
दिगम्बर महामुनिराजों के उपदेशानुसार ही धर्माचरण एवं समाज का संचालन होता है।
जैन दर्शन का मूल मन्त्र ओंकार महामन्त्र है, इसमें पाँच पदों को नमस्कार किया जाता है, किसी व्यक्ति नहीं।
जैन दर्शन में वीतराग भाव को धर्म एवं रागभाव को अधर्म बताया है।
जैन दर्शन रूढ़िवादी नहीं है, वह तो तर्क प्रधान वैज्ञानिक है।
जैन सिद्धान्त आध्यात्मिक सिद्धान्त है, क्रियाकाण्डी नहीं।
सांसारिक कार्यों में अनुकूलता, प्रतिकूलता, पुण्य, पाप, कर्मोदय के अनुसार बनती है।

जैन धर्म के नौ तत्व

1. जीव जैन धर्म में जीव चैतन्य द्रव्य को कहा गया है। जीव ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है। वह ज्ञान और दर्शन से युक्त है। सुख-दुःख का अनुभव जीव को होता है।

2. अजीव धर्म-अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल को अजीव द्रव्य कहा जाता है। ये निरन्तर विद्यमान रहते हैं।

3. निर्जरा कर्म के प्रभाव को तप आदि साधनों के द्वारा क्षय करना निर्जरा कहा जाता है।

4. बन्धन जीव और पुद्गल का संयोग ही बन्धन कहा जाता है। है। पाप का जन्म

5. पाप जहाँ पुण्य नैतिक बल है, वहाँ पाप नैतिक कमजोरी वासनाओं की प्रबलता के कारण होता है। पाप से दुःख होता है।

6. मोक्ष जीव का पुद्गल से वियोग ही मोक्ष कहा जाता है। मोक्ष की अवस्था में आत्मा अपनी पूर्णताओं को पुनः प्राप्त कर लेती है।

7. अजीव धर्म-अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल को जीव द्रव्य कहा जाता है। ये निरन्तर विद्यमान रहते हैं।

8. पुण्य ऐसे कर्म, जिनसे शुभ कर्म का संचय हो, पुण्य कहलाते हैं। शुभ विचार पुण्य को पैदा करते हैं। पुण्य शुभ कर्मों का फल है। शुभ कर्मों के करने से पुण्य का संचय होता है।

9. आश्रव आत्मा की ओर कर्मों का बहना आश्रव कहा जाता है। आश्रव बन्धन का कारण है।

www.studyofeducation.com

जैन दर्शन में शिक्षा का अर्थ

जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा का अर्थ उस विद्या ज्ञान से है, जो व्यक्ति को सद्जीवन के लिए प्रेरित करता है, जो धर्म, जीवन, व्यवसाय और व्यवहार आदि के लिए उपयोगी है, जो सच्चरित्र का साधन है और जो व्यक्ति तथा स्थान दोनों के लिए हितावह है। इस प्रकार जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा का अर्थ अत्यन्त व्यापक और व्यावहारिक है।

.

जैन दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य

जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार है

व्यक्तित्व का विकास करना व्यक्तित्व के तीन पक्ष है-संज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य उक्त तीनों पक्षी का विकास करना है। सम्यक ज्ञान से व्यक्तित्व के संज्ञानात्मक पक्ष का, सम्यक् दर्शन से व्यक्तित्व के भावात्मक पक्ष का और सम्यक् चरित्र से व्यक्तित्व के क्रियात्मक पक्ष का विकास होता है।

सम्यक् ज्ञान प्रदान करना जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को ऐसा ज्ञान प्रदान करना है, जो सही हो, संशय रहित हो, शुद्ध हो, उच्च हो, विवेकपूर्ण हो और सद को ग्रहण करने की क्षमता पैदा करने वाला हो। सम्यक जान व्यक्ति का अपने आपको संसार के सन्दर्भ में जानने का प्रयास है।

सदवृत्तियों से संयुक्त करना जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा का एक उद्देश्य व्यक्ति को सदगुणी बनाना है, उसके अन्दर उत्तम गुणों का विकास करना है। उसको सदत्तियो से संयुक्त करना है। सम्यक दर्शन ज्ञान को सदवृत्तियों से संयुक्त करता है। सम्यक् दर्शन का कार्य व्यक्ति को सत्कर्म की और अभिप्रेरित . करना है।

पूर्ण जीवन या मोक्ष प्राप्त करना जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य उसे सम्यक् ज्ञान प्रदान कर क्रोध, माया, मोह, लोभ आदि से दूर कर कर्म क्षय में सहायक बन मोक्ष की राह दिखाना है। मोक्ष मुक्ति है, जीवन में, आवागमन से सुख और दुःख से, मोक्ष निर्वाण की प्राप्ति है।

सामाजिक, व्यावसायिक एवं सांस्कृतिक विकास करना जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का सामाजिक और सांस्कृतिक विकास करना है, उनमे व्यक्तित्व गुणो के विकास के साथ-साथ सामाजिक गुणों का विकास भी करना है, उनमे स्वाध्याय, कला, संगीत के प्रति अनुराग पैदा करना है उनमे सामाजिक कुशलता, सदाचार जीवन की समझदारी और सांस्कृतिक

www.studyofeducation.com

मूल्यों के प्रति आस्था और विश्वास पैदा करना है। जैन दर्शन जीवन में कर्म को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान देता है. इस दृष्टि शिक्षा भी कार्योन्मुख या रोजगारपरक होनी चाहिए।

बौद्ध एव जैन दर्शन समकालीन है, दोनों का विकास छठी शताब्दी ई. पू. के बाद हुआ। जैन दर्शन में 24वें तीर्थकर का उल्लेख किया गया है, जिसमें ऋषभदेव प्रथम, पाशीनाथ तेईसवे तथा महावीर 24 तथा अन्तिम तीर्थकर थे।

जैन दर्शन में पाठ्यक्रम

जैन दर्शन में आत्मा और सत्य दोनो को ही सत्य माना गया है, इसलिए पाठ्यक्रम में लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनो से सम्बन्धित विषयों को समान महत्त्व दिया गया है। पाठ्यक्रम में जहाँ एक ओर जीवन को सुखपूर्ण बनाने के लिए जगत के ज्ञान एवं रहस्यो के अनावरण पर बल दिया गया है, वहीं दूसरी ओर इनसे बचने और त्यागने के लिए मार्ग भी बताए गए है। जैन दर्शन में ज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि मनुष्य को पहले ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अज्ञानी व्यक्ति तो वरणीय और अवरणोय में अन्तर न कर पाने के कारण ठीक से आचरण भी नहीं कर सकता। इस प्रकार जैन दर्शन अनुसार आध्यात्मिक शिक्षा और लौकिक शिक्षा के अनुरुप आध्यात्मिक और लौकिक पाठ्यक्रम की विवेचना की गई है।

आध्यात्मिक विषयो के अध्ययन पर जैन दर्शन ने बहुत महत्त्व दिया है। जीव, आत्मा, मोक्ष, ज्ञान, पच महाव्रत-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, चार भावनाएँ मैत्री, प्रमोदवृत्ति, करुणावृत्ति, माध्यस्थवृत्ति दस गुण धर्म-क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य, ब्रह्मचर्य आदि को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। जैन दर्शन में विद्यालय में शिल्पों एवं कलाओं की शिक्षा पर बल दिया गया है। सम्यक् ज्ञान के लिए जैन दर्शन इंजीनियरिंग, चिकित्सा, अस्त्र-शस्त्र निर्माण तथा ऐसे ही अन्य कौशलों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करता है। इसी प्रकार जीव व अजीव द्रव्यों के अन्तर्गत चिकित्सा, भौतिक भाष्य, ज्योतिष, अन्तरिक्ष ज्ञान और गणित आदि को सम्मिलित करता है। भौतिक क्षेत्रों में ही जैन दर्शन भूगोल, खगोल, नक्षत्र विज्ञान, जीव विज्ञान, गति विज्ञान आदि विषयों के अध्ययन पर भी जैन दर्शन बल देता है। जैन दर्शन का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ तत्वार्थाधिगम है।

जैन दर्शन में शिक्षण विधि

जैन दर्शन में ज्ञान के निम्नांकित पाँच रुप और उनको प्राप्त करने की विधियाँ बताई गई है।

1. मति ज्ञान 2. श्रुति ज्ञान 3. अवधि ज्ञान 4. मन पर्याप्त ज्ञान 5. कैवल्य ज्ञान

ज्ञान के उपरोक्त पाँचों रुपों और उनको प्राप्त करने की विधियों के आधार पर जो शिक्षण विधियाँ स्पष्ट होती है, वे इस प्रकार हैं

www.studyproeducation.com

1. प्रश्नोत्तर विधि इस विधि के द्वारा जहाँ गूढ और दुरुह विषय को सरलतापूर्वक समझाया जाता था, वहीं गुरु और शिष्य के प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर देकर भारतीय ज्ञान का संवर्द्धन करते थे।

2. चिन्तन-मनन विधि इस विधि के अन्तर्गत विषय पर चिन्तन-मनन आता है, जिससे कार्य विषय को अच्छी प्रकार से समझा जा सके और उसके प्रत्येक पक्ष पर गम्भीरता के साथ गहनता से विचार किया जा सके।

3. स्वाध्याय विधि स्वाध्याय विधि का प्रयोग विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति के लिए किया जाता है। ज्ञान प्राप्त करना उसे सन्देह रहित विशद् और परिपक्व बनाना और उसके प्रचार का प्रयत्न करना ये सभी स्वाध्याय के अन्तर्गत आ जाते हैं। स्वाध्याय केवल ग्रन्थों का अध्ययन मात्र नहीं है अपितु उसके अनुसार आचरण करना भी स्वाध्याय ही कहलाता है।

4. पाठ विधि इस विधि का प्रारम्भ आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से होता है। इसी विधि के द्वारा उन्होंने अपनी कन्याओ-ब्राह्मणी और सुन्दरी को शिक्षा दी।

5. शास्त्रार्थ विधि इस विधि को तर्क विधि और अनुमान विधि कहा जाता है। इसमें आगमन एवं निगमन का प्रयोग किया जाता है। विद्यार्थियों को बहुत-सा ज्ञान तर्क के द्वारा देना आवश्यक होता है।

www.studyofeducation.com

जैन दर्शन में अनुशासन

जैनागम में अनुशासन के आठ गुणों का उल्लेख किया गया है, जो ज्ञान प्राप्ति में सहायक हैं। ये इस प्रकार है

1. ज्ञान को गम्भीरता से ग्रहण करना चाहिए।
2. शुद्ध आचरण करना चाहिए।
3. क्रोध नहीं करना चाहिए।
4. इन्द्रिय सुखो की लालसा न करते हुए अध्ययन पर ध्यान लगाना चाहिए।
5. लोलुपता से दूर रहना चाहिए।
6. सत्य बोलना चाहिए।
7. चरित्रवान होना चाहिए।
8. कटुवाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जैन दर्शन में छात्र

छात्रों में जैन दर्शन के निम्नांकित लक्षण बताए गए हैं

विनम्र होना
शिष्टाचार का पालन करना
प्राप्त ज्ञान पर अहंकार न करना
कलहोत्पादक बातें न करना
क्रोध न करना
विषय के प्रति जागरुक रहना
अप्रिय मित्र के लिए भी एकान्त में उसकी भलाई की कामना करना
वाक्युद्ध और शारीरिक युद्ध से दूर रहना
छल-कपट रहित होना
चपलता और चंचलता का न होना

जैन दर्शन में शिक्षक

गुरुजनों से समाज को मार्गदर्शन प्राप्त होता है। गुरुजन न केवल ज्ञानवर्द्धक होते हैं, अपितु उनका अनुभव भी बहु-आयामी होता है। उनका व्यक्तित्व पूर्वाग्रहरहित निष्पक्ष होने के कारण उनके वचनो, उपदेशो और प्रवचनो पर समाज की अनन्य आस्था होती है। गुरु के लिए शब्द मुख्यतः प्रयुक्त होते हैं-अध्यापक और शिक्षक। इनके प्रत्येक वर्ण का आर्थिक अभिप्राय जैन परम्परा में इस प्रकार से महिमामण्डित किया गया है।

अध्यापक = अ - अध्ययनशील ध्या - ध्यानशील प - पापभीरु क - कर्मनिष्ठ
शिक्षक = शि - शिष्ट क्ष - क्षमाशील क - कर्तव्यनिष्ठ

इन गुणों से विभूषित शिक्षक देश की भावी पीढ़ी को शिक्षित करके सुयोग्य नागरिक बनाते हैं। जैन दर्शन में दो प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख है। आचार्य और उपाध्याय। आचार्य अनुशासन और चरित्र निर्माण के लिए उत्तरदायी होता है। आचार्य के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि उसे निष्कलंक चरित्र का होना चाहिए, जितेन्द्रिय होना चाहिए। क्रोध, मान, माया और लोभ को सर्वथा त्याग देना चाहिए। समाज धर्मसम्मत आचरण करने वाला होना चाहिए, इच्छाओं और कामनाओं का त्याग करने वाला और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला होना चाहिए।

उपाध्याय का मुख्य कार्य अध्ययन और अध्यापन है। जैन दर्शन में कहा गया है कि उपाध्याय के ज्ञान की विशिष्ट शाखा में निष्णात होना चाहिए, उसका दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए, उसका आचरण उत्तम और अनुकरणीय होना चाहिए, उसमें छात्रों की जिज्ञासाओ का सगधान करने की कुशलता होनी चाहिए।

www.studyoleducation.com

जैन दर्शन अनुसार छात्र और शिक्षक के बीच अत्यन्त मधुर और निकट सम्पर्क होना चाहिए। छात्रों को चाहिए कि वह शिक्षक का तुल्य करें और उसकी आज्ञाओं का पूर्ण निष्ठा के साथ पालन करें तथा शिक्षक को चाहिए कि वह अपने छात्र को पुत्रवत् देखभाल करे अर उसको हर सम्भव ज्ञान प्रदान करने का प्रयत्न करे।

दयानन्द दर्शन

स्वामी दयानन्द सरस्वती का शिक्षा दर्शन, 'सत्यार्थ प्रकाश' के विशेष सन्दर्भ पर आधारित है। महर्षि दयानन्द ने 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इस पुस्तक की रचना की। यह ग्रन्थ वैचारिक क्रान्ति की एक शुरुआत थी। समाज के सभी वर्गों पर इस ग्रन्थ का गहरा प्रभाव पड़ा। प्राचीन शिक्षा पद्धति के अनुसार, शिक्षा पूर्ण होने पर गुरु दक्षिणा का प्रावधान होता था, परन्तु दयानन्द ने गुरुदक्षिणा के रुप में अपने गुरु को देश का उपकार करने, सत्य शास्त्रों का उद्धार करने और वैदिक धर्म को प्रोत्साहित करने का वचन दिया। स्वामी दयानन्द का जन्म उस काल में हुआ जब सामाजिक जीवन में अन्धविश्वास और कुरीतियाँ व्याप्त थीं। समाज में भेदभाव का माहौल व्याप्त था। भारतीय अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति तथा दर्शन की मूल भावना से विमुख हो गए थे। तत्कालीन परिस्थितियों समर्थक स्वामी दयानन्द थे। में आर्य समाज के संस्थापक एवं वैदिक धर्म भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों का गहराई से अध्ययन किया और उसके पतन के कारणों को खोजकर उन कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक विश्व के प्रथम विचारक थे, जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में सबके लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा विशेषकर प्राथमिक शिक्षा का सिद्धान्त रखा था। उनके एक प्रमुख शिष्य स्वामी दर्शनानन्द जी ने भारत में सबसे पहले निःशुल्क शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया था।

दयानन्द के अनुसार, शिक्षा जिससे विधा, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता आदि की वृद्धि हो और अविधा दोष दूर हो उसे शिक्षा कहते हैं। दयानन्द के अनुसार विधा के पाँच लक्षण हैं; यथा-विधा प्रदान करना, सभ्य बनाना, धर्मात्मा बनाना, जितेन्द्रियता बढ़ाना और अविधा से मुक्ति दिलाना। इस प्रकार शिक्षा में इहलौकिक और पारलौकिक सभी विधाएँ आती हैं। सत्यार्थ प्रकाश के नौवें भाग में स्वामी दयानन्द ने विधा अविधा के योग सूत्र के अनुसार अन्तर किया है। अविधा के कारण मनुष्य अनित्य को नित्य और अपवित्र को पवित्र समझता है। जबकि विधा से दुःखों से छुटकारा मिलता है एवं इसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

दयानन्द दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार, शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। सत्यार्थ प्रकाश में दयानन्द ने स्पष्ट किया है कि जो मनुष्य विधा और अविधा दोनों के स्वरुप को जानता है, वह अविधा अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को जीतकर विधा अर्थात्

www.studyofeducation.com

यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है। आदर्शवादी होने के कारण दयानन्द ने शिक्षा व्यवस्था में चरित्र के विकास को अधिक महत्त्व दिया है। यह चरित्र का विकास ज्ञानोपार्जन पर आधारित है, क्योंकि विधा अथवा ज्ञान के बिना चरित्र नहीं बन सकता है।

दयानन्द शिक्षा के व्यावहारिक पहलू पर भी विशेष जोर देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य सदाचार और नैतिकता का विकास करना है। इसके लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक माना। शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत विकास करना ही नहीं, बल्कि समाज में ऐसे नर-नारियों का निर्माण करना है, जो अपने कर्तव्यों को भली-भाँति पूरा कर सकें। दयानन्द ने समाज के सभी वर्गों के लिए शिक्षा का समर्थन किया है। दयानन्द दर्शन के अनुसार, शिक्षा के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं -

सार्वभौम और अनिवार्य शिक्षा

स्वामी दयानन्द देश में सार्वभौम शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने स्त्री-पुरुष तथा प्रत्येक वर्ण के बालकों के लिए शिक्षा आवश्यक मानी। राज्य को यह देखभाल करनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपने बालको को अनिवार्य रुप से शिक्षा प्राप्त करने हेतु भेजे। इस प्रकार दयानन्द सरस्वती शिक्षा में जनतन्त्रीय आदर्श को मानते हैं। राज्य की ओर से यह नियम होना चाहिए कि जो व्यक्ति अपने बालकों को नियमित शिक्षा उपलब्ध करवाने में समक्ष नहीं है ऐसे बालकों को नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध करवाए।

www.studyofeducation.com

घर में शिक्षा

दयानन्द दर्शन के अनुसार, बालक की सबसे पहली नैतिक शिक्षा घर में होनी चाहिए क्योकि घर में ही उसके चरित्र की नींव पड़ती है। वह अच्छी आदतें सीखता है एवं बुरी आदतों से बचता है। इस मनोवैज्ञानिक नियम को भली-भाँति समझते हुए दयानन्द ने जोर दिया कि माता-पिता अपने बालकों को यथासम्भव जितेन्द्रिय विधा-प्रिय और सत्संग में रुचि रखने वाला बनाए। वे उन्हें व्यर्थ क्रीड़ा, रुदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष शाक, लालुपता, ईर्ष्या, द्वेष आदि से रोके।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार, जब लड़का-लड़की पाँच वर्ष के हो जाएँ, तो उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करवाया जाए। बालको को ऐसे उपदेश दिए जाएँ जिनसे उनका भूत-प्रेत आदि मिथ्यापूर्ण बातों पर विश्वास न हो। विधा को विषयों की कथा, विषयी लोगों का साथ, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि से दूर रहना चाहिए। इस प्रकार माता-पिता द्वारा 5 वर्ष तक घर पर ही शिक्षा दी जानी चाहिए।

माता द्वारा शिक्षा

दयानन्द दर्शन के अनुसार, बालक बालिकाओं को बचपन से ही ब्रह्मचर्य का उपदेश देना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मचर्य के अभाव में मनुष्य दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साहहीन हो जाता है और उसमे साहस, धैर्य, बल, पराक्रम आदि नहीं रहते है।

घर में माता का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वह नित्य पल अपने बच्चे के साथ घर में रहती है, इसलिए बालकों के विकास पर माता का प्रभाव अधिक रहता है। अनुसार जन्म से पाँचवे वर्ष तक बालको को माता द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। आधुनिक शिक्षा दर्शन और शिक्षा मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से दयानन्द की यह बात अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

पिता द्वारा शिक्षा

दयानन्द दर्शन के अनुसार, बालक की प्रारम्भिक शिक्षा में माता-पिता का विशिष्ट योगदान रहता है। इसलिए माता-पिता दोनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। माता-पिता द्वारा दी गई शिक्षा से बालकों को भावनात्मक सन्तोष प्राप्त होता है। दयानन्द ने नौवें वर्ष के प्रारम्भ में उपनयन संस्कार के पश्चात् बालक-बालिकाओं को आचार्य कुल में शिक्षा हेतु भेजे जाने का विधान किया है।

पुरस्कार एवं दण्ड का सिद्धान्त

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बालकों की शिक्षा में पुरस्कार और दण्ड के सिद्धान्त पर विशेष ध्यान दिया है। हालाँकि दयानन्द ने शारीरिक दण्ड के बजाय मौखिक दण्ड पर विशेष बल दिया, जो माता-पिता अध्ययन कराने हेतु सन्तानों को लाड़-प्यार नहीं करते है, किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं उन्हीं को सन्तान सभ्य, शिष्ट एवं प्रकाण्ड विद्वान् बनते है। अधिक लाड़-प्यार से बालक दोषयुक्त हो जाता है, जबकि ताड़ना अर्थात् दण्ड देने से गुण बढ़ता है। बालको को यह भली-भाँति पता होना चाहिए कि उनके माता-पिता एवं शिक्षक किन बातो के विरोधी हैं। उन्हें ताड़न से आसन्न नहीं होना चाहिए और न ही अत्यधिक लाड़-प्यार की इच्छा करनी चाहिए।

www.studyofeducation.com

आदर्श द्वारा नैतिक शिक्षा

दयानन्द दर्शन के अनुसार, बालको की शिक्षा में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयास माता-पिता और शिक्षक द्वारा सही आदर्श उपस्थित करना है। दयानन्द ने यह स्पष्ट किया है कि जो माता-पिता एवं शिक्षक सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम नहीं होते हैं ऐसे बालकों का नैतिक विकास भी समुचित ढंग से नहीं हो पाता है। दयानन्द सरस्वती बालकों की नैतिक शिक्षा पर विशेष बल देते हैं। उनका मानना था कि चरित्र निर्माण के बीज बचपन में ही पड़ जाते हैं। बचपन में शिष्टाचार की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। बालकों को चाहिए कि वे बड़ों का सम्मान करें। गुणों को स्वीकार कर दोषों का परित्याग करना चाहिए। सभी को अपने-पिता और आचार्य की तन-मन-धन से सेवा करनी चाहिए।

आदर्श शिक्षक द्वारा शिक्षा

दयानन्द दर्शन के अनुसार, शिक्षा व्यवस्था चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो उससे लाभ तभी हो सकता है जब तक वह आदर्श शिक्षकों के हाथ में न हो। दयानन्द ने आचार्य अथवा शिक्षक के चरित्र पर विशेष बल दिया है। उनका मानना था कि जो अध्यापक दुराचारी हो उन्हें शिक्षक के पद पर कभी भी नियुक्त नहीं करना चाहिए। शिक्षकों को स्वयं विद्वान् होना चाहिए। उन्हें तपस्वी होना चाहिए तथा धर्मानुष्ठान करते हुए वेद आदि शास्त्रों को पढ़ना-पढ़ाना चाहिए।

दयानन्द दर्शन में शिक्षा व्यवस्था के सिद्धान्त

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा व्यवस्था में जनतन्त्रीय आदर्शों का समर्थन किया। उनके अनुसार विद्यालय में सभी विद्यार्थियों को एकसमान खान-पान, वस्त्र एवं आसन दिए जाने चाहिए। सन्तान को माता-पिता से और माता-पिता को सन्तान से मिलने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। आपस में पत्र व्यवहार से भी बचना चाहिए। यद्यपि दयानन्द की यह व्यवस्था बालक-बालिकाओं के भावनात्मक विकास पर नकारात्मक प्रभाव भी डाल सकती है। शिक्षा शैली का रचनात्मक विकास तभी सम्भव है जब शिक्षा को व्यवस्थित परिवेश में प्रदान किया जाए।

दयानन्द दर्शन में बहुमुखी पाठ्यक्रम

दयानन्द दर्शन के अनुसार, विद्यालय में पाठ्यक्रम के विषय में दयानन्द ने स्त्रीपुरुष सभी के लिए लगभग एक-सा पाठ्यक्रम निर्धारित किया। उनका मानना था कि महिलाओं को वेद का अध्ययन करवाया जाए। उन्होंने शस्त्रास्त्र विधा के अध्ययन पर विशेष बल दिया। इसके माध्यम से राजा न्यायपूर्ण शासन व्यवस्था स्थापित करता है। उन्होंने राज विधा सिखाने के बाद गान्धर्व वेद के अध्ययन पर भी विशेष बल दिया।

इसके अतिरिक्त दयानन्द ने अथर्ववेद, ज्योतिष शास्त्र, सूर्यसिद्धान्त के अध्ययन पर भी विशेष बल दिया। उनका मानना था कि सभी महत्त्वपूर्ण साहित्यों एवं वेदों का अध्ययन इक्कीस वर्ष तक समाप्त हो जाना चाहिए। दयानन्द ने प्रत्येक विषय सिखाने के लिए प्रामाणिक ग्रन्थों की लम्बी सूची प्रस्तुत की, साथ ही ऐसे अप्रामाणिक ग्रन्थों की भी सूची बनाई जो नहीं पढ़े जाने चाहिए। ऐसे ग्रन्थ कपोल-कल्पित एवं मिथ्या होते हैं।

दयानन्द दर्शन में शिक्षा में विघ्न

दयानन्द ने अपने शिक्षा के दर्शन में शिक्षा में विघ्नों का व्यापक वर्णन किया है। ये विघ्न है कुसंग अर्थात् कुष्ट विषयी लोगों का संग इत्यादि, दुष्ट व्यसन, वेश्यागमन, इत्यादि। 25 वर्ष की आयु से पूर्व पुरुष का और 16 वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना, पूर्ण

www.studyofeducation.com

ब्रह्मचर्य न होना, अति भोजन, अति जागरण, अध्यापन में मन न लगना, ईश्वर का तिरस्कार करना, आलस्य, कपट तथा आचार्य विद्वान् की संगति से वंचित हो जाना शिक्षा में विघ्न के प्रतिरुप माने जाते हैं।

दयानन्द दर्शन में ब्रह्मचर्य का महत्त्व

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विद्यार्थी के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अनिवार्य माना है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन स्त्री एव पुरुष दोनों के लिए अनिवार्य है। उत्तम ब्रह्मचर्य 48 वर्ष की आय पर्यन्त रखा जाता है। मध्यम ब्रह्मचर्य 44 वर्ष की आयु पर्यन्त रखा जाता है। स्त्री के सन्दर्भ में यह आयु 22 वर्ष निर्धारित है।

दयानन्द दर्शन में स्त्रियों की शिक्षा

सरस्वती ने सबके लिए सामान्य पाठ्यक्रम के साथ-साथ भिन्न-भिन्न वर्गों के स्त्री-पुरुषो के उनके वर्ण के अनुरुप विशेष शिक्षा का भी आयोजन किया है। उनका मानना था कि केवल पुरुषों में ही नहीं, बल्कि भिन्न-भिन्न वर्ण की स्त्रियों को भी उनके वर्ण के अनुरुप शिक्षा दी जानी चाहिए। ब्राह्मणो एवं क्षत्रियों को सम्पूर्ण शिक्षा, वैश्यों को व्यवहार शिक्षा और शूद्रों को पाक आदि सेवा की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। पुरुषों के समान स्त्रियों को भी धनुर्वेद, वैयाकरण, धर्म, वैधक गणित, शिल्प विधा आदि सीखनी चाहिए, क्योंकि इसके बिना सन्तानोत्पत्ति और उनका पालन-पोषण तथा शिक्षा का विकास उचित ढंग से सम्भव नहीं है।

www.studyofeducation.com

इस्लामी धर्म दर्शन पर आधारित शिक्षा (Education Based on Islamic Religion)

"किसी भी समाज की शिक्षा का सम्बन्ध आम परिपाटी के मूल में निहित विश्वास या मत है, जिनका हमेशा बिल्कुल स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट होना आवश्यक नहीं है। इसको बुनियादी शिक्षा दर्शन माना जा सकता है। शिक्षा दर्शन मानव चिन्तन का अपने अतीत और भविष्य के अनुभवों को क्रमशः व्याख्या करने और संगठन करने के लिए सिद्धान्तो की खोज है। भारत मे मध्ययुग में इस्लाम का आगमन हुआ, जिसने भारतीय समाज, संस्कृति और विचारधारा के चिन्तन के नए तत्त्व देकर नए शिक्षा दर्शन का सूत्रपात किया। इस्लाम दर्शन के अनुसार शिक्षा का अर्थ कुरान मे लिखा गया, इल्म या ज्ञान है जिसे पढ़ने, सीखने और व्यवहार में धारण करने से है।

इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षा का अर्थ

इस्लाम दर्शन में ज्ञान की प्राप्ति के लिए बल दिया गया है। वास्तव में सभी धर्म ज्ञान की महत्ता को नहीं भुला सके। न केवल भारतीय लोगो ने ही बल्कि दुनिया भर के सभी मनुष्यों ने ज्ञान को जीवन का प्रयास समझा और अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने का ने सफल प्रयास किया एवं मार्गदर्शन पाया। यह मार्ग दर्शन जिस प्रक्रिया मे हुआ उसे शिक्षा की संज्ञा दी गई।

शिक्षा की यही धारणा इस्लामी शिक्षा दर्शन में भी पाई जाती है। कुरान की शुरुआत ईश्वर की प्रार्थना से होती है, जिसमें सही मार्ग पर चलने की मांग है। कुरान के अनुसार, अल्लाह के प्रत्येक बन्दे को कयामत के अन्तिम प्रहर तक अल्लाह के न्याय में विश्वास करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को भले कर्म में विश्वास रखना चाहिए।

अल्लाह जड़ और आत्मा से उच्च है। ला इलाह इलिल्लाह मुहम्मदुर्ररसूलिल्लाह' इस्लाम के सिद्धान्तों का संक्षिप्त रूप है। इसके अनुसार अल्लाह के सिवाय और कोई पूजनीय नहीं है। अल्लाह का राजदूत मोहम्मद' को कहा गया है।

अल्लाह के दूत के रूप में मोहम्मद साहब ने बहुईश्वरवाद, मूर्तिपूजा अल्लाह दूत द्वैतवाद व नास्तिकों का विरोध किया। शिक्षा का अर्थ कुरान में लिखा गया इल्म या ज्ञान है जिसे पढ़ने, सीखने और धारण करने और व्यवहार में लाने का समन्वित प्रयास ही शिक्षा है।

इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षा का उद्देश्य

इस्लाम धर्म दर्शन एवं परम्पराओ में शिक्षा द्वारा मनुष्य के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास पर बल देता है। इसके द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्य निम्न है

- ज्ञान की प्राप्ति
- आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास
- सामाजिक विकास
- सांस्कृतिक विकास
- व्यावसायिक, आर्थिक और भौतिक विकास
- एकेश्वरवाद पर बल

www.studyofeducation.com

इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षा का पाठ्यक्रम

इस्लामी शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न विषयों को रखा गया है कुछ पाक चीजे' और 'अचछा सलूक', 'नेककार', 'नमाज', 'रोजा' 'वंगत', 'हज' की क्रियाएं भी शामिल है। इस पाठ्यक्रम को दैनिक क्रियाकलाप से जोड़ा गया है। ये करना प्रत्येक इनसान के लिए फरज है। इसके अतिरिक्त इस्लाम धर्म में निम्नलिखित पात्यक्रमो को शामिल किया गया है।

- भौतिक विषय भाषा, साहित्य, भाषाशास्त्र, व्याकरण, समाज विज्ञान, इतिहास, राजनीति, गणित, ज्योतिषशास्त्र प्राकृतिक विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, भवन निर्माण, नक्काशी, युद्धकला तथा शिल्प कला।
- भौतिक क्रियाएँ एक दूसरे के माथ अच्छा व्यवहार तथा दीन-हीन की सेवा करना।
- धार्मिक विषय इसके अन्तर्गत धर्मशास्त्र, अध्यापक, इस्लामी दर्शन शरीयत और नसीहते इत्यादि शामिल है।
- धार्मिक क्रियाएँ नमाज एवं क्रियाएँ।

www.studyofeducation.com

इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षण विधियाँ

इस्लामी दर्शन के मानने वाला ने शिक्षा की विधिया पर भी प्रकाश डाला है उनके विचारों के अनुसार हम कुछ विशिष्ट शिक्षण विधियों के संकेत मिलते है।

इस्लामी शिक्षा दर्शन की निम्नलिखित शिक्षण विधियाँ हैं

- उपदेश विधि
- सचेतन अनुकरण विधि
- पुस्तक अध्ययन विधि
- व्याख्यान विधि
- तर्क विधि
- समारोह एव यात्रा विधि

इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षक

इस्लाम धर्म में शिक्षक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। कुरान आयतो से ज्ञात होता है कि 'अल्लाह ही सबसे बड़ा शिक्षक है। शिक्षक का कर्तव्य लोगो को कुफ्र के अन्धेर से निकालकर ईमान के उजाले में लाना है।

लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षक के निम्नलिखित कार्य होने चाहिए

- इस्लाम का प्रचार-प्रसार करना (To Propagate Islam) विद्यार्थियो को इस्लाम के मौलिक सिद्धान्तों, इस्लामी दर्शन, इतिहास तथा साहित्य इत्यादि से परिचित करवा कर ऐसा किया जाता है।
- इस्लाम के सिद्धान्तों पर आधारित एक विशिष्ट प्रकार की नैतिकता विकसित करना।
- प्राचीन इस्लामी नियमी तथा सामाजिक परम्पराओ को प्रतिपादित करना।
- नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण कविताएँ विद्यार्थियों को कण्थस्थ करवाना।
- विशिष्ट रुप से मुसलमान अनुयायियों में जान का प्रसार करना।
- विद्यार्थियों के चरित्र का विकास करना।
- विद्यार्थियों को व्यावहारिक जीवन तथा भौतिक लाभों की प्राप्ति के लिए तैयार करना।
- मानव मूल्यों की शिक्षा प्रदान करना।

इस्लामी दर्शन के अनुसार, शिक्षक को पिता के तुल्य माना जाता है, जो सभी तरह से विद्यार्थी को सही ज्ञान दे और सन्मार्गी बनाए। पिता भी एक गुरु या शिक्षक होता है , जग्गा कि चाहिय जैरर ईश्वर के पैगम्बर के मुंह से कहलवाया गया है। वही अपनी सन्तान को अच्छा बनाने के लिए ईश्वर से दुआ मांगता है। इस प्रकार प्रत्येक पिता अपने पुत्र के लिए शिक्षक होता है, जो उसे राह-ए-अल्लाह पर चलने की नसीहत देता है। शिक्षक भी शिक्षाथी के लिए नहीं करता है।

www.studyofeducation.com

इस्लामी धर्म दर्शन में शिक्षार्थी का कर्तव्य

इस्लाम धर्म दर्शन में शिक्षार्थियों से यह अपेक्षा की जाती है कि अल्लाह और पैगम्बर मोहम्मद साहब में विश्वास करें और उनके दिखाए गए मार्ग पर चले। वे सयमी और परिश्रमी ही, अपने शिक्षको की आज्ञा का पालन करे, एक-दूसरे के प्रति विनम्रतापूर्ण व्यवहार करें, कभी कोई अपराध न करे और यदि भूल से कभी अपराध हो जाए, तो उसके लिए तौबा (पश्चाताप) करें।

इस्लामी धर्म दर्शन में अनुशासन

इस्लाम दर्शन में अनुशासन को बहुत महत्त्व दिया गया है। इसके अनुसार मोहम्मद साहब के दिखाए गए मार्ग पर चलना ही सच्चा अनुशासन है। इनका विश्वास है कि वास्तविक अनुशासन की स्थापना के लिए यह सब करना आवश्यक है, परन्तु समय के साथ इसका स्वरुप बदल गया। स्कूलो मे अनुशासन का अभिप्राय है उस्तादो (गुरु) के आदेशों का पालन करना और इसकी स्थापना के लिए शागिर्दो (विद्यार्थी) को कठोर दण्ड दिया जाने लगा। वर्तमान में भी इस्लाम शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन को इसी रुप में लिया जाता है।

PART B- पाश्चात्य विचारधाराओं का योगदान

पाश्चात्य शिक्षा दर्शन (Western Education Philosophy)

दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में पश्चिमी दार्शनिकों का हमेशा से ही अपना विशिष्ट स्थान रहा है। पश्चिम के दार्शनिकों की यह परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। पाश्चात्य दर्शन में सैद्धान्तिकता के क्रमबद्ध विकास पर बल दिया जाता है। अतः पाश्चात्य दर्शन में सैद्धान्तिक प्रयोजन की प्रधानता रहती है। पाश्चात्य शिक्षा दर्शन में शुष्क चिन्तन का प्राधान्य बना रहता है, क्योंकि यह दर्शन, धर्म एवं नीति से कोई प्रेरणा नहीं लेता। पाश्चात्य शिक्षा दर्शन में चिन्तन, मनन तथा तर्क-वितर्क पर विशेष बल दिया गया है।

इस दर्शन में केवल बाह्य जगत के अध्ययन अर्थात् भौतिक जगत के अध्ययन पर बल दिया जाता है। इसमें संवेदनाओं, भावनाओं तथा कर्म को कोई स्थान नहीं दिया गया है तथा केवल बौद्धिक ज्ञान और विज्ञान पर विशेष बल दिया गया है। पाश्चात्य दार्शनिकों का विचार है कि पारलौकिक ज्ञान ही दर्शन है, जो सत्य का प्रत्यक्षीकरण कराता है।

उनका मानना है कि दर्शन विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है, जो अलौकिक तत्त्वों को वास्तविक रुपों में देखता है। विश्व की अनेक राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्तियों के प्रारम्भ होने में पाश्चात्य दार्शनिकों की प्रेरणा रही है। दर्शन की प्रमुख पश्चिमी विचारधाराओं में आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, व्यावहारिकतावाद, मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद विशेष रुप से शामिल हैं। जिनका वर्णन अग्रलिखित है

आदर्शवाद (Idealism)

आदर्शवाद शब्द अंग्रेजी के Idealism' शब्द का हिन्दी रुपान्तर है, जिसका अर्थ है 'विचारवाद'; जबकि दूसरे रुप में 'आदर्शवाद' से है। इस शब्द का प्रमुख स्रोत प्लेटो के विचारवादी सिद्धान्त से हुआ, जिसके द्वारा अन्तिम सत्ता विचार अथवा विचारवाद द्वारा की जाती है। अतः स्पष्ट है कि आदर्शवाद सर्वप्रथम विचार पर बल देता है, इसके पश्चात् पदार्थ पर विचार करता है।

www.studyneducation.com

आदर्शवाद प्रत्यक्ष आँकड़ों की वैधता को स्वीकार करता है। आदर्शवाद अध्यात्म पर बल देता है और उसे अन्तिम सत्ता मानता है। इस विचारधारा ने मन को अधिक महत्त्व दिया है। आदर्शवाद आध्यात्मिक सत्यों तथा मूल्यों 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' को संसार में सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है और उन्हें शाश्वत तथा सर्वव्यापी मानता है। उनकी मान्यता है कि ये मूल्य ही अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति में सहायक होते हैं, इसलिए इनको जानना व्यक्ति का परम धर्म है। आदर्शवादी दार्शनिकों में डेकार्त, स्पिनोजा, लाइबनीज, बर्कले, काण्ट, हीगल, शैलिंग, शोपेनहावर एवं जेण्टाइल प्रमुख हैं। भारतीय आदर्शवादी दार्शनिकों में महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर प्रमुख हैं। शिक्षा में आदर्शवादी विचारधारा के प्रवर्तकों में कमेनियस, पेस्टोलॉजी एवं फ्रोबेल आदि प्रमुख हैं।

आदर्शवाद की प्रमुख परिभाषाएँ

आदर्शवाद की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

एस वी हैण्डरसन के अनुसार, "आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है, इसका कारण यह है कि आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य और जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। आदर्शवादियों का विश्वास है कि मनुष्य अपने सीमित मस्तिष्क को असीमित मस्तिष्क से प्राप्त करता है। वे यह मानते हैं कि व्यक्ति और संसार दोनों बुद्धि की अभिव्यक्तियाँ हैं। वे कहते हैं कि भौतिक संसार की व्याख्या मस्तिष्क से ही की जा सकती है।"

राजन के अनुसार, "आदर्शवादियों का विश्वास है कि ब्रह्माण्ड की अपनी बुद्धि एवं इच्छा है और भौतिक वस्तुओं को उनके पीछे विद्यमान मन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।"

" **जे एस रॉस** के अनुसार, "अध्यात्मवादी दर्शन के बहुत से और विविध रुप हैं, पर सबका आधारभूत तत्त्व यह है कि संसार का उत्पादक कारक मन या आत्मा है, वास्तविक सत्य मानसिक स्वरूप है।"

बूबेकर के अनुसार, "इस जगत को समझने हेतु मन केन्द्रीय बिन्दु है। इस जगत को समझने के लिए मन की क्रियाशीलता से बढ़कर अन्य कोई वास्तविकता नहीं है।"

डी.एम. दत्ता के अनुसार, "आदर्शवाद वह सिद्धान्त है जो अन्तिम सत्ता आध्यात्मिकता को मानता है।" 1

आदर्शवाद के प्रमुख सिद्धान्त

आदर्शवाद के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं

www.studyofeducation.com

आध्यात्मिक जगत का सिद्धान्त

आदर्शवादी दार्शनिकों ने जगत को दो भागों-आध्यात्मिक जगत एवं भौतिक जगत में बाँटा है। आदर्शवाद की मान्यताओं के अनुसार भौतिक जगत की अपेक्षा आध्यात्मिक जगत का अधिक महत्त्व है। वास्तव में आध्यात्मिक जगत ही सत्य है, भौतिक जगत मिथ्या मात्र है। आदर्शवादी विचारकों के मत में जीवन का परम लक्ष्य इसी आध्यात्मिक जगत को समझना है।

होर्नी के अनुसार, "आदर्शवाद की मान्यता है कि विश्व का क्रम नित्य एवं आध्यात्मिक सत्यता के देश एवं काल में प्रकटीकरण के कारण चलता है।".

वस्तु या पदार्थ की अपेक्षा विचार का सिद्धान्त

भौतिक जगत को प्रत्येक वस्तु का हमारे मस्तिष्क में एक विचार होता है। आदर्शवाद के अनुसार भौतिक वस्तु की अपेक्षा विचार का महत्त्व अधिक होता है। अतः आदर्शवाद वह दर्शन है जो 'द्रव्य से अधिक मस्तिष्क' को प्रधानता देता है।

प्लेटो के अनुसार, "विचार अन्तिम एवं सार्वभौमिक महत्त्व वाले होते हैं। यही वे प्रतिमान हैं, जिनके द्वारा उचित परीक्षा ली जाती है। ये विचार अन्तिम और परमाणु हैं, जिनसे विश्व को स्वरुप प्राप्त होता है। ये वे आदर्श अथवा अपरिवर्तनीय हैं।"

जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य के महत्त्व का सिद्धान्त

आदर्शवाद जड़ प्रकृति की अपेक्षा मानव को अधिक महत्त्वपूर्ण तथा सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता है, क्योंकि उसमें विचार करने, अनुभव करने तथा रचना करने की क्षमता होती है। आदर्शवादियों का मत है कि इस आध्यात्मिक जगत में विचार ही प्रमुख हैं और इनको मनुष्य ही प्रकट कर सकता है। इस प्रकार मनुष्य न केवल आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत को भावी पीढ़ी में हस्तान्तरित करता है, अपितु उसमें अपना योगदान भी देता है।

रस्क के अनुसार, "इस आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण स्वयं मनुष्य ने किया है अर्थात् समस्त नैतिक तथा आध्यात्मिक वातावरण समस्त मनुष्यों को रचनात्मक क्रियाओं का ही फल है।"

आध्यात्मिक मूल्यों का सिद्धान्त

आदर्शवादी मान्यताओं के अनुसार आध्यात्मिक मूल्यों का विशेष महत्त्व है, ये मूल्य हैं-सत्यम्- शिवम्-सुन्दरम्। ईश्वर के साक्षात्कार के लिए इन मूल्यों को जानना अनिवार्य है। इन मूल्यों के पूर्व-साक्षात्कार से ही ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है, इसी तथ्य

को ध्यान में रखकर आध्यात्मिक मूल्यों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। आदर्शवादियों के अनुसार ये मूल्य शाश्वत, दैवीय, स्थायी, अपरिवर्तनीय, निरन्तर और सर्वव्यापी हैं, जो मनुष्य इन आध्यात्मिक मूल्यों को जानता है वह ईश्वर को जान जाता है।

जे एस रॉस के अनुसार, "आदर्शवादियों के अनुसार, सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् निरपेक्ष गुण है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार उपस्थित है तथा वह अपने आप में पूर्णतया वांछनीय है।" "

मन के महत्त्व का सिद्धान्त

आदर्शवादियों ने बाह्य संसार की अपेक्षा आत्मा या मन को विशेष महत्त्व दिया है। सत्य की प्राप्ति भौतिक जगत में सम्भव नहीं है। आत्मा या मन आदर्शवाद का महत्त्वपूर्ण आधार है। यह काल्पनिक नहीं है वास्तविक है।

डॉ. सिन्हा के अनुसार, "जगत का आधार मन है जो यान्त्रिक नहीं है। जीवन को हम जटिल भौतिक-रासायनिक शक्तियों में ही नहीं घटा सकते। यह मन पर आधारित होता है। अतः किसी वस्तु को मन प्रकटीकृत बाह्य रुप ही माना जाता है।"

www.studyineducation.com

व्यक्तित्व के विकास का सिद्धान्त

आदर्शवादी व्यक्तित्व के विकास को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार व्यक्तित्व के विकास का अर्थ है-आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति। आदर्शवादी मनुष्य के वैयक्तिक विकास के साथ-साथ उसके सामाजिक विकास पर भी विशेष बल देते हैं।

जे एस रॉस के अनुसार, "आदर्शवाद मानव जीवन के सर्वोत्तम रुप की भव्यता एवं बहुमूल्यता पर विशेष बल देता है। मानव सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु है तथा वे ईश्वर की श्रेष्ठतम कृतियाँ हैं।"

भिन्नता में एकता के सिद्धान्त का पूर्ण समर्थन

आदर्शवादियों के अनुसार, इस संसार में समस्त वस्तुओं की 'भिन्नता' में 'एकता' निहित होती है, इसी एकता को ईश्वर के नाम से जाना जाता है। इसी एकता के द्वारा विश्व की समस्त वस्तुएँ संचालित होती हैं। शिक्षा का भी यह दायित्व होना चाहिए कि वह बालक को इसी एकता का दर्शन कराए अर्थात् उसे ईश्वर के होने का आभास कराए, क्योंकि इस एकता का आभास होने पर ही मानव पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

प्रोफेसर एच एच हॉर्न के अनुसार, "आदर्शवादी शिक्षादर्शन वह स्वरुप प्रदान समझने लगता है।"

आदर्शवाद और शिक्षा के उद्देश्य

आदर्शवाद के अनुसार, शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास करना, आत्मानुभूति, आध्यात्मिक उन्नति, सांस्कृतिक विरासत की रक्षा एवं विकास, आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति आदि हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है

आत्मानुभूति

आदर्शवाद नही किया जाएगा, तब पूर्णता कोगई संस्कृति को जाति के

आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य आत्मानुभूति है। आत्मानुभूति का अर्थ आत्मा का ज्ञान है अथवा स्वयं को समझने से है। सुकरात ने कहा था 'स्वयं को जानो'। अत: बालक को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वह आत्मानुभूति कर सके। आत्मानुभूति में बालक अपने को समझने लगता है। आत्मानुभूति हो जाने पर वह पूर्णता की प्राप्ति कर लेता है। प्लेटो और अन्य दार्शनिकों ने जीवन तथा शिक्षण का उद्देश्य आत्मज्ञान की प्राप्ति को ही माना है।

www.studyofeducation.com

जेण्टाइल के अनुसार, "आत्मानुभूति ही शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य है।'
रॉस के अनुसार, "आत्मानुभूति जीवन का लक्ष्य है और शिक्षा का उद्देश्य है।"

व्यक्तित्व का विकास

आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करना है। शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के साथ-ही-साथ आध्यात्मिक विकास भी करती है।

प्लेटो के अनुसार, "शिक्षा का उद्देश्य आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण तथा विकास करना है।"

आध्यात्मिक उन्नति करना

आदर्शवादियों के मतानुसार शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति में उचित शिक्षा के माध्यम से सामाजिक गुणों का विकास करना है। अतः शिक्षा इस प्रकार से प्रदान की जाए कि प्रत्येक बालक इन मूल्यों (सत्यम् शिवम् सुन्दरम) की अनुभूति कर सके।

रस्क के अनुसार, "शिक्षा मनुष्यों को उसकी संस्कृति के द्वारा अधिकाधिक पूर्णरूप से आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रविष्ट होने योग्य बनाना चाहिए।"

सांस्कृतिक विरासत की रक्षा, विकास एवं हस्तान्तरण

आदर्शवादियों के लिए व्यक्ति तथा जाति की सांस्कृतिक विरासत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके अनुसार धर्म, नैतिकता, कला, साहित्य, गणित, विज्ञान आदि ने मनुष्य के नैतिक, मानसिक तथा कलात्मक कार्यों को विकसित किया है। इस सांस्कृतिक सम्पत्ति पर प्रत्येक व्यक्ति का समान अधिकार है। अत: संसार के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह संस्कृति के ज्ञान, संरक्षण और विकास पर बल दे और इसकी रक्षा करे।

रॉस के अनुसार, "धर्म, नैतिकता, कला, साहित्य, गणित तथा विज्ञान विभिन्न युगों में किए जाने वाले मनुष्य के नैतिक, मानसिक तथा सौन्दर्यात्मक कार्यों का परिणाम है।" इसलिए आदर्शवादियों के अनुसार इस विरासत की रक्षा करना और वृद्धि करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

विलियम हॉकिंग के अनुसार, "जाति द्वारा संचित की युवा लोगों तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व शिक्षा का है। इस प्रकार युवा पढ़ी को उन अनुभवों से लाभ मिल जाता है, जो जाति द्वारा संस्कृति के रुप में संचित किए जाते हैं।"

www.studyofeducation.com

आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति

मूल्य आदर्शवादियों के अनुसार सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् आध्यात्मिक मूल्य चिरन्तन हैं, शाश्वत हैं, स्थायी हैं, अपरिवर्तनशील हैं और सत्य है। इनका निर्माण मनुष्य ने नहीं किया है वरन् ये पूर्व निर्धारित हैं। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह इन मूल्यों को विकसित करे। जब तक इन मूल्यों को विकसित तक आध्यात्मिक ज्ञान का पूर्णता प्राप्त नहीं होगा।

होर्नी के अनुसार, "आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति होने पर मनुष्य प्राप्त करता है। अत: बालक की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो इन आध्यात्मिक मूल्यो की प्राप्ति में सहायक हो।"

पवित्र जीवन के लिए तैयारी करना

पवित्र जीवन की प्राप्ति करना आदर्शवादी शिक्षा का एक उद्देश्य है। शिक्षा मनुष्य को इस योग्य बनाती है कि वह अच्छाइयों को ग्रहण कर सके और बुराइयों से दूर रहे। यदि वह बुराइयों से दूर रहेगा, तो उसका जीवन पवित्र हो जाएगा। पवित्र जीवन की प्राप्ति से ही मनुष्य जीवन में सफलता प्राप्त करता है।

फ्रॉबेल के अनुसार, "शिक्षा का उददेश्य है भक्तिपूर्ण, पवित्र तथा कलंक रहित जीवन की प्राप्ति। शिक्षा को मनुष्य का पथ-प्रदर्शन इस प्रकार करना चाहिए कि उसे अपने आप ही प्रकृति का सामना करने का और ईश्वर से एकता स्थापित करने का स्पष्ट ज्ञान हो जाए।"

आदर्शवाद और पाठ्यक्रम

आदर्शवाद ने पाठ्यक्रम पर अत्यधिक प्रभाव छोड़ा है। आदर्शवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम में मानव जाति के सम्पूर्ण अनुभवों तथा समाज की सभ्यता एवं संस्कृति के उत्कर्ष को स्थान मिलना चाहिए। अतः आदर्शवादी पाठ्यक्रम मानवीय तथा वैज्ञानिक दोनों प्रकार के विषयों को स्थान देना चाहते हैं। कुछ प्रसिद्ध आदर्शवादियों के पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार निम्न प्रकार है

प्लेटो के अनुसार पाठ्यक्रम

प्रसिद्ध आदर्शवादी प्लेटो के अनुसार ईश्वर की प्राप्ति जीवन का प्रमुख उद्देश्य है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम की रचना भी उसी प्रकार करने को कहा है। पाठ्यक्रम की रचना इस प्रकार होनी चाहिए कि सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् तीनो मूल्यों को प्राप्त किया जा सके।

www.studyofeducation.com

प्लेटो के अनुसार ये तीनों आदर्श बौद्धिक, नैतिक तथा कलात्मक क्रियाओं से सम्बन्ध रखते हैं। अतः पाठ्यक्रम मे इन सभी विषयों का समावेश किया जाना चाहिए जो बालक के बौद्धिक, नैतिक और कलात्मक विकास के लिए आवश्यक है।

पाठ्यक्रम का स्वरुप निम्न प्रकार होना चाहिए

मानव क्रियाएँ एवं तत्सम्बन्धी विषय -

बौद्धिक - भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, विज्ञान
कलात्मक - कला काव्य
नैतिक - धर्म, आचारशास्त्र

2. मानव क्रियाएँ एवं तत्सम्बन्धी विषय
शारीरिक, सामाजिक नैतिक, धार्मिक - शारीरिक, व्यवसाय, सामाजिक शिक्षा,नीतिशास्त्र, धर्म
साहित्यिक सौन्दर्यात्मक व सामान्य - साहित्यिक, कला, संगीत, हस्त-उद्योग, विज्ञान, गणित, इतिहास, भूगोल

जे एस रॉस के अनुसार पाठ्यक्रम

रॉस ने आदर्शवादी पाठ्यक्रम के आयोजन में दो प्रकार की क्रियाओं पर बल दिया है-स्वास्थ्य सम्बन्धी क्रियाएँ एवं आध्यात्मिक क्रियाएँ।

रॉस के अनुसार, "स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा आध्यात्मिक क्रियाओं को पूर्णत: अलग नहीं किया जा सकता। उनका कुछ सामान्य आधार है। नैतिक मूल्य जो आध्यात्मिक हैं, स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों में देखे जा सकते हैं।"

टी पी नन के अनुसार पाठ्यक्रम

इंग्लैण्ड के शिक्षाशास्त्री नन ने भी आदर्शवादी ढंग से पाठ्यक्रम की रुपरेखा प्रस्तुत की है। नन के अनुसार पाठ्यक्रम में उन्ही विषयों को स्थान मिलना चाहिए, जिनसे व्यक्ति तथा समाज के अस्तित्व की रक्षा के लिए नीतिशास्त्र, धर्म तथा सभ्यता व संस्कृति का निर्माण होता है। इन्होंने पाठ्यक्रम के स्वरुप को निम्न प्रकार बताया है

हर्बर्ट के अनुसार पाठ्यक्रम

हर्बर्ट ने पाठ्यक्रम में उन विषयों को प्रमुख स्थान दिया है, जो नैतिकता के विकास में सहायक हैं, क्योंकि उनके अनुसार शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य नैतिकता का विकास करना है। हर्बर्ट ने पाठ्यक्रम में साहित्य को प्रमुख तथा विज्ञान को गौण स्थान दिया है।

आदर्शवाद और शिक्षण विधियाँ

आदर्शवाद ने शिक्षण विधियों पर अधिक बल नहीं दिया है। आदर्शवादियों के अनुसार यदि शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट हैं, तो शिक्षक बालकों की रुचि और योग्यता के अनुसार शिक्षण विधियों का चयन कर सकता है। आदर्शवादी स्वयं को शिक्षण विधियों का निर्धारक मानते हैं।

बटलर के अनुसार, "आदर्शवादी स्वयं को किसी एक विधि का न मानकर, विधियों का निर्माता और निर्धारक समझते हैं।' दूसरे शब्दों में आदर्शवादियों ने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक शिक्षण विधियों का विकास किया, जो निम्नलिखित हैं

अरस्तू को आगमन और निगमन विधि
फ्रॉबेल की खेल द्वारा शिक्षा विधि
पेस्टोलॉजी की अभ्यास व आवृत्ति विधि

www.studyofeducation.com

आदर्शवादियों के अनुसार बालकों को शिक्षा देने की सबसे उत्तम विधि **प्रश्नोत्तर** तथा **वाद-विवाद विधि** है। आदर्शवादी **व्याख्यान विधि** को भी महत्त्व देते हैं।

आदर्शवाद और शिक्षक

आदर्शवादियों ने अपनी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। शिक्षक की छत्र-छाया में ही बालक का आध्यात्मिक विकास सम्भव है। शिक्षक अपने आदर्श व्यक्तित्व से बालक को प्रभावित करता है और उसका पथ-प्रदर्शन करता है। वह बालक को जीवन का लक्ष्य बताता है और उसे वहाँ तक पहुँचने में सहायता करता में है। वह बालक के लिए ऐसे आध्यात्मिक वातावरण की रचना करता है, जिससे बालक का आध्यात्मिक विकास सम्भव हो सके। आध्यात्मिक विकास करके ही बालक अपनी आदर्श अवस्था को प्रस्तुत करता है।

प्रसिद्ध आदर्शवादी **फ्रॉबेल** ने शिक्षक के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि विद्यालय एक उद्यान है, बालक कोमल पौधा है तथा शिक्षक कुशल माली है। माली जिस प्रकार अपने 'उद्यान' और पौधों को खाद और पानी देकर विकसित करता है उसी प्रकार एक शिक्षक अपने विद्यालय के बालकों को उनकी क्षमता के अनुसार विकसित करता है। वह बालकों को समुचित वातावरण देता है, जिससे वे अपनी निहित शक्तियों का पूर्ण विकास कर सकें।

एडम्स ने शिक्षक तथा छात्र, दोनों को ब्रह्माण्ड का अंग माना है। बालक में निहित शक्तियों को व्यवस्थित तथा आदर्श मार्ग-दर्शन देना उसका कार्य है। अध्यापक का कार्य है बालक को उच्चता के शिखर पर पहुँचाना तथा मन, वचन और कार्य में समन्वय स्थापित करना। शिक्षक का स्थान आदर्शवाद में महत्त्वपूर्ण है।

गोटे ने एक बार अपने अध्यापक के विषय में कहा था, "उसके अन्तर्गत हमने कुछ सीखा नहीं है, अपितु अपने को बनाया है।"

आदर्शवादी शिक्षक को उद्यान के माली के रूप में मानते हैं। माली जिस प्रकार बाग की शोभा को अनावश्यक झाड़-झंखाड़ दूर कर उसे सुन्दर बनाता है, उसी प्रकार शिक्षक भी बालकों के दुर्गुणों को दूर कर उन्हें सभ्य व सुसंस्कृत बनाता है।

हॉर्न के अनुसार, "विद्यार्थी एक परिमित व्यक्ति है, किन्तु उचित शिक्षा मिलने पर वह परम पुरुष के रूप में विकसित होता है। उसकी मूल उत्पत्ति दैविक है, स्वतन्त्रता उसका स्वभाव है और अमरत्व की प्राप्ति उसका लक्ष्य है।"

आदर्शवादियों के अनुसार, शिक्षक बालक की शिक्षा में मानसिक पूर्णता के लिए विशेष पर्यावरण प्रस्तुत करता है, अपने आदर्शों से बालक को प्रभावित करता है, उसका पथ-प्रदर्शन करता है, सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् के मूल्यों को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है और वातावरण पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने में बालक की सहायता करता है।

आदर्शवाद और बालक

आदर्शवादियों ने शिक्षा में आदर्शों या विचारों को प्रमुख स्थान दिया है। आदर्शवादियों के अनुसार बालकों में इन आदर्शों और विचारों को प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देना और उनमें सूझ-बूझ का विकास करना शिक्षक का परम कर्तव्य है। आदर्शवादी शिक्षा में आदर्श या विचारों को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं, वे शिक्षा को बाल-केन्द्रित नहीं मानते। आदर्शों, विचारों और शिक्षक की तुलना में बालक का स्थान गौण है।

एमरसन के अनुसार, "एक सन्तुलित, सम्बद्ध, समन्वित व्यक्तित्व वही है, जिसे व्यक्ति ने अपने मन, वचन और कर्म में समन्वय कर लिया है और वह जो सोचता है, वही अनुभव करता है और वही कार्य करता है।"

www.studyofeducation.com

आदर्शवाद और विद्यालय

आदर्शवादियों ने शिक्षा के लिए विद्यालय को अत्यन्त आवश्यक माना है। आदर्शवाद के अनुसार विद्यालय को भी आदर्श होना चाहिए। विद्यालय का वातावरण ऐसा होना चाहिए, जो छात्रों के विकास में सहायक हो। विद्यालय ही वह स्थान है जहाँ पर बालकों को विचार और तर्क करने के लिए उचित पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता है, जहाँ सामाजिक गुणों का विकास होता है, जहाँ सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गुणों को ग्रहण करने का अवसर मिलता है। अत: स्पष्ट है कि आदर्शवाद विश्व में मानव जाति के कल्याण एवं अच्छाई में विश्वास रखता है। वह ज्ञान, क्रिया और संकल्प में सन्तुलन बनाए रखता है और मानव की सामाजिक तथा सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करता है।

आदर्शवाद और अनुशासन

आदर्शवादी शिक्षा में अनुशासन को अधिक महत्त्व देते हैं। आदर्शवादी प्रभावात्मक अनुशासन के पक्षधर हैं। वे न तो दमनकारी कठोर अनुशासन के पक्ष में हैं, क्योंकि दण्ड और भय से स्थापित किया गया अनुशासन अस्थायी होता है और न ही वे स्वतन्त्र अनुशासन में विश्वास करते हैं, क्योंकि स्वतन्त्र अनुशासन से बालक के व्यक्तित्व विकास में बाधा उत्पन्न होती है। अत: शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह अपने उच्च आदर्शों से प्रभावित करके उसमें अनुशासन की भावना जागृत करें, जिससे वह अपना आध्यात्मिक विकास कर सके।

थॉमस और लैंग के अनुसार, "प्रकृतिवादियों का नारा 'स्वतन्त्रता' है, जबकि आदर्शवादियों का नारा 'अनुशासन' है।"

प्रो. होर्नी के अनुसार, "शक्ति का प्रारम्भ बाह्य रुप से होता है, परन्तु यह उचित होगा कि यदि उसका अन्त आदत व निर्माण द्वारा आन्तरिक रुप में हो।"

अतः शिक्षार्थियों में अनुशासन तभी स्थापित हो सकता है जब शिक्षक स्वयं इस दिशा में ऊँचे आदर्श उपस्थित करें। उनका व्यवहार बालक की रुचियों और प्रवृत्तियों के ज्ञान पर आधारित होना चाहिए। उन्हें अपने कार्यों में आत्मानुशासन और आत्म-नियन्त्रण के ऊँचे आदर्श उपस्थित करने चाहिए, जिससे उनके उदाहरण से शिक्षार्थियों में अनुशासन उत्पन्न हो। आदर्शवादियों ने दमनवादी नीति के द्वारा स्थापित अनुशासन की आलोचना की है और उसे अनुचित बताया है। बालक के चारों ओर प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक परिवेश ऐसा होना चाहिए कि उसमें स्वयं ही अनुशासन की भावना उत्पन्न हो, तभी सच्चा अनुशासन स्थापित किया जा सकता है। प्लेटो के अनुसार, विद्यालय में बालकों पर नियन्त्रण इसलिए किया जाता है, ताकि उनके विकास के साथ-साथ उन्हें क्रमशः स्वतन्त्रता भी दी जाए। स्वतन्त्रता विकास के अनुरुप होनी चाहिए, जैसे-जैसे बालक उसके योग्य बनता जाए वैसे-वैसे अधिकाधिक स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए।

आदर्शवादी शिक्षा की विशेषता -

आदर्शवाद ने शिक्षा को विशेष रुप से प्रभावित किया है, जिसका निम्नलिखित है

- आदर्शवाद ही दर्शन की एकमात्र ऐसी विचारधारा है, जो शिक्षा की विस्तृत विवेचना करता है। अन्य दार्शनिक विचारधाराओं द्वारा प्रतिपादित उद्देश्य संकीर्ण एवं अपूर्ण हैं, लेकिन यह विचारधारा व्यक्ति को उसके जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समुचित निर्देशन देती है।
- आदर्शवाद बालक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास पर बल देता है। वह बालकों में आध्यात्मिक विकास करके उसे आत्मानुभूति एवं सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् के दर्शन करने योग्य बनाना चाहता है।
- आदर्शवादी पाठ्यक्रम सर्वाधिक उदार, सर्वाधिक प्रयत्नशील, सर्वाधिक बहुमुखी है और इसलिए मानव और समाज के सांस्कृतिक विकास के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है।
- आदर्शवाद बालक के लिए ऐसी शिक्षा देने पर जोर देता है, जो उनमें श्रेष्ठ चरित्र का निर्माण करे और उन्हें आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करे।
- आदर्शवादियों के अनुसार सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् आध्यात्मिक मूल्य हैं तथा ये मूल्य चिरन्तन, शाश्वत एवं स्थायी होते हैं।

www.studyofeducation.com

- आदर्शवाद ने व्याख्यान, वाद-विवाद, प्रश्न, आगमन-निगमन, अभ्यास और आवृत्ति नाटक की अनेक विधियों का निर्माण करके आवश्यकतानुसार शिक्षण को स्वतन्त्रता प्रदान की है।
- आदर्शवाद की शिक्षा प्रक्रिया में अध्यापक को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उसने शिक्षक को छात्र का सबसे अच्छा मित्र तथा पथ-प्रदर्शक माना है।
- ज्यों-ज्यों शिक्षा का मानववादी आदर्श राष्ट्रीय आदर्शों का स्थान लेता जा रहा है, त्यों-त्यों आदर्शवाद आधुनिक शिक्षाशास्त्री के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। आदर्शवादी दार्शनिक शिक्षा के क्षेत्र में, सर्वोच्च और सबसे अधिक व्यापक लक्ष्य और आदर्श उपस्थित करते हैं।

विवरण के उद्देश्यों

आदर्शवाद की आलोचना

- आदर्शवाद की सर्वप्रथम आलोचना उसके उद्देश्यों को लेकर की गई है। आदर्शवाद द्वारा शिक्षा के उद्देश्य अमूर्त हैं, चूँकि आदर्शवादी शिक्षा के उद्देश्य भविष्य से सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन वे बालकों की बौद्धिक क्षमता से परे हैं।
- आज के युग में आत्मानुभूति की बात करना कल्पना-लोक में विचरण करने के समान है।
- आदर्शवादी विचारकों ने शिक्षा में संस्कृति पर जोर दिया है और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की अवहेलना की है।
- शिक्षण विधियों के क्षेत्र में आदर्शवाद का कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं है, स्योंकि आदर्शवाद ने आदर्शों पर विस्तृत प्रकाश डाला है, किन्तु उन आदर्शों को प्राप्त करने की विधियों का वर्णन नहीं किया।
- आदर्शवाद ने शिक्षक पर बहुत अधिक बल दिया है और बालक पर बहुत कमा उनके मत में शिक्षक को मुख्य तथा बालक को गौण स्थान प्राप्त है, परन्तु अब शिक्षा को बाल-केन्द्रित बना दिया गया है। उसी को ध्यान में रखकर ही शिक्षा दी जाती है। शिक्षक का कार्य तो केवल बालकों का पथ-प्रदर्शन करना है, इसलिए ये दर्शन वर्तमान युग के लिए उपयोगी नहीं हैं।
- आदर्शवाद पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक विषयों को महत्त्वपूर्ण स्थान देता है और आज के वैज्ञानिक एवं औद्योगिक युग में उपयोगी गौण स्थान देता है।
- आदर्शवाद समाज को व्यक्ति से ऊपर स्थान न देकर उनको एक-दूसरे का पूरक मानता है।
- आदर्शवाद सदैव निरपेक्ष एवं अन्तिम सत्ता की बात करता है, इसका ज्ञान करना कठिन है।

दार्शनिक चिन्तन

सुकरात ऐसे दार्शनिक थे, जो लोगों के मन में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा पैदा करना चाहते थे। वे लोगों को विचारक बनाना चाहते थे। उनका कहना था कि "ज्ञान ही सदगुण है।" उनके अनुसार, 'आनन्द शुभ कार्यों से प्राप्त होता है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर बुद्धि, विवेक, सदाचार, सच्चाई, मैत्री, बन्धुत्व आदि गुण विद्यमान हैं, परन्तु उनको प्रस्फुटित और विकसित करने की क्षमता ज्ञान में दी है। ज्ञान

की उपलब्धि आत्मानुशीलन और आत्मनिरीक्षण के द्वारा दी जा सकती है। सुकरात ने सार्वभौम ज्ञान को प्राप्त करने के लिए द्वन्द्वात्मक विधि का प्रवर्तन किया है। प्रश्नोत्तर विधि का प्रतिपादन सुकरात ने किया है, इसलिए प्रश्नोत्तर विधि को सुकरात विधि भी कहा जाता है।

शिक्षा में आदर्शवाद का एक उदाहरण प्लेटो का शिक्षा दर्शन है। प्राचीन यूनानी दार्शनिकों में प्लेटो ने शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रभाव डाला है। प्लेटो के शिक्षा दर्शन सम्बन्धी विचार मुख्यतः दो प्रमुख पुस्तको द रिपब्लिक और द लॉज में मिलते है।

'रिपब्लिक' ग्रन्थ साहित्य का एक उत्कृष्ट नमूना है, जिसमें शिक्षा व राजनीति से सम्बन्धित विचार संग्रहीत है। यह पुस्तक दार्शनिक दृष्टिकोण से लिखी गई एक महान् पुस्तक है।

'द लॉज' पुस्तक प्लेटो के सम्पूर्ण जीवन का दार्शनिक निष्कर्ष कहा जा सकता है। इस पुस्तक में हमें व्यावहारिक ज्ञान एवं दार्शनिक दृढ़ता प्राप्त होती है। इस पुस्तक में उसके नीति सम्बन्धी विचारों की विवेचना भी पाई जाती है।

www.studyofeducation.com

यथार्थवाद (Realism)

'यथार्थवाद' का अंग्रेजी रुपान्तर 'Realism' है। Real' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'reals' से हुई है। इस प्रकार 'Realism' का शाब्दिक अर्थ हुआ-वस्तुवाद या वस्तु सम्बन्धी विचारधारा। वस्तुतः यथार्थवादी वस्तु सम्बन्धी विचारों के प्रति एक दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार संसार की वस्तुएँ यथार्थ हैं। इस वाद के अनुसार केवल इन्द्रिय जन्य ज्ञान ही सत्य है।

दूसरे शब्दों में, जो कुछ हमारे सामने है तथा जो कुछ भी हमें दिखाई देता है, वही सत्य है। आदर्शवादी इस सृष्टि का अस्तित्व विचारों के आधार पर मानता है, किन्तु यथार्थवाद के अनुसार जगत विचारों पर आश्रित नहीं है। 'स्वतन्त्रता का सिद्धान्त' आदर्शवाद का एक मूल अवयव है।

यथार्थवाद के अनुसार हमारा अस्तित्व स्वतन्त्र न होकर बाह्य पदार्थों के प्रति प्रतिक्रिया का निर्धारण करता है, अनुभव बाह्य जगत से प्रभावित है और बाह्य जगत की वास्तविक सत्ता है।

इस यथार्थवाद के अनुसार मनुष्य को वातावरण का ज्ञान होना चाहिए। उसे यह पता होना चाहिए कि वह वातावरण को परिवर्तित कर सकता है या नहीं और इसी ज्ञान के अनुसार उसे कार्य करना चाहिए। यथार्थवाद के लिए अन्तिम सत्ता अनुभूति है।

शिक्षा में यथार्थवाद का व्यक्तिवादी रुप नहीं है। मानवतावादी यथार्थवाद के समर्थक रेवले, इरेसमस, मिल्टन हैं। वैज्ञानिक यथार्थवादी विचारधारा को विकसित और उन्नत बनाने का श्रेय हरबर्ट स्पेन्सर को है।

यथार्थवादी विचारधाराएँ

प्रमुख विद्वानों द्वारा किए गए यथार्थवादी विचारधारा का उल्लेख इस प्रकार है

- **सी वी गुड** के अनुसार, "यथार्थवाद वह सिद्धान्त है, जिसके अनुसार वस्तुगत यथार्थवाद या भौतिक जगत चेतन मन से स्वतन्त्र रुप में अस्तित्व रखता है। उसकी प्रकृति, उसके गुण-दोष एवं ज्ञान से मालूम होती हैं।"

- **जे एस रॉस** के अनुसार, "यथार्थवाद यह मानता है कि जो कुछ हम प्रत्यक्ष में अनुभव करते हैं, उसके पीछे तथा उससे मिलता-जुलता वस्तुओं का एक यथार्थ जगत है।"

- **ब्राउन** के अनुसार, "यथार्थवाद का मुख्य विचार यह है कि सब भौतिक वस्तुएँ या बाह्य जगत के पदार्थ वास्तविक हैं और उनका अस्तित्व देखने वाले व्यक्ति न हो तो भी उनका अस्तित्व होगा तथा वह वास्तविक होंगे।"

- **कार्टर वी गुड** के अनुसार, "यथार्थवाद वह सिद्धान्त है, जिसके अनुसार वस्तुगत यथार्थता भौतिक जगत का चेतन मन से स्वतन्त्र अस्तित्व है। उसकी प्रकृति और उसके गुण उसके ज्ञान से मालूम होते हैं।"

कुछ विद्वानों का मत है कि यथार्थवादी विचारधारा अरस्तू के समय से ही चली आ रही है। भारतीय दर्शन में भी यथार्थवादी विचारधारा स्पष्ट रुप से दिखाई देती है। वेदो में प्रकृति के तत्त्वों का वर्णन मिलता है। चार्वाक दर्शन भी पूर्णरुप से भौतिकवादी था। इसमें आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व सम्बन्धी दर्शन का खण्डन करते हुए इस बात पर बल दिया गया कि संसार वास्तविक है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष है।

सांख्य दर्शन से भी यथार्थवादी विचार स्पष्ट होता है। वैशेषिक दर्शन ने भी यथार्थवाद का समर्थन किया है। ध्यान देने की बात यह है कि यथार्थवादी विचारधारा का वास्तविक विकास सत्रहवीं शताब्दी में हुआ। इसके दो मुख्य कारण थे-आदर्शवादी दर्शन का विरोध एवं विज्ञान का विकास।

यथार्थवादियों के अनुसार बालक की शिक्षा उसकी व्यक्तिगत और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरुप होनी चाहिए, जिससे वह बड़ा होकर सुखी जीवन व्यतीत कर सके। शिक्षा के आदर्श चाहे कितने भी ऊँचे क्यों न हों, उसका एकमात्र लक्ष्य बालक को वास्तविक जीवन के लिए तैयार करना है। वास्तविक जीवन की तैयारी ही शिक्षा की सफलता की कसौटी है।

www.studyofeducation.com

वास्तविक जीवन में व्यक्ति के सामने सबसे बड़ी समस्या जीविकोपार्जन की होती है, इसलिए शिक्षा द्वारा व्यक्ति को जीविकोपार्जक बनाने का आयोजन करना चाहिए। इससे यथार्थवाद शिक्षा-व्यवस्था में साहित्यिक और कलात्मक शिक्षा की तुलना में वैज्ञानिक शिक्षा को अधिक महत्त्व दिया गया है। यथार्थवादियों के अनुसार शिक्षा का सबसे पहला कार्य मनुष्यों में विवेक, बुद्धि और निर्णय करने की शक्ति उत्पन्न करना है, जिससे वे जीवन की विभिन्न समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझा सकें।

यथार्थवादी शिक्षा की विशेषताएँ

यथार्थवादी शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

- विज्ञान पर आधारित होती हैं।
- बालक को नियन्त्रित वैज्ञानिक प्रणाली को समर्थन दिया गया है।
- स्वतन्त्रता मिलती है।
- ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण पर बल दिया जाता है।
- पुस्तकीय ज्ञान का विरोध किया जाता है।
- बालक के वर्तमान जीवन पर बल दिया जाता है।
- वैयक्तिकता तथा सामाजिकता दोनों को समान महत्त्व मिलता है।
- प्रयोग तथा व्यावहारिक जीवन पर बल दिया जाता है।

www.studyfeducation.com

यथार्थवाद के प्रमुख सिद्धान्त

- **मानव के वर्तमान व्यावहारिक जीवन का महत्त्व** यथार्थवाद के अनुसार मानवीय जीवन का लक्ष्य सुखी जीवन व्यतीत करना है, जो केवल उस समय ही सम्भव हो सकता है जब भौतिक जगत की अधिकतम वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करके उनका पूरा प्रयोग किया जाए।

- **ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान के द्वार हैं** यथार्थवाद के अनुसार ज्ञानेन्द्रियों तथा वस्तुओं के सम्पर्क द्वारा हमें जो भी संवेदन प्राप्त होता है, वही वास्तविक सत्य है। .

- **प्रत्यक्ष जगत सत्य है** यथार्थवादी पदार्थ को सत्य एवं वास्तविक मानते हैं। यथार्थवादियों के अनुसार केवल प्रत्यक्ष जगत ही सत्य अथवा यथार्थ है। अत: आदर्शवादियों की भाँति वे अप्रत्यक्ष जगत में बिल्कुल विश्वास नहीं करते।

- **प्रयोग पर बल** इस विचारधारा के अनुसार किसी अनुभव को उस समय तक स्वीकार नहीं किया जा सकता, जब तक उसका पूर्णरुपेण विश्लेषण न हो . गया हो।

- **मनुष्य भौतिक जगत का एक अंग मात्र** यथार्थवाद के अनुसार मानव भौतिक जगत का एक अंग है। उसके पास मन तथा ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जिनके द्वारा वह भौतिक जगत की वस्तुओं को ज्ञान की दृष्टि से देखता है।

प्रमुख पुस्तकें एवं उनके लेखक

- 'सम थॉट कन्सर्निंग एजुकेशन' **जॉन लॉक**
- 'सिस्टम ऑफ स्टडीज 'तथा' सिसेरो नियनिज्म' **इरेसमस**
- 'ट्रेक्ट्स ऑफ एजुकेशन' **मिल्टन**
- 'ऑफ पेण्डेण्ट्री ऑफ द एजुकेशन ऑफ द चिल्ड्रेन' तथा 'ऑफ द एफेक्सन ऑफ फादर टु देयर चिल्ड्रेन' **लॉर्ड माण्टेन**
- 'एलीमेण्टरी' तथा 'पोजीशंस' **मूलकास्टर**
- 'द न्यू एटलाण्टिस' तथा 'एडवांसमेट ऑफ लर्निंग' **फ्रांसिस बेकन**
- 'लाइफ ऑफ गैरगेण्टुआ' और 'द हिरोइन नीड ऑफ पेंटेग्रुएल' **रेवले**

www.studyofeducation.com

यथार्थवाद एवं शिक्षा का उद्देश्य

यथार्थवाद एवं शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं

- **व्यावसायिक क्षमता का विकास करना** यथार्थवादियों का कहना है कि बालक को किसी-न-किसी प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए, जो आगे चलकर उसकी जीविका का आधार बन सके।

- **जीवन को सुखी बनाना** यथार्थवादी शिक्षा के द्वारा बालक में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना चाहते हैं, जिससे वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। समाज में अपना समायोजन कर सके और सुखी जीवन व्यतीत कर सके।

- **ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण** यथार्थवादी वस्तु-जगत को ही वास्तविक मानते हैं और यह मानते हैं कि जब तक बालक की ज्ञानेन्द्रियों का विकास पूर्णरूप से नहीं होगा, तब तक उनको वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकेगा।

- **पूर्ण और वास्तविक जीवन के लिए तैयार करना** यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा वर्तमान पर केन्द्रित होती है। शिक्षा के द्वारा एक पूर्ण व्यक्ति का निर्माण होना चाहिए, जो कला और उद्योग में दक्ष हो, शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक रूप से विकसित हो और जीवन के सभी उत्तरदायित्वों का निर्वहन की सामर्थ्य रखता हो।

- **वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास** प्राकृतिक और सामाजिक का स्पष्ट ज्ञान वैज्ञानिक विधियों से ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य बालक के दृष्टिकोण को व्यापक बनाना होना चाहिए।

- **बालक को प्रकृति तथा सामाजिक पर्यावरण का पूर्ण ज्ञान** शिक्षा के द्वारा बालक को प्रकृति तथा मानव समाज का पूर्ण ज्ञान प्रदान करना चाहिए, जिससे वह मानव प्रकृति, प्रेरणाओं, इच्छाओं आवश्यकताओं और संस्थाओं को समझने की क्षमता पैदा कर सके तथा जीवन में सफलता प्राप्त कर सके।

- **सांस्कृतिक और व्यावसायिक शिक्षा के समन्वय** पर बल शिक्षा द्वारा सांस्कृतिक और व्यावसायिक शिक्षा समन्वय पर बल दिया जाना चाहिए। यथार्थवाद के अनुसार हमें यत्न करना चाहिए कि किसी व्यक्ति को बिना व्यवसाय की शिक्षा और बिना शिक्षा के व्यवसाय में कोई एक चीज चुनने के लिए मजबूर न होना पड़े। जो स्कूल विशिष्ट व्यवसायों की शिक्षा देते हैं उन्हें सांस्कृतिक शिक्षा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और जो स्कूल संस्कृति को अपना मुख्य कार्य समझते हैं, उन्हें व्यवसाय सम्बन्धी विचार को नजर-अन्दाज नहीं करना चाहिए।

अतः कहा जा सकता है कि यथार्थवादी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक तथा व्यावसायिक विकास करना है।

www.studyofeducation.com

यथार्थवाद एवं शिक्षा की इकाइयाँ

यथार्थवाद एवं शिक्षा की इकाइयाँ निम्न हैं

यथार्थवाद एवं पाठ्यक्रम

यथार्थवादियों ने इस बात पर बल दिया है कि पाठ्यक्रम में केवल उन्हीं विषयों को स्थान मिलना चाहिए, जो बालक के लिए उपयोगी तथा उसे वास्तविक जीवन के लिए तैयार कर सकें। अत: उन्होंने पाठ्यक्रम में जीवन की यथार्थ परिस्थितियों, आवश्यकताओं तथा समस्याओं को ध्यान में रखते हुए प्रकृति, विज्ञान तथा व्यवसाय सम्बन्धी विषयों को प्रमुख स्थान दिया तथा भाषा, कला एवं साहित्य आदि को गौण स्थान दिया।

ध्यान देने की बात है कि यथार्थवादियों ने पाठ्यक्रम में 25-30 विषयों को स्थान दिया है। उन्होंने बालकों को अपनी रुचि के अनुसार विषय चयन करने की स्वतन्त्रता भी प्रदान की है, साथ ही स्पष्ट कर दिया है कि मातृभाषा मानव विकास की आधारशिला है और जीविकोपार्जन के लिए व्यवसाय अत्यन्त आवश्यक है। अतः पाठ्यक्रम में मातृभाषा तथा उद्योग अनिवार्य विषय होने चाहिए।

यथार्थवाद एवं शिक्षण विधियाँ

यथार्थवादी शाब्दिकता और आत्मनिष्ठता को शिक्षण विधि से दूर रखते हैं और इसके स्थान पर वस्तुनिष्ठता पर बल देते हैं, जिससे शिक्षण विधि व्यावहारिक और उपयोगी हो। यथार्थवाद वैज्ञानिक विधि तथा समस्याओं के समाधान पर

बहुत अधिक जोर देता है। प्रसिद्ध यथार्थवादी बेकन ने 'आगमन विधि' को जन्म दिया। इस पद्धति द्वारा बालक को पहले वस्तु तत्पश्चात् शब्द का ज्ञान कराया जाता था, साथ ही इसमें बालक को स्वयं अपने निरीक्षण-परीक्षण निर्णय द्वारा सीखने का अवसर प्राप्त होता था। इस पद्धति के कारण अरस्तू की निगमन पद्धति का महत्त्व कम हो गया।

यथार्थवादियों ने कई शिक्षण सूत्र भी प्रस्तुत किए। ये शिक्षण सूत्र पुस्तक पाठन प्रणाली तथा रटने (याद या स्मरण करने) के स्थान पर सीखने एवं स्वानुभव द्वारा सीखने पर बल देते हैं। यथार्थवादियों ने ज्ञान को एक इकाई माना तथा सह-सम्बन्ध विधि का समर्थन किया।

www.studyofeducation.com

यथार्थवाद एवं शिक्षक

" यथार्थवादी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक का स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है। शिक्षक का दायित्व बालकों के साथ वस्तु को उसी रूप में प्रस्तुत करना माना गया है जिस रूप में वह वस्तु है। अध्यापक का कार्य बालकों का मार्गदर्शन करना है। वह बालक को वास्तविक स्थिति से परिचित कराएँ और बालक उस परिस्थिति का निरीक्षण कर स्वयं निष्कर्ष निकालें। यथार्थवादी शैक्षिक विचार धारा में अध्यापक को पथ-प्रदर्शक, सहायक तथा निर्माणकर्ता माना गया है। यथार्थवादियों ने शिक्षक प्रशिक्षण पर बहुत बल दिया है, जिससे उन्हें यह ज्ञान हो सके कि "किस समय कितनी मात्रा में ज्ञान दिया जाना चाहिए।

यथार्थवाद एवं बालक

यथार्थवादियों ने बालक के महत्त्व को स्वीकार किया है और उसे शिक्षा का मुख्य पात्र माना है। उनकी मान्यता है कि बालकों में कुछ इच्छाएँ, भावनाएँ, प्रवृत्तियाँ और शक्तियाँ होती हैं, जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। शिक्षा की योजना बनाते समय बालक की इन शक्तियों को ध्यान में रखना हो होगा, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि बालक को बिल्कुल स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए और उसे प्रकृति के सहारे ही रहने दिया जाए।

यथार्थवादी प्रकृतिवादियों की तरह यह नहीं मानते कि बालक स्वयं ही सब कुछ सीखेगा। उनका कहना है कि बालक को इस योग्य बनाना ही होगा कि वह अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़े और यथार्थ का ज्ञान प्राप्त करे। वे बालक को मनुष्य बनाने की ही शिक्षा देना चाहते हैं। वे उसमें संसार की यथार्थ परिस्थितियों से पलायन करने का दृष्टिकोण उत्पन्न करना नहीं चाहते।

यथार्थवाद एवं विद्यालय

कमेनियस के अनुसार, "विद्यालय मनुष्यों के वास्तविक निर्माण के स्थान हैं।" यथार्थवादी विद्यालय की उपयोगिता को समझते हैं। वे इसे एक ऐसी संस्था मानते हैं जहाँ व्यक्ति ज्ञान के अतिरिक्त सामाजिक जीवन व्यतीत करना भी सीखता है। वे विद्यालय को ऐसा स्थान मानते हैं जहाँ बालक की रुचि, आवश्यकता एवं शक्ति के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है। विद्यालय के माध्यम से ही व्यवसाय विशेष की शिक्षा दी जा सकती है। यथार्थवादी यह मानते हैं कि विद्यालय समाज का लघु रुप है और वह समाज का यथार्थ रुप प्रस्तुत करते हैं। विद्यालय में बालक को यथार्थ ज्ञान प्रदान करना चाहिए, जिससे उसका जीवन सफल हो सके। विद्यालय को सभी साधनों एवं सज्जाओं से परिपूर्ण होना चाहिए।

यथार्थवाद एवं अनुशासन

यथार्थवाद दमनात्मक अनुशासन का विरोध करता है। यह स्वानुशासन का समर्थक हैं। उनके अनुसार बालक को अनैतिक और अप्राकृतिक कार्यो के लिए स्वयं दण्ड है, इसलिए कुछ यथार्थवादी प्राकृतिक परिणामों के अनुशासन का भी समर्थन करते न देकर प्रकृति के ऊपर छोड़ देना चाहिए। कुछ यथार्थवादियों ने प्रेम तथा सहानुभूति पर आधारित अनुशासन को मान्यता दी है। उनके अनुसार शिक्षक का व्यवहार इतना आत्मीय तथा स्नेह युक्त होना चाहिए कि बालक अपनेपन का अनुभव कर सके और घर की ही भाँति सुरक्षा की अनुभूति कर सके।

स्पेन्सर ने अपने नैतिक शिक्षा नामक लेख में रूसो (प्रकृतिवादी) के समान ही, अनुशासन सम्बन्धी विचार व्यक्त किए हैं।

यथार्थवादी शिक्षा की देन

हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार, शिक्षा जीवन की तैयारी है। शिक्षा के क्षेत्र में यथार्थवाद का विशेष महत्त्व रहा है। इसका विवरण निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा देखा जा सकता है

- प्रत्येक समाज में विभिन्न प्रकार की प्रविधियों और व्यवसायों में प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अरस्तू के अनुसार, विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा को राष्ट्र की आवश्यकताओं के लिए प्राविधिक और व्यावसायिक विषयों में

www.studyofeducation.com

प्रशिक्षित व्यक्तियों का विकास करने के लिए कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। उन्हें 'एकेडमी का मस्तिष्क' नामक उपाधि प्रदान की गई है।

- यथार्थवाद ने वैयक्तिक शिक्षा पर बल देकर व्यक्ति के महत्त्व स्थापित किया है।
- लक्ष्यों के क्षेत्र में भी यथार्थवादी राष्ट्रीय विकास, जीविकोपार्जन, व्यक्तित्व विकास और आनन्द की प्राप्ति इत्यादि यथार्थवादी सामाजिक आकांक्षाओं पर जोर देते हैं।
- पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों, जीवनोपयोगी कौशलों, अनौपचारिक कार्यक्रमों, बहुधन्धी पाठ्यक्रम आदि यथार्थवादी का परिणाम हैं। .
- यथार्थवाद शिक्षा की व्यावहारिक प्रकृति पर जोर देता है। वर्तमान शिक्षा व्यावहारिक और प्रयोगात्मक है।
- यथार्थवादी दृष्टिकोण से उदार शिक्षा को अधिक व्यापक बनाया गया है। अब इसमें व्यावसायिक और प्राविधिक विषय भी सम्मिलित किए गए हैं। .
- यथार्थवाद का प्रभाव शिक्षण विधि के क्षेत्र में भी पड़ा है। अब वैज्ञानिक विधि को ही सर्वोत्तम विधि माना जाता है। निगमन विधि के स्थान पर आगमन विधि का प्रयोग किया जाता है। आज शिक्षा में प्रयोगात्मक, ह्यूरिस्टिक तथा सह-सम्बन्ध विधि के महत्त्व को स्वीकार किया गया है।
- आज के प्रजातान्त्रिक युग में यह माना गया है कि शिक्षा समाजीकरण की प्रक्रिया है। यह यथार्थवाद का ही प्रभाव है, क्योंकि यथार्थवाद शिक्षा को एक सामाजिक संस्था के रुप में मानता है।
- यथार्थवादियों ने शिक्षा के क्षेत्र का विस्तार करके उसमें वैज्ञानिक और प्राविधिक विषयों तथा प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों को सम्मिलित किया है।
- विद्यालय व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ है।
- आधुनिक शिक्षा वस्तुगत है। इसमें व्यक्तिगत मतों और अनुभूतियों से अधिक वस्तुगत तथ्यों पर बल दिया गया है।
- यथार्थवाद में वस्तुनिष्ठता पर बल दिया गया है।

www.studyofeducation.com

नव-यथार्थवाद

नव-यथार्थवाद ऐसी विचारधारा है, जिसका महत्त्व शिक्षा की अपेक्षा दर्शन तथा विज्ञान के क्षेत्र में अधिक है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक रस्क के अनुसार, नव-यथार्थवाद का महत्त्वपूर्ण योगदान उन पद्धतियों तथा निष्कर्षों को मान लेने में है, जो भौतिक शास्त्र के आधुनिक विकास से प्राप्त हुए हैं। नव-यथार्थवाद का विश्वास है कि विज्ञान के नियम भी अन्य नियमों की भाँति परिवर्तनशील हैं। वे किसी सीमित अथवा विशेष परिस्थितियों में ही प्रामाणिक होते हैं। जब उन परिस्थितियों में परिवर्तन होता है, तो इनमें भी परिवर्तन होता है। इसके बाद के विद्वान् विज्ञान तथा कला दोनों की शिक्षा पर बल देते हैं। इस यथार्थवाद के समर्थकों में निम्नलिखित विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं

ह्वाइट हैड इनका विश्वास था कि चर तथा अचर तथा जड़ और चेतन प्रत्येक एक अवयव है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य इस प्रकार के अवयव का सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त करना है।

बर्ट्रेण्ड रसेल ये भी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने में विश्वास करते हैं, इन्होंने बालक के संवेदनात्मक विकास पर बल दिया है।

रस्क के अनुसार, "नव-यथार्थवाद का उद्देश्य एक ऐसे दर्शन का प्रतिपादन करना है, जोकि सामान्य जीवन के सत्यों तथा भौतिक विज्ञान के निष्कर्ष के अनुकूल हो।"

प्रकृतिवाद (Naturalism)

प्रकृतिवाद प्रकृति को मूल तत्त्व मानता है। यह अलौकिक और पारलौकिक न मानकर प्रकृति की ही पूर्ण वास्तविकता स्वीकार करता है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु प्रकृति से जन्म लेती है और फिर उसी में विलीन हो जाती है। प्रकृतिवादी इन्द्रियानुभूत ज्ञान को ही सच्चा मानते हैं तथा उसके अनुसार सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए मनुष्य को स्वयं निरीक्षण-परीक्षण करना चाहिए।

प्रकृतिवादियों के अनुसार, सृष्टि में प्रकृति या पदार्थ के अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता नहीं है। वे प्रकृति को ही पूर्ण शक्तिमान मानते हैं और उसी के नियमों तथा कार्य-कारण सम्बन्ध में विश्वास रखते हैं। उनका मत है कि प्रत्येक वस्तु प्रकृति से पैदा होती है और उसी में विलीन हो जाती है। प्रकृतिवादी आत्मा-परमात्मा में विश्वास नहीं करते हैं, ये भौतिक संसार को सत्य तथा पारलौकिक जगत को मिथ्या मानते हैं। एक आधुनिक भारतीय शिक्षाशास्त्री रवीन्द्रनाथ टैगोर अत्यन्त प्रकृतिवादी थे। प्रकृतिवादी विचारधारा के समर्थकों में अरस्तू, काम्टे, बेकन, हॉब्स, लैमार्क, रूसो, हक्सले तथा सेमुअल बटलर आदि प्रमुख हैं। दार्शनिक क्षेत्र में यूरोप की सामाजिक क्रान्ति ने प्रकृतिवाद को जन्म दिया। सत्य की कसौटी की सम्बद्धता प्रकृतिवाद से है।

www.studyofeducation.com

प्रकृतिवाद की परिभाषाएँ

प्रमुख विद्वानों के अनुसार प्रकृतिवाद की परिभाषाएँ निम्नलिखित है

- **मोरले** के अनुसार, "प्रकृतिवादी स्वरुप में प्रेम करना, मानव प्रकृति पर विश्वास, न्याय की कामना तथा दूसरों पर उपकार करना निहित है।" जहाँ तक दार्शनिक पृष्ठभूमि का सम्बन्ध है प्रकृतिवाद पदार्थ एवं मन पर आधारित है, पदार्थ को सत्य मानकर प्रकृतिवाद चलता है। पदार्थ मूल रुप में नष्ट नहीं होता है।
- **रॉस** के अनुसार, "प्रकृतिवाद को परिभाषित करना बड़ा कठिन है, क्योंकि यह विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है।"
- **डब्ल्यू एफ हॉकिंग** के अनुसार, "प्रकृतिवाद तत्त्वमीमांसा का वह रूप है, जो प्रकृति को पूर्ण यथार्थ मानता है अर्थात् यह परा प्राकृतिक या दूसरे जगत को अपने क्षेत्र से बाहर रखता है।"

- **थॉमस और लैंग** के अनुसार, "प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विपरीत मस्तिष्क को पदार्थ के अधीन मानता है और यह विश्वास करता है कि अन्तिम यथार्थ भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं।"
- **जेम्सवार्ड** के अनुसार, "प्रकृतिवाद वह सिद्धान्त है, जो प्रकृति को ईश्वर से पृथक् करता है, आत्मा को पदार्थ के अधीन करता है और अपरिवर्तित नियमों को सर्वोच्च मानता है।

शिक्षा में प्रकृतिवाद के रुप

पदार्थवादी प्रकृतिवाद यह सम्प्रदाय पदार्थ को सत्य मानता है तथा बाह्य प्रकृति के नियमों के अध्ययन पर बल देता है। इसके मतानुसार इस जगत में जो कुछ भौतिक रुप में उपस्थित है वही सत्य है। यह मानव का अध्ययन भी पदार्थ जगत के नियमों के अनुसार करता है।

यन्त्रवादी प्रकृतिवाद प्रकृतिवादी विचारधारा का यह रुप मनुष्य को एक यन्त्र मानता है, जिस प्रकार यन्त्र स्वयं कार्य नहीं कर सकता उसको संचालित करना पड़ता है, उसी प्रकार मनुष्य भी पूर्ण रुप से बाह्य प्रभावों द्वारा संचालित होता है। यह मनुष्य के चेतन तत्त्व की सत्ता को स्वीकार नहीं करता, इसके अनुसार सम्पूर्ण संसार भी एक प्राणविहीन यन्त्र है, जिसका निर्माण पदार्थ तथा गति से मिलकर हुआ है, और कोई उद्देश्य, प्रयोजन या आध्यात्मिक शक्ति नहीं है यन्त्रवादियों ने और मनोविज्ञान में व्यवहारवाद को जन्म दिया। व्यवहारवाद पशु मनुष्य क्रियाओं में कोई भेद नहीं मानता।

जैविक प्रकृतिवाद प्रकृतिवादी विचारधारा का यह रुप विकास सिद्धान्त में आस्था रखता है, जैविक प्रकृतिवाद डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त पर आधारित है। डार्विन के विकास के दो सिद्धान्त हैं। जीवन के लिए संघर्ष एवं समर्थ का अस्तित्व।

प्रत्येक प्राणी जीवित रहना चाहता है। जीवित रहने के लिए उसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है और संघर्ष में वही जीवित रहता है, जो समर्थ होता है। इस विचारधारा के अनुसार बालक को इस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वह अपने आपको परिस्थितियों और वातावरण के अनुकूल बना सके। प्रकृतिवाद में विश्वास रखने वाला शिक्षक निर्धारित पाठ को पढ़ाने से पहले छात्रों के परिपक्व होने की प्रतीक्षा करेगा।

www.studyofeducation.com

प्रकृतिवाद की विशेषताएँ

प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

- प्रकृतिवादी प्रकृति को ही सब कुछ मानते हैं। इनके मतानुसार संसार के तत्त्व प्रकृति नियमों के अधीन हैं, ईश्वर की सत्ता में इनका कोई विश्वास नहीं है।

- प्रकृतिवादी भौतिक संसार को ही सत्य मानते हैं।
-
- प्रकृतिवादी इन्द्रिय ज्ञान को मुख्य मानते हैं।
- प्रकृतिवादी यह मानते हैं कि सभ्यता तथा सामाजिक विकास के कारण मनुष्य प्रकृति से दूर होने के कारण वह दुःखी और पीड़ित है, इसलिए उसे प्रकृति के सम्पर्क में जाना चाहिए।
- प्रकृतिवादी आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास नहीं करते हैं।
- प्रकृतिवादी मानव प्रकृति पर अधिक बल देते हैं।
- प्रकृतिवादी शिक्षा दर्शन पर अधिक जोर देते हैं।

प्रकृतिवादी शिक्षा के दोष

प्रकृतिवादी शिक्षा के कुछ दोष भी हैं, जोकि निम्नलिखित हैं

- प्रकृतिवाद बालक को स्वतन्त्रता पर अधिक बल देता है, किन्तु सीमा से अधिक स्वतन्त्रता देना स्वयं बालक के हित में सही नहीं होता है।
- प्रकृतिवाद वालक के वर्तमान जीवन को महत्त्व देता है और भावी जीवन की उपेक्षा करता है।
- प्रकृतिवाद एकांगी उद्देश्य पर बल देता है।
- प्रकृतिवाद ने शिक्षक की उपयोगिता को बहुत कम कर दिया है ।
- प्रकृतिवाद पुस्तकों की अवहेलना करता है।
- प्रकृतिवाद में शिक्षकों को गौण स्थान दिया गया है, इससे बालक के विकास पर वांछित प्रभाव पड़ना असम्भव है।
- प्रकृतिवाद में उच्च शैक्षिक उद्देश्यों का अभाव पाया जाता है।
- प्रकृतिवाद मात्र वैयक्तिकता के विकास पर बल देता है।
- प्रकृतिवाद आध्यात्मिकता के गुण एवं सांस्कृतिक मूल्यों की अवहेलना करता है।
- प्रकृतिवाद नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा की अवहेलना करता है।
- प्रकृतिवाद पाठ्यक्रम में भाषा, संगीत, साहित्य एवं कला को गौण स्थान दिया गया है।
- प्रकृतिवाद केवल तात्कालिक उपयोगिता को ही महत्त्व देता है।

www.studyofeducation.com

प्रकृतिवाद के सिद्धान्त

- प्रकृतिवाद के अनुसार विश्व एक प्राकृतिक रचना है, इसमें कर्ता और कारण दोनों ही प्रकृति हैं। प्राकृतिक पदार्थ मिलकर इस सृष्टि का निर्माण करते है और विघटित होकर इसका नाश करते हैं। जगत में जो निर्माण या नाश होता रहता है वह प्राकृतिक परिवर्तन कहलाता है।
- प्रकृतिवाद किसी आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास नहीं करता, उसके अनुसार इस जगत की रचना प्रकृति के द्वारा होती है।
- प्रकृतिवाद इस भौतिक जगत को सत्य मानता है, आध्यात्मिक संसार मात्र एक कल्पना है, पदार्थ न कभी बनता है और न उसका कभी नाश होता है, वह मात्र रुप परिवर्तन करता है।
- प्रकृति अपने नियमों के अनुसार अपना कार्य करती है।
- प्रकृतिवादियों के अनुसार मनुष्य जगत का श्रेष्ठतम पदार्थ है। बुद्धि, तर्क, चिन्तन आदि गुणों से विभूषित होने के कारण वह अन्य पशुओं से सवोपरि है।
- प्रकृतिवाद के अनुसार मानव जीवन का उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है, इसके लिए वह जीवन में संघर्ष करता है और अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक भौतिक सुख प्राप्त करता है।

प्रकृतिवादी शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ

मुनरो के अनुसार, "प्रकृतिवाद ने शिक्षा के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और वैज्ञानिक विचारों के स्पष्ट निर्माण की प्रत्यक्ष प्रेरणा प्रदान की है।"

यद्यपि शैक्षिक विचारधारा में प्रकृतिवाद का सर्वप्रथम प्रयोग **बेकन और कमेनियस** ने किया, परन्तु प्रकृतिवादी आन्दोलन को चरम सीमा पर पहुँचाने का श्रेय रुसो को है। प्रकृतिवाद के समर्थकों में पेस्टोलॉजी, फ्रॉबेल, हर्बर्ट, बेसडो आदि हैं।

प्रकृतिवादी शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

प्रकृति का अनुसरण

प्रकृतिवाद ने 'प्रकृति की ओर लौटो' का नारा लगाया, जिसका अर्थ है समाज का वातावरण दूषित है। इसलिए बालक को अपनी प्रकृति के अनुसार स्वयं विकसित होने देना चाहिए। अत: प्रकृतिवादी बालक को विद्यालय और अन्य सामाजिक संस्थाओं के कृत्रिम तथा दूषित वातावरण से दूर रखकर अपने प्राकृतिक वातावरण में ही विकसित होने देना चाहते हैं। वे बालक को समाज से दूर प्रकृति की गोद में, जहाँ पर वातावरण शुद्ध हो, शिक्षा देने के समर्थक हैं, उनकी दृष्टि में सच्ची शिक्षा वह है, जो प्रकृति द्वारा बताए गए मार्गों का अनुसरण करे। वे प्रकृति को ही सर्वश्रेष्ठ शिक्षक मानते हैं।

www.studyofeducation.com

पेस्टोलॉजी ने बालक की तुलना बीज से की है। उनका मानना है कि बालक का उचित विकास प्रकृति की देख-रेख में ही सम्भव है। शिक्षा दर्शन में प्रकृतिवाद पेस्टोलॉजी की देन है। अतः प्रकृति के संरक्षण में ही बालक की शिक्षा व्यवस्था की जानी चाहिए।

बाल-केन्द्रित शिक्षा पर बल

प्रकृतिविदों के अनुसार शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए। वे चाहते हैं कि बालक पर पुस्तकों का बोझ न लादकर उसे इस बात का अवसर देना चाहिए कि वह अपने अनुभवों और प्रयत्नों के आधार पर अपने विचारों का निर्माण करे। रॉस ने कहा है "प्रकृतिवादी शिक्षा के चित्र में बालक का प्रमुख स्थान है न कि शिक्षा शिक्षालय या विषयों की विषय-वस्तु का।" प्रकृतिवादी शिक्षा के प्रादुर्भाव के कारण ही शिक्षा में बालक को प्रधानता प्राप्त हुई। मुनरो के शब्दों में, "शिक्षा अपने उद्देश्य, अपनी प्रक्रिया तथा अपने साधन बालक के जीवन एवं उसके अनुभव में प्राप्त करती है।"

पुस्तकीय शिक्षा का विरोध

प्रकृतिवादी विचारधारा से पूर्व शिक्षा में पुस्तकीय शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। प्रकृतिवादियों ने इस प्रकृति का घोर विरोध किया और करके सीखने तथा अनुभव द्वारा सीखने पर बल दिया। एडम्स ने कहा है "शिक्षा के प्रकृतिवाद का अर्थ उन सम्पूर्ण शिक्षा पद्धतियों से है, जो शिक्षालयों और पुस्तकों पर निर्भर न होकर शिक्षालयों के वास्तविक जीवन के अध्ययन पर निर्भर रहती है।"

www.studyofeducation.com

बालक की स्वतन्त्रता पर बल

प्रकृतिवादियों का मत है कि बालक पर किसी प्रकार का बन्धन या प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए, उसे स्वतन्त्र रखा जाना चाहिए जिससे उसके स्वाभाविक विकास में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो।

कमेनियस के अनुसार, "प्रकृति ठीक समय पर कार्य करती है।"

बालक की योग्यताओं, क्षमताओं और रुचियों पर बल

प्रकृतिवादी विचारधारा से पूर्व बालक के मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की पूर्ण उपेक्षा की जाती थी। प्रकृतिवादियों ने बालक की अन्तःप्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक बतलाया और कहा कि बालक की मूल प्रवृत्तियाँ, आवश्यकताओं, इच्छाओं, शक्तियों, रुचियों, भावनाओं, योग्यताओं और सीमाओं को समझकर उन्हीं के आधार पर विकसित होने का अवसर दिया जाना चाहिए।

रूसो के अनुसार, "बालक एक ऐसी पुस्तक है, जिसे आद्यान्त पढ़ना पड़ता है।"

इन्द्रिय प्रशिक्षण पर बल

प्रकृतिविदों ने इन्द्रियों को ज्ञान का द्वार माना, जिसका अर्थ है कि हमारा सम्पूर्ण ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा ही मस्तिष्क में प्रविष्ट होता है। इन्द्रियों के माध्यम से ही सत्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। यदि हम ज्ञान को प्रभावशाली बनाना चाहते हैं, तो हमें इन्द्रियों को प्रशिक्षित करना होगा। रूसो के अनुसार, "शिक्षा को इन्द्रियों का उचित प्रयोग करके ज्ञान का द्वार खोलना चाहिए।"

प्रकृतिवादी शिक्षा के उद्देश्य

प्रकृतिविदों ने शिक्षा के कई उद्देश्य बताए हैं, जो निम्न प्रकार हैं

जीवन संघर्ष के लिए तैयारी - प्रकृतिविदों के अनुसार प्रत्येक जीव में जीने को इच्छा होती है, इसी प्रकार मनुष्य में भी जीने की इच्छा होती है और वह अपने जीवन की रक्षा के लिए अपने वातावरण से संघर्ष करता है। **डार्विन** ने इस सम्बन्ध में व्यापक सिद्धान्त दिया, जिसे 'जीवन के लिए संघर्ष' कहा गया। इसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति तथा राष्ट्र को जीवन संघर्ष के लिए तैयार करना होता है। प्रकृतिवादी भी चाहते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को जीवन संघर्ष के लिए तैयार करना होना चाहिए। रॉस के अनुसार, "शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति या राष्ट्र को उस संघर्ष के लिए तैयार करना और विजय के योग्य बनाना होना चाहिए।'

बालक का वातावरण के साथ अनुकूलन प्रकृतिवादियों के अनुसार, बालकों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वह अपने को वातावरण के अनुकूल बना सके। इसके लिए बालक को शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए। लैमार्क का कहना है कि मानव का विकास जीवन के निम्न स्तरों से हुआ है। अत: शिक्षा वह प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को उसके वातावरण तथा परिस्थितियों के अनुकूल बनाने में सहयोग प्रदान करती है, इस दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस योग्य बनाना है कि वह अपने वातावरण तथा परिस्थितियों के साथ अनुकूलन कर सके।

जातीय निष्पत्तियों का संरक्षण करना बर्नार्ड शॉ ने शिक्षा का उद्देश्य सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करना तथा आने वाली पीढ़ी को उसका ज्ञान कराना निश्चित किया है। यह समाज की एक ऐसी उपलब्धि है, जो वंशानुक्रम द्वारा नई पीढ़ी तक नहीं पहुँचती है। रॉस के अनुसार, "शिक्षा स्वयं विकास की गति को तेज करने तथा मूलवंशीय सुधार को अधिक शीघ्रातिशीघ्र लाने के लिए किया गया मनुष्य का विमर्षित प्रयास है, शिक्षा पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस मूलवंशीय प्राप्तियों के संरक्षण, हस्तान्तरण और बुद्धि का नाम है।

www.studyofeducation.com

पूर्ण जीवन की तैयारी बालक की शिक्षा का उद्देश्य उसके पूर्ण जीवन की तैयारी होनी चाहिए। पूर्ण जीवन के अन्तर्गत स्पेन्सर ने आत्मरक्षा, जीविकोपार्जन, वंश वृद्धि एवं शिशु रक्षा, सामाजिक तथा राजनैतिक कार्य और अवकाश के समय के कार्यों को सफलतापूर्वक कर सकना सम्मिलित किए हैं।

व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास करना टी पी नन महोदय ने शिक्षा के उद्देश्य का निर्माण करते समय वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा प्रकृतिवादी दर्शन को अपनाते हुए बताया कि शिक्षा का उद्देश्य वैयक्तिकता का अनियन्त्रित विकास करना है। अत: शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास करना है। भाटिया और अदावल के अनुसार, "जो शिक्षा प्रत्येक बालक में अपना निजी व्यक्तित्व विकसित करती है, वस्तुत: वही प्रकृति के अनुसार शिक्षा होती है।"

के

प्रकृतिवाद एवं पाठ्यक्रम

रुसो की पुस्तक एमील में विभिन्न बालकों की अवस्थाओं लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों की रुपरेखा प्रस्तुत की गई है। अत: प्रकृतिविदों ने बालक को पाठ्यक्रम का आधार माना और ऐसे पाठ्यक्रम पर बल दिया है जो उनकी नैसर्गिक रुचि, योग्यता और स्वाभाविक क्रियाओं के विकास में सहयोग दे, जिन आधारों पर प्रकृतिवादियों ने अपने पाठ्यक्रम का निर्माण किया है, वे आधार निम्नलिखित हैं

- पाठ्यक्रम की रचना बालक को केन्द्र-बिन्दु मानकर करनी चाहिए। प्रकृतिवादी आन्दोलन से पूर्व बालक को प्रौढ़ मानकर पाठ्यक्रम का निर्धारण होता था। प्रकृतिवादियों ने ही सर्वप्रथम यह नारा लगाया कि बालक को बालक ही मानना चाहिए।

- पाठ्यक्रम बालक की मूल प्रकृतियों, योग्यताओं, क्षमताओं और स्वाभाविक क्रियाओं के अनुकूल होना चाहिए। विकास को अवस्थानुसार जैसे-जैसे बालक की इन मनोगत विशेषताओं में परिवर्तन आता है, पाठ्यक्रम की सामग्री में भी तद्नुसार ही वृद्धि करनी चाहिए।

- किशोरावस्था आदि से होकर गुजरना पड़ता है। विकास की इन विभिन्न बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं; जैसे- शैशवावस्था, बाल्यावस्था, अवस्थाओं में बालक की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं में परिवर्तन होता रहता है। अतएव पाठ्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए, जो बालक की विभिन्न आवश्यकतानुसार आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

- पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसमें मानव को स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी अभिरुचियों को विकसित करने का अवसर प्राप्त हो सके।

www.studyofeducation.com

- पाठ्यक्रम में इन्द्रिय प्रशिक्षण को विशेष स्थान मिलना चाहिए।

प्रकृतिवाद और शिक्षण विधियाँ

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में प्रकृतिवाद ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रकृतिवाद पुस्तकीय शिक्षा एवं सामूहिक शिक्षा का विरोध करता है। प्रकृतिवाद उन प्राचीन शिक्षण विधियों का भी विरोध करता है, जिनमें बालक को उसकी प्रकृति के अनुकूल स्वानुभाव, स्व-क्रिया एवं खेल के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाए। इस प्रकार प्रकृतिवाद ने जिन शिक्षण विधियों को जन्म दिया, उनका आधार है करके सीखना, अनुभव द्वारा सीखना तथा खेल द्वारा सीखना।

www.studyofeducation.com

रूसो के अनुसार, "अपने छात्र को मौखिक पाठ मत पढ़ाओ, उसे केवल अनुभव से सीखने दो। जब भी सम्भव हो आप कार्य द्वारा पढ़ाएँ और शब्दों का सहारा तभी लें, जब कार्य करना सम्भव न हो।"

जे एस रॉस ने लिखा है कि "प्रकृतिवादी शिक्षक अपनी व्याख्याओं की अपेक्षा बालक के शैक्षिक अनुभवों को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं।"

हर्बर्ट स्पेन्सर के अनुसार, "शिक्षण विधियाँ रुचिकर और मनोरंजक होनी चाहिए, उसे शिक्षण विधियों में कुछ शिक्षण सूत्रों का प्रयोग करना चाहिए। इन शिक्षण सूत्रों में प्रमुख हैं सरल से जटिल की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर, अनिश्चित से निश्चित की ओर, प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर, अनुभव से तर्क की ओर और मनोविज्ञान की ओर।"

प्रकृतिवाद ने शिक्षण में अनेक शिक्षण विधियों का योगदान दिया है, इन शिक्षण विधियों में प्रमुख हैं ह्यूरिस्टिक विधि, डाल्टन विधि, प्रत्यक्ष विधि, निरीक्षण विधि में तथा खेल विधि।

प्रकृतिवादी इस बात पर जोर देते हैं कि बालक की शिक्षा व्याख्यानों द्वारा नहीं होनी चाहिए, अपितु जिस वस्तु और विषय का बालक को ज्ञान कराया जा रहा है, उसके सम्पर्क में बालक को लाकर शिक्षा देनी चाहिए। इस प्रकार सीखने में बालक रुचि लेगा जिसके फलस्वरूप वह जो कुछ भी सीखेगा, वह बहुत अच्छी तरह सीखेगा और इस प्रकार का सीखना उसकी प्रवृत्ति के अनुकूल भी होगा। नर्सरी, मॉण्टेसरी पद्धति, किण्डरगार्टन, योजना विधि आदि प्रकृतिविदों की शिक्षा विधियाँ हैं।

प्रकृतिवाद एवं अनुशासन

प्रकृतिवादी स्वतन्त्रता के पक्षपाती हैं। अतः वे अनुशासन के लिए बाह्य हस्तक्षेप का विरोध करते हैं और शारीरिक दण्ड व्यवस्था को अन्यायपूर्ण मानते हैं। प्रकृतिविदों के अनुसार स्वतन्त्र वातावरण में ही बालकों का स्वाभाविक विकास हो सकता है, उनके अनुसार प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन स्थापित करना चाहिए।

1. रुसो ने इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि - बच्चों को कभी दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए, उसे स्वतन्त्रता दिया जाना चाहिए, जो सबसे अच्छी चीज है। अनुशासन सदैव बालकों की गलतियों के प्राकृतिक परिणामों द्वारा होना चाहिए। रुसो की 'स्वतन्त्रता' की अवधारणा को ज्यो पॉल सात्रे, पोलो फ्रीयर व जॉन डीवी ने स्वीकृत किया।

2. हर्बर्ट स्पेन्सर भी प्राकृतिक दण्ड व्यवस्था के पक्षपाती थे, उन्होंने अनुशासन की समस्या का समाधान 'सुख-दुःख' के सिद्धान्त के आधार पर किया। उनका मत था कि जिस कार्य को करने से बालक को सुख मिलता है, उसे वह स्वीकार करता है और जिस कार्य को करने से उसे दुःख मिलता है, उसे वह अस्वीकार करता है।

3. हक्सले ने रूसो और स्पेन्सर के विचारों का विरोध किया है, उसके अनुसार प्रकृति द्वारा दण्ड व्यवस्था बहुत कठोर और तर्कसंगत नहीं है। इसके स्थान पर बालक को स्वतन्त्रता देने के साथ-साथ उत्तरदायित्व भी देना चाहिए, जिससे उसका व्यवहार अनुशासन में हो सके।

www.studyofeducation.com

प्रकृतिवाद एवं शिक्षक

प्रकृतिवादी प्रकृति को ही सबसे उत्तम शिक्षक मानते हैं। प्रकृतिवादी शिक्षा में शिक्षक को कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है। शिक्षक का कार्य केवल ऐसे वातावरण का निर्माण करना है, जिसमें बालक स्वयं अपने अनुभव के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सके। प्रकृति शिक्षा दर्शन में शिक्षक की भूमिका एक माली की है। प्रकृतिवादी बालक की शिक्षा में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार शिक्षक को नहीं देते, इनका कहना है कि शिक्षक को बालकों के समक्ष अपने आदर्शों को थोपने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। प्रकृतिवादियों के अनुसार बालक के लिए शिक्षक का कार्य प्रकृति करती है, प्रकृति में रहकर बालक को स्वतन्त्र विकास का अवसर देना चाहिए। बालक स्वयं अनुभव से सीखता है, शिक्षक को बालक के स्वाभाविक विकास के लिए सहायक होना चाहिए, उसे सिर्फ बालक को ज्ञान देने वाला व्यक्ति नहीं होना चाहिए। रुसो के अनुसार, "बालक की साधु प्रकृति होती है, उसका स्वाभाविक विकास केवल उसी समय हो सकता है जब उसकी स्वतन्त्र क्रियाओं में किसी प्रकार की कोई बाह्य बाधा अथवा उलझन न डाली जाए।"

रॉस के अनुसार, "प्रकृतिवाद में शिक्षक का स्थान पर्दे के पीछे रहने वाले सूत्रधार जैसा है। वह बालक के विकास को देखने वाला पर्यवेक्षक है, सूचना देने वाले विचार, आदर्श एवं संकल्प का या चरित्र का विकास करने वाला नहीं है, ये बच्चे अपने-आप ही सीख जाएँगे, वे अपने शिक्षकों से अधिक जानेगे उसकी शिक्षा मुक्त विकास है, वह प्राकृतिक है, कृत्रिम नहीं।" वह

प्रकृतिवाद एवं बालक

प्रकृतिवाद बालक में जन्मजात अच्छाई तथा श्रेष्ठता के दर्शन करता है तथा उसी का विकास करना चाहता है। बालक में बुराई समाज से आती है, क्योंकि समाज अपनी रुढ़ियों, परम्पराओं एवं अन्धविश्वासों को भावी पीढ़ी को प्रदान करता है, इससे बालकों का स्वाभाविक विकास नहीं हो पाता। सम्पूर्ण शिक्षा जीवन की तैयारी बन जाती है तथा बालक का वर्तमान जीवन उपेक्षित कर दिया जाता है। प्रकृतिवादी बालक को इस स्थिति से बचाना चाहता है। बालक की प्रवृत्तियों, इच्छाओं, रुचियों, आवश्यकताओं और योग्यताओं के अनुरुप ही प्रकृतिवादी उसे शिक्षा देना चाहते हैं। वे उसकी इन्द्रियों और प्रवृत्तियों का दमन करना नहीं चाहते। प्रकृतिविदों का मत है कि बालक शिक्षा प्राप्त करने के लिए उत्पन्न नहीं होता, अपितु उसका विकास करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार प्रकृतिवादी शिक्षा का केन्द्र बालक ही है, शिक्षा या पाठ्यक्रम नहीं।

www.studyofeducation.com

रुसो के अनुसार बालक

रुसो ने कहा है कि "ईश्वर सभी चीजों को अच्छा बनाता है, किन्तु मनुष्य के हाथों में पड़कर (जाकर) वे सभी चीजें बुरी हो जाती हैं। प्रकृति द्वारा जो मार्ग निर्धारित किए जाते हैं, वे समाज द्वारा निर्धारित मार्गों से श्रेष्ठ होते हैं। मनुष्य एक प्रकार की मिट्टी को दूसरे प्रकार के उत्पाद के लिए विवश करता है। वह एक पेड़ पर दूसरे का फल प्राप्त करने के लिए शक्ति का प्रयोग करता है। वह देश, काल और प्राकृतिक परिस्थितियों में गड़बड़ी (विसंगति) उत्पन्न कर देता है। वह सभी वस्तुओं को नष्ट करके बिगाड़ देता है, वह हेय एवं कुरुप से प्रेम करता है। वह किसी चीज को, यहाँ तक कि मनुष्य तक को भी अपने प्राकृतिक रुप में ग्रहण नहीं करता है।

घृणा, पूर्व-धारणा, अधिकार, आवश्यकता, जैसी सामाजिक दशाएँ जिनमें हम डूबे हुए हैं, बालक की प्रकृति को नष्ट कर देगी और उसे प्रकृति के स्थान पर कुछ नहीं देंगे।" वस्तुतः प्रत्येक बालक अपने में पूर्ण इकाई है। अतः यह योग्यता, रुचि आदि में अन्य बालकों से भिन्न होता है। अत: शिक्षा द्वारा बालक की योग्यताओं, रुचियों एवं क्षमताओं का अध्ययन किया जाना चाहिए।

प्रकृतिवाद एवं विद्यालय

प्रकृतिविदों के अनुसार विद्यालय कठोर बन्धनों वाली संस्था न होकर स्वतन्त्र वातावरण प्रदान करने वाली संस्था होनी चाहिए तथा प्रकृति ही वास्तविक शिक्षालय है, किन्तु प्रकृति के शिक्षालय के अतिरिक्त हमें सामाजिक विद्यालयों की स्थापना करनी पड़ती है। विद्यालय का संगठन ऐसा हो जहाँ बालको को स्वतन्त्र विकास के लिए उपयुक्त वातावरण मिल सके, जिससे बालक अपनी शक्तियों का पूर्ण विकास कर सके। प्रकृतिवादी विद्यालयों में समय विभाग चक्र के विरोधी हैं, उनके अनुसार समय विभाग

चक्र काफी लचीला होना चाहिए। रॉस ने लिखा है, "विद्यालय ऐसे स्थल पर होने चाहिए, जहाँ पर बालक हानिकारक प्रभावों से दूर रहें।"

प्रकृतिवादी शिक्षा के प्रभाव

प्रकृतिवादी शिक्षा की देन को आधुनिक शिक्षा पर निम्नलिखित प्रभाव के रुप में देखा जा सकता है

- **बाल मनोविज्ञान पर बल** प्रकृतिविदों ने बालक को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया अर्थात् बालक को उसकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों, भावों तथा उद्देश्यों के अनुसार विकसित करने पर बल दिया। मनोविज्ञान ने बताया कि बालक विकासकाल में विभिन्न स्थितियों से होकर गुजरता है। यही नहीं मनोविज्ञान की एक विशेष शाखा मस्तिष्क विश्लेषण को तो विशेष प्रोत्साहन मिला। अत: इसे भी प्रकृतिवाद की देन कहा जाता है। .

- **अनुभवों पर बल** प्रकृतिवाद विषय प्रधान पाठ्यक्रम के विरुद्ध अनुभव प्रधान पाठ्यक्रम का समर्थन करता है, जिसके अनुसार पाठ्यक्रम में बालक के अनुभवों को सम्मिलित किया जाता है। अनुभव के आधार पर बालक अधिक सीखता है, यह पुस्तकीय ज्ञान को हटाकर अनुभव तथा ज्ञान को महत्त्वपूर्ण स्थान देता है।

- **बाल केन्द्रित शिक्षा पर बल** बालक का प्रमुख स्थान प्रकृतिवाद की विशेषता है। बाल-केन्द्रित शिक्षा प्रकृतिवाद की ही देन है। पहले बालक को प्रौढ़ का छोटा रुप मानते थे, उसका व्यक्तित्व मानने को तैयार न थे, जबकि अब बालक की क्रियाओं द्वारा शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया गया।

- **शिक्षा में खेल की प्रमुखता पर बल** शिक्षा में खेल की प्रमुखता इस विचारधारा की ही देन है। इससे पूर्व खेल को व्यर्थ की चीज समझा जाता था। प्रकृतिवाद ने खेल को स्वाभाविक तथा आवश्यक सिद्ध किया।

- **प्रकृति की ओर लौटो** इस प्रमुख नारे में यह कहा गया कि शहरी जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो, जो बालक की प्रकृति प्रेम में वृद्धि करता है।

प्रकृतिवादी विचारधारा के परिणामस्वरुप ही अब शिक्षा का पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियाँ बालक की रुचियों और आवश्यकताओं के आधार पर निश्चित होती हैं। प्रकृतिवाद के फलस्वरुप ही शिक्षा विधियों में ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग, अनुभव द्वारा सीखने, क्रिया द्वारा सीखने तथा खेल-खेल में सीखने पर बल दिया। प्रकृतिवाद ने शिक्षा के क्षेत्र पर अपना जो अच्छा-बुरा प्रभाव डाला, उसके अवलोकन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अनेक दोषों के होते हुए भी प्रकृतिवाद ने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी परिवर्तन किए, जिनके कारण शिक्षा जगत सदैव प्रकृतिवाद का आभारी रहेगा।

www.studyofeducation.com

प्रो. आर. बी. लाल के अनुसार, "दर्शन के रुप में हम प्रकृतिवाद से भले ही न हो पर उसके द्वारा निर्मित शिक्षण की विधियों के लिए हम उसके चिर ऋणी रहेंगे।"

प्रयोजनवाद/व्यवहारवाद/व्यावहारिकतावाद (Pragmatism)

'प्रयोजनवाद' शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर 'Pragmatism' है। कुछ विद्वान् 'Pragmatism' शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'Pragmatikos' से मानते हैं, जिसका अर्थ है 'Practicability' अर्थात् 'व्यावहारिक'। अतः 'Pragmatikos शब्द का अर्थ हुआ 'Practicability' अर्थात् 'व्यावहारिकता'। अतः प्रयोजनवाद को व्यवहारवाद के नाम से भी जाना जाता है।

स्थूल रुप में प्रयोजनवाद (व्यवहारवाद) से आशय इस सिद्धान्त से है कि सभी विचारो, मूल्यो एवं निर्माण का सत्य उनके व्यावहारिक परिणामों में पाया जाता है। यदि उनके परिणाम सन्तोषजनक हैं तो वे सत्य हैं अन्यथा नहीं। प्रयोजनवादी (व्यवहारवादी) वस्तुतः मानव जीवन के वास्तविक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। इस ब्रह्माण्ड को वे बस अनेक वस्तुओं और क्रियाओं का परिणाम मानते है, लेकिन वे वस्तुओं और क्रियाओं की व्याख्या करने के चक्कर में नहीं पड़ते। वे इस इन्द्रियग्राह संसार के अस्तित्व को ही स्वीकार करते हैं, अन्य किसी संसार के अस्तित्व को नहीं। वे न आत्मा को मानते हैं, न परमात्मा को।

इनके अनुसार मन का ही दूसरा नाम परमात्मा है तथा मन एक पदार्थजन्य क्रियाशील तत्त्व मात्र है, इसके अतिरिक्त ये ज्ञान को साध्य न मानकर मानव जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं। इनके अनुसार सामाजिक क्रियाओं के माध्यम से यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्रयोजनवादी चाहते हैं कि बालकों में सामाजिक कुशलता का अधिकाधिक विकास हो, जिससे वे समाज में समायोजन तथा अपने जीवन की समस्याओं को सरलतापूर्वक हल कर सकें।

प्रयोगवाद (व्यवहारवाद) अथवा प्रयोजनवाद उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव चिन्तन। यूनानी सोफिस्टों के अनुसार मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदण्ड है और सभी सत्य मानवीय सत्य हैं। प्रोटेगोरस के इस प्राचीन विचार को लेकर आधुनिक फलवादी सत्य के लिए नहीं, बल्कि मानव के लिए मानते हैं और इसलिए प्रयोजनवाद (व्यवहारवाद) का एक प्रमुख रुप मानववाद कहलाता है। आधुनिक समय में व्यवहारवाद (प्रयोजनवाद) का अमेरिका में अधिक प्रचलन हुआ है।

प्रयोजनवाद को प्रयोगवाद, फलवाद, व्यवहारवाद, उपयोगितावाद आदि के नामों से भी जाना जाता है। इस वाद के प्रमुख समर्थक हैं-सी बी पियर्स, विलियम जेम्स, शिलर तथा जॉन डीवी।

प्रयोजनवाद उपयोगिता के सिद्धान्त पर बल देता है व सामाजिक तथा लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण में विश्वास रखता है, किन्तु निश्चित लक्ष्यों एवं मूल्यों को विरोध करता है।

www.studyofeducation.com

प्रयोजनवाद की परिभाषाएँ

प्रमुख विद्वानों के अनुसार दी गई प्रयोजनवाद की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

रॉस के अनुसार, "प्रयोजनवाद एक मानवीय दर्शन है, जो यह मानता है कि मनुष्य क्रिया की अवधि में अपने मूल्यों का निर्माण करता है और यह मानता है कि वास्तविकता सदैव निर्माण की अवस्था में रहती है।"

विलियम जेम्स के अनुसार, "प्रयोजनवाद मस्तिष्क का एक स्वभाव और अभिवृत्ति है। यह विचार और सत्य की प्रकृति का सिद्धान्त भी है और अन्त में यह वास्तविकता का सिद्धान्त है।"

रोजन के अनुसार, "प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य को उसके व्यावहारिक परिणामों के द्वारा जाना जा सकता है और इसलिए सत्य न होकर व्यक्तिगत या सामाजिक समस्या है।"

www.studyofeducation.com

प्रयोजनवाद सम्बन्धी विचार

प्रयोजनवाद के सम्बन्ध में प्रमुख विद्वानों के विचार निम्नलिखित हैं

चार्ल्स पीयर्स के विचार

आधुनिक काल में व्यवहारवार (प्रयोजनवाद) अमेरिकन दर्शन के रूप में प्रचलित है, क्योंकि यह अमेरिका की देन है। इसका उद्गम सबसे पहले चार्ल्स पीयर्स के निबन्धों में देखा जा सकता है। विलियम जेम्स ने प्रयोजनवाद सम्बन्धी विचार उपस्थित किए तो पीयर्स ने अपने को उससे भिन्न घोषित करके अपने दर्शन को 'Pragmatics' नाम दिया, जिससे कि उसे अलग पहचाना जा सके। अस्तु प्रयोजनवाद के इतिहास में चार्ल्स पीयर्स का केवल ऐतिहासिक महत्त्व है।

विलियम जेम्स के विचार

पीयर्स के विचारों को विलियम जेम्स ने आगे बढ़ाया और उसी ने प्रयोजनवाद को एक सम्पूर्ण दर्शन का रूप दिया। आज जो प्रयोजनवाद के नाम से जाना जाता है उसके प्रणेता विलियम जेम्स ही थे। प्रयोजनवाद अमेरिकी जीवन का प्रतिनिधि दर्शन है, क्योंकि वे लोग प्रत्येक बात को व्यावहारिक रूप में लेते हैं।

आज भी कुछ दार्शनिकों को छोड़कर अधिकांश अमेरिकी दार्शनिक प्रयोजनवाद के समर्थक हैं। विलियम जेम्स की पुस्तक 'Will to Believe' ने अमेरिकी जगत पर जबरदस्त प्रभाव डाला। इस पुस्तक में जेम्स ने लिखा है कि “आस्था स्वयं एक शक्ति है और अपने आलम्बन को यथार्थ बना देती है और जब हमारे सम्मुख वास्तव में ही सम्भव विकल्प उपस्थित होते हैं तो हमें उस विकल्प को मानने और विश्वास करने का अधिकार है जिसको मानने से हमारे नैतिक जीवन में सबसे अधिक योगदान मिलेगा।"

अपनी पुस्तक 'वेराइटिज ऑफ रिलिजियस एक्सपेरियन्स' (Varieties of Religious Experience) में विलियम जेम्स ने बहुतत्त्ववाद की स्थापना की है जिसके अनुसार संसार में जितने मनुष्य हैं उतने ही जीवन-दर्शन, उतने ही धर्म और उतने ही देवता हो सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के लिए उपयोगी दर्शन और धर्म का चयन करना है।

जॉन डीवी के विचार

विलियम जेम्स के बाद जॉन डीवी ने व्यवहारवाद (प्रयोजनवाद) की परम्परा को आगे बढ़ाया। शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोजनवाद विचारों को स्थापित करने का श्रेय जॉन डीवी को ही दिया जाता है। उन्होंने व्यवहारवाद (प्रयोजनवाद) को प्रजातन्त्र की शिक्षा के लिए अधिक उपयोगी बताया है। उनके अनुसार, किसी वस्तु की सच्ची उपयोगिता मानव कल्याण ही निहित है। उनके अपने शब्दों में प्रयोजनवाद को इस प्रकार समझाया गया है कि प्रयोजनवाद का मूल लक्षण जानने की निरन्तरता को एक ऐसी क्रिया के साथ बनाए रखना है, जोकि जानबूझकर परिवेश में संशोधन करता है।

वह मानता है कि ज्ञान कुछ अधिकार में रखने के कठोर अर्थ में हमारे बौद्धिक स्रोतों में निहित है जिसमें वे सब आदतें शामिल हैं जोकि हमारे कार्य को बुद्धियुक्त बनाती हैं। केवल वही यथार्थ ज्ञान है, जोकि हमारे विन्यास में इस प्रकार संगठित हो गया है, जिससे कि हम परिवेश को अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के और जिन परिस्थितियों में हम रहते हैं अपने लक्ष्यों और इच्छाओं को उनके अनुकूल बनाने के योग्य हो सकें।

www.studyofeducation.com

शिलर के विचार

ब्रिटिश विद्वान् एफ. सी. एस शिलर ने मानववाद के रुप में इंग्लैण्ड में व्यवहारवाद (प्रयोजनवाद) का प्रसार किया। शिलर सभी ज्ञान और सत्यों को मानवीय मानता है और मनुष्य को प्रत्येक बात की कसौटी मानता है। यहाँ तक कि गणित और विज्ञान आदि भी मानवीय विज्ञान ही हैं। शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य मनुष्य में मानव-सुलभ गुणों का विकास करना है, जो कुछ मानव-जीवन को आगे बढ़ाए और उसका विकास करे वही सत्य है।

प्रयोजनवाद के रूप

प्रयोजनवाद के निम्नांकित चार रूप या प्रकार हैं

1. मानवतावादी प्रयोजनवाद (व्यवहारवाद) यह प्रयोजनवाद सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसके अनुसार, मानव प्रकृति को पूर्णरूप में सन्तुष्ट करने वाली बात सत्य है। इन प्रयोजनवादियों का विश्वास है कि "जो बात मेरे उद्देश्य को पूरा करती है, मेरी इच्छाओं को सन्तुष्ट करती है तथा मेरे जीवन का विकास करती है, वही सत्य है।"

2. जीवशास्त्रीय प्रयोजनवाद (व्यवहारवाद) जीवशास्त्रीय प्रयोजनवाद मनुष्य को मनोदैहिक प्राणी मानता है। मनुष्य के पास मस्तिष्क है, जिसके द्वारा वह विचार करता है। जीवशास्त्रीय प्रयोजनवादियों के अनुसार मनुष्य इस शक्ति के बल पर ही अपने आपको वातावरण के अनुकूल बनाता है अथवा वातावरण को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता है। 'शिकागो सम्प्रदाय' का सम्बन्ध जीवशास्त्रीय प्रयोजनवाद से है। इसे साधनवाद की संज्ञा भी दी जाती है। जॉन डीवी इस विचारधारा के समर्थक थे।

3. नामरूपवादी प्रयोजनवाद (व्यवहारवाद) प्रयोजनवाद की यह शाखा विश्वास करती है कि प्रयोग करते समय ही प्रयोगकर्ता को प्रयोग के भावी परिणामों का आभास होने लगता है और ये परिणाम सदैव वास्तविक होते हैं।

4. प्रयोगवादी प्रयोजनवाद (व्यवहारवाद) जैसाकि नाम से ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि प्रयोगवादी प्रयोजनवाद केवल उस सत्य को स्वीकार करता है, जिसको प्रयोग से सिद्ध किया जा सकता है।

www.studyofeducation.com

प्रयोजनवाद के सिद्धान्त

प्रयोजनवाद के मुख्य सिद्धान्त निम्नांकित हैं

सत्य की प्रकृति परिवर्तनशील है प्रयोजनवादी किसी शाश्वत अथवा चिरंतन सत्य में विश्वास नहीं करते। उनके अनुसार जो बात आज सत्य है, वह कल भी सत्य रहेगी, ऐसा सोचना मात्र भ्रम है, क्योंकि परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं और सत्य को भी उन्हीं के अनुसार बदलना चाहिए। सत्य परिवर्तनशील है। देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार सत्य परिवर्तित होता रहता है। यदि हम सत्य को स्थिर अथवा अपरिवर्तनशील मान लेंगे, तो इससे विश्व की गति और विकास अवरुद्ध हो जाएगा। जेम्स के अनुसार, "सत्य कोई पूर्ण, निश्चित एवं अनन्त सिद्धान्त नहीं, प्रत्युत वह सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है।" जेम्स के ही शब्दों में, "सत्य किसी विचार का स्थायी गुणधर्म नहीं है। वह तो अकस्मात् विचार में निर्वासित होता है।"

अनेक तत्त्वों से इस संसार की रचना प्रयोजनवाद के अनुसार अनेक तत्त्वों के परस्पर मिलने से यह संसार निर्मित हुआ है। इस दृष्टिकोण के कारण इस दर्शन को बहुतत्त्ववादी भी कहते हैं। प्रयोजनवादियों का विश्वास है कि इन तत्त्वों के मध्य क्रिया चलती रहती है, जिसके परिणामस्वरूप रचनात्मक कार्य होता है। इस क्रिया का विशेष गुण यह है कि यह सदैव चलती रहती है। अतएव प्रयोजनवादी कहते हैं कि यह संसार सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है।

सामाजिक कुशलता सामाजिक विकास का आधार प्रयोजनवाद के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है एवं उसमें सामाजिक कुशलता का विकास होना आवश्यक है। सामाजिक कुशलता से तात्पर्य है कि मनुष्य अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए अपने साथियों के साथ प्रेम, सहानुभूति तथा सहयोग पर आधारित सम्बन्ध स्थापित करे।

सामाजिक जीवन पर बल प्रयोजनवाद सामाजिक जीवन को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान देता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज में ही उसका जीवन विकसित होता है। समाज में रहकर ही वह अपने जीवन को सफल बनाता है। समाज के बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

किसी सार्वभौमिक सत्ता में विश्वास नहीं प्रयोजनवाद किसी भी सार्वभौमिक सत्ता में विश्वास नहीं करता है। इसलिए यह अध्यात्मवाद का समर्थक नहीं है। इसके अनुसार सार्वभौमिक सत्ता (ईश्वर) मिथ्या कल्पित शक्ति है। ये आत्मा को भी क्रियाशील तत्त्व मानते हैं।

प्रयोजनवाद एवं शिक्षा

प्रयोजनवाद एवं शिक्षा के सम्बन्धों का उल्लेख इस प्रकार है

www.studyofeducation.com

प्रक्रिया प्रधान-शिक्षा प्रयोजनवादी शिक्षा में क्रिया की आवश्यकता को अधिक महत्त्व देते हैं। उनके मतानुसार बालक जन्म से ही क्रियाशील होते हैं। वे सदैव कुछ-न-कुछ कार्य करते रहते हैं। शिक्षा सैद्धान्तिक मतों को व्यावहारिक रूप प्रदान करती है यह शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है। .

मानव कल्याण के लिए शिक्षा कोई वस्तु तभी उपयोगी है, जब उसका सम्बन्ध मानव कल्याण से हो। शिक्षा भी तभी उपयोगी कही जा सकती है, जब उसका सम्बन्ध मानव कल्याण से हो तथा शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम आदि का संगठन मानव के वास्तविक जीवन को ध्यान में रखकर किया जाए।

बालक-केन्द्रित शिक्षा आदर्श या अध्यापक-प्रधान शिक्षा के विरोध में प्रयोजनवाद ने बालक को शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। प्रयोजनवाद दार्शनिक विचारधारा में सामाजिक सहभागिता के साथ छात्रों की क्षमताओं, रुचियों तथा आदतों में एकीकरण करती

है। प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा का स्वरुप बालक की मूल प्रवृत्तियों, रुचियों तथा आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित होना चाहिए। उनके मतानुसार शिक्षा बालक के लिए होती है, न कि बालक शिक्षा के लिए।

बुनियादी शिल्यों का महत्त्व प्रयोजनवादी क्रिया द्वारा सीखने पर बल देते हैं। इसलिए वे शिक्षा में बुनियादी शिल्पों को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। उनके मतानुसार बुनियादी शिल्प बालकों को रचनात्मक कार्य करने का अवसर प्रदान करते हैं तथा उनको जीविकोपार्जन की दृष्टि से आत्मनिर्भरता प्रदान करते .

सामाजिक जीवन के लिए शिक्षा प्रयोजनविदों के अनुसार, शिक्षा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका सामाजिक कार्य है। उनका कथन है कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अत: उसका विकास सामाजिक सन्दर्भ में होना चाहिए। उसे सामाजिक जीवन हेतु तैयार करना चाहिए। शिक्षा द्वारा उसमें सामाजिक कुशलता का गुण विकसित करना चाहिए।"

प्रयोजनवाद एवं शिक्षा के उद्देश्य

प्रयोजनवादी शिक्षा के निश्चित उद्देश्यों में विश्वास नहीं करते। वे तो समय और आवश्यकतानुसार मनचाहे उद्देश्यों को शिक्षा के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं। आज प्रयोजनवादी शिक्षा में आई सी टी पर बहुत जोर दिया जा रहा है। जॉन डीवी के अनुसार, "शिक्षा पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है या अनुभवों का पुनर्गठन है, वह व्यक्ति की कुशलता को विकसित करके सामाजिक मूल्यों में अभिवृद्धि करती है।" अत: प्रयोजनवादियों ने शिक्षा के उद्देश्यों को निम्न प्रकार स्पष्ट किया है-

- **मूल्यों एवं आदर्शों का विकास करना** इस उद्देश्य के अनुरुप बालक स्वयं अपने लिए मूल्यों की रचना कर सके। इसके लिए शिक्षक द्वारा समुचित परिस्थिति उत्पन्न की जानी चाहिए।
- **सामाजिक कुशलता का विकास करना** प्रयोजनवादी छात्र की सामाजिक कुशलता पर विशिष्ट बल देते हैं। अत: डीवी महोदय द्वारा सामाजिक कुशलता का विकास करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।
- **रुचियों एवं प्रवृत्तियों पर बल** बालक को शिक्षा उसकी रुचियों तथा प्रवृत्तियों के अनुरूप दी जानी चाहिए। प्रयोजनवादियों के अनुसार, "ज्ञान का कोई अरुचिपूर्ण अनुगमन नहीं है और न ही अपने लाभ के लिए बौद्धिक शिक्षा है।"
- **छात्र का विकास करना** प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य छात्र का विकास करना होना चाहिए। अत: डीवी महोदय द्वारा सामाजिक कुशलता का विकास करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

www.studyguideeducation.com

प्रयोजनवाद और पाठ्यक्रम

प्रयोजनवादी उपयोगी पाठ्यक्रम पर बल देते हैं। वह प्रक्रिया में विश्वास करता है न कि परिणाम में। व्यवहारवाद ललितकलाओं तथा सौन्दर्यशास्त्र को पाठ्यक्रम में उच्च वरीयता देने की बात का समर्थन करता है। प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम के निर्माण में चार सिद्धान्तों पर जोर देते हैं

1.एकीकरण का सिद्धान्त प्रयोजनवादियों के अनुसार बुद्धि एवं ज्ञान में एकीकरण होना चाहिए। अतः पाठ्यक्रम को विभिन्न विषयों में विभाजित नहीं करना चाहिए। रॉस के अनुसार, "किसी विशेष विषय पर कार्य करने की अपेक्षा उस सभी ज्ञान पर यह आधारित होना चाहिए, जिसमें बालक को लगाना है।"

2.उपयोगिता का सिद्धान्त प्रयोजनवादी के अनुसार पाठ्यक्रम में वही विषय पढ़ाया जाए, जो बालक के लिए उपयोगी हो।

3.अनुभव का सिद्धान्त प्रयोजनवादी करके सीखना तथा अनुभव के द्वारा सीखने पर बल देते हैं। डीवी के अनुसार, "यदि ये क्रियाएँ उस समुदाय की क्रियाओं की विशेषताओं का रुप धारण कर लें, जिसमें विद्यालय स्थित है, वे नैतिक मूल्यों को विकसित करेंगी। इसका परिणाम प्रेरणा, स्वतन्त्रता, नागरिकता का प्रशिक्षण तथा अनुशासन का विकास होगा।'

4.बालक की रुचि का सिद्धान्त प्रयोजनवादियों का विचार है कि बालक को शिक्षा उसकी रुचि के अनुसार दी जाए। बबेकर के अनुसार, "प्रयोजनवादी क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम चाहते हैं। बालकों में बातचीत, खोज, सृजनात्मकता तथा कलात्मक अभिव्यक्ति को विकसित करने वाले पाठ्यक्रम पर यह बल देता है।" प्रयोजनवादी निम्न शिक्षण विधियों पर बल देते हैं

- एकीकरण के द्वारा सीखना।
- सीखने की उद्देश्यपूर्ण क्रिया प्रणाली।
- करके या अनुभव से सीखना।

अतः उपरोक्त तीनों विधियों में क्रिया पर जोर दिया गया है, साथ ही इनकी व्यावहारिक रुप योजना तैयार की जाती है जिससे बालक स्वतन्त्र रुप से कार्य कर सके।

www.studyofeducation.com

प्रयोजनवाद एवं शिक्षण विधियाँ

प्रयोजनवाद (व्यवहारवाद) प्रगतिशील शिक्षण पद्धति में विश्वास करता है। रॉस के अनुसार, "यह प्राचीन के प्रति चेतावनी देता है कि हमारी विधियाँ प्रयोगात्मक हों तथा अधिक समय तक शिक्षण को प्रभावी न बनाएँ।

व्यवहारवादी शिक्षाशास्त्रियों ने प्राचीन एवं रूढ़िवादी शिक्षा पद्धतियों का विरोध करते हुए वर्तमान शिक्षण विधियों का प्रतिपादन किया। उनका विचार है कि कोई पद्धति इसलिए स्वीकार नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह पूर्व से शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग होती आ रही है, बल्कि उनका मत है कि परिस्थितियों के अनुसार नवीन पद्धतियों की रचना करनी चाहिए। इस दृष्टिकोण से उन्होंने शिक्षण पद्धति के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं, जिनके आधार पर उनका निर्माण होना चाहिए। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं

- बालकेन्द्रित पद्धति
- करके सीखने अथवा स्वानुभव से सीखने की पद्धति
- सानुबन्धता (Integration) की पद्धति।

प्रयोजनवाद एवं शिक्षक

व्यवहारवाद के अनुसार शिक्षक बालकों का मित्र पथ प्रदर्शक एवं सलाहकार होता है। शिक्षक में दो गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रथम-बालकों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा उनकी रुचियों का ज्ञान तथा द्वितीय परिवर्तनशील समाज की परिस्थितियों का बोध। शिक्षक को इन दो बातों के अतिरिक्त अपने विषय में पूर्णतः अधिकार होना चाहिए। कुशाग्र बुद्धि, निपुणता एवं व्यवहारकुशल होना भी शिक्षक के लिए अति आवश्यक है।

साथ ही शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बुद्धिमानीपूर्वक छात्रों का मार्गदर्शन करे तथा उनकी समस्याओं का समाधान करे। वह सामाजिक दृष्टिकोणों तथा सामाजिक रुचियों एवं सामाजिक आदतों को विकसित करने में कुशल हो। प्रयोजनवादी शिक्षक का स्थान महत्त्वपूर्ण मानते हैं। शिक्षक ही शिक्षा का आधार होता है।

गैण्ड तथा शर्मा के अनुसार, "वातावरण का चिन्तन और बालकों की उद्देश्यपूर्ति के लिए क्रियाओं का अभ्यास, वातावरण का व्यापक अर्थ, जिसमें क्रियाओं के दोनों रुप सम्मिलित हैं। इन्द्रियों द्वारा तथा मानसिक शक्तियों के द्वारा की गई क्रियाओं को सम्पन्न कराने का कार्य अध्यापक का है। तार्किक प्रत्यक्षवाद के निहितार्थ एक शिक्षक को सकारात्मक अभिवृत्ति की आदर्श-मूर्ति होना चाहिए।

www.studyiq education.com

प्रयोजनवाद एवं विद्यालय

प्रयोजनवादियों के अनुसार स्कूल समाज का लघु रुप है। स्कूल और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज में श्रेष्ठता उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि स्कूल में अच्छे गुणों का विकास किया जाए।

प्रयोजनवाद प्रकृतिकरणवादी है, क्योंकि यह छात्रों के अधिगम के संवर्द्धन के लिए प्रचुर मात्रा में शिक्षण-सहायक सामग्रियों के उपयोग पर बल देता है। डीवी के अनुसार, "विद्यालय समाज के सच्चे प्रतिनिधि हो।' घर में बालक को आदर्श वातावरण प्रदान नहीं हो पाता। अत: विद्यालयों का दायित्व और भी बढ़ जाता है। विद्यालय द्वारा ही बालकों में सामाजिक कुशलता का निर्माण करना चाहिए।

प्रयोजनवाद एवं अनुशासन

डीवी के अनुसार, "अनुशासन का अर्थ है-अनुशासन की शक्ति, उन स्रोतों पर अधिकार, जिनसे कार्य लिया जाता है। यह जानना व्यक्ति को क्या करना चाहिए और उसे करने के लिए क्रिया करना और उनसे अनुशासित होना, चाहे हम मस्तिष्क की बात करते हों अथवा सेना की।'

www.studyofeducation.com

प्रयोजनवाद के गुण

- उपयोगिता पर विशेष बला
- क्रिया करने पर बल देना।
- जनतान्त्रिक शिक्षा पर बल देना।
- बालक शिक्षा का केन्द्र है।
- सामाजिक जीवन की तैयारी।
- व्यावहारिक जीवन की तैयारी।
- योजना पद्धति का निर्माण करना।

प्रयोजनवाद के दोष

- शिक्षा के निश्चित उद्देश्यों की अवहेलना।
- भूत की अपेक्षा करना।

- सत्य एवं मूल्यों का विरोध करना।
- सत्य को परिवर्तनशील बताना।
- सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा।
- आध्यात्मिक गुणों की अवहेलना करना।
- मानवीय आदर्शों की अवहेलना करना।

प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव

प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर निम्न प्रभाव पड़ता है

- प्रयोजनवाद ने शिक्षा में एक नई क्रान्ति को जन्म दिया। लोकतन्त्रीय समाज के लिए लोकतन्त्रीय शिक्षा की आवश्यकता है।
- प्रयोजनवादी के अनुसार ज्ञान के लिए बहुत-सी शिक्षण सहायक सामग्रियों, रुचियों इत्यादि सभी की आवश्यकता पड़ती है।
- शिक्षा के मुख्य उद्देश्य उसकी प्राप्ति, सफलता एवं शिक्षण विधियों द्वारा होती है।
- योजना पद्धति प्रयोजनवाद की देन है। योजना निर्माण के लिए छात्र पर विश्वास, ज्ञानार्जन के लिए अधिक अभ्यास का न कराना, प्रत्येक श्रेणी के लिए इस पद्धति का अनुपयुक्त होना, केवल समस्याओं पर ही शिक्षा का आधारित होना आदि इस विधि की महान् त्रुटियाँ हैं।
- शिक्षा छात्र केन्द्रित हो और एक आधुनिक समाज में वह भी प्रगति की ओर उन्मुख हो।
- परम्परागत, रुढ़िगत तथा कठोर विधियों व विचारों को शिक्षा में न लाकर एक लोचदार एवं परिवर्तनशील शिक्षा ही परिवर्तनशील एवं लचकदार समाज की रचना करती है।
- शिक्षा का विकास, वृद्धि या व्यवहार परिवर्तन द्वारा होता है।
- प्रयोगवाद छात्र की नैसर्गिक प्रवृत्तियों, रुचियों, शक्तियों आदि को केन्द्र मानकर बाल केन्द्रित शिक्षा को महत्त्वपूर्ण मानता है।
- उद्देश्य के निश्चित न होने के कारण प्रयोजनवादी केवल प्रायोगिक तथा क्रिया-प्रधान शिक्षा विधि को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

मार्क्सवाद (Marxism)

मार्क्सवाद दर्शन के प्रवर्तक मार्क्स थे। वे धार्मिक शिक्षा में विश्वास नहीं रखते। वे भौतिकवादी दर्शन के प्रणेता थे, जिन्होंने अपने ग्रन्थ दास कैपिटल में साम्यवादी विचारधारा के सिद्धान्तों पर अपने विचार प्रस्तुत किए। दास कैपिटल पुस्तक को साम्यवादियों

www.studyforeducation.com

की बाइबिल कहा जाता है। इस ग्रन्थ की विचारधारा है "हर कार्य, वस्तु, व्यक्ति पर सन्देह करो' उनकी विचारधारा इसी सिद्धान्त पर विकसित हुई है। उन्होंने अपने साथी ऐंजेल्स के साथ मिलकर साम्यवाद का प्रवर्तन किया, जो मार्क्सवाद के नाम से जाना जाता है। मार्क्सवाद दर्शन की वह विचारधारा है, जो ब्रह्माण्ड को पदार्थजन्य मानती है। मार्क्सवाद के अनुसार, "संसार की आदि सत्ता आध्यात्मिक न होकर भौतिक है।" इसमें ईश्वर के अस्तित्व को नहीं माना गया है।

मार्क्सवाद ने शिक्षा व्यवस्था को पूर्णतया प्रभावित किया। इस प्रभाव को डॉ. वी एस शर्मा व डॉ. जे सी व्यास ने अपनी पुस्तक तुलनात्मक शिक्षा में इस प्रकार व्यक्त किया है।

"सोवियत रुस की राजनैतिक विचारधारा ने वहाँ के जन-जीवन और कार्य शैली को बहुत प्रभावित किया है। वहाँ साम्यवादी पार्टी की सरकार है और साम्यवाद का एकछत्र प्रभाव है। इस स्थिति का वहाँ की शिक्षा प्रणाली पर भी अधिकतम प्रभाव पड़ा है। रुस की शिक्षा प्रणाली को मार्क्सवादी और लेनिनवाद के आधार पर विकसित किया गया है। वहाँ पर शिक्षा को सर्वोपरि निवेश माना गया है, जो देश में आर्थिक और सामाजिक बदलाव का एकमात्र सशक्त माध्यम बन सकती है। इसके परिणामस्वरुप रुस में वर्ष 1917 में वहाँ की निरक्षरता 3/4 थी, वह आज समाप्त हो गई है। रुस ने अत्यन्त अल्प अवधि में ही माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।"

मार्क्सवाद पर आधारित शिक्षा

कार्ल मार्क्स ने शिक्षा सम्बन्धी कोई ग्रन्थ नहीं लिखा, परन्तु शिक्षा से सम्बन्धित उनके विचार, उनके ग्रन्थों तथा पत्रों में यत्र-तत्र मिलते हैं। मार्क्स ने कहा था कि दर्शनशास्त्रियों ने विश्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से परखा है, लेकिन वास्तविकता यह है कि इसे बदलना होगा। कार्ल मार्क्स ने मानव को अन्य लोगों एवं प्रकृति से सम्बन्धों की नए रुप में विवेचना की। वे सैद्धान्तिक न होकर क्रियाशील थे और परिवर्तन में विश्वास करते थे।

उनका दृष्टिकोण सामाजिक था और उन्होंने वैचारिक क्रान्ति को जन्म दिया। मार्क्स ने मानव को अपनी वास्तविकता समझने तथा अपनी सही तस्वीर बनाने की क्षमता प्रदान की। एंजल्स ने मार्क्स के सन्दर्भ में कहा था कि मार्क्स की यह धारणा थी कि मानव को पहले भोजन, कपड़ा तथा मकान चाहिए। इसके उपरान्त ही वह राजनीति विज्ञान, कला व धर्म आदि के सम्बन्ध में चिन्तन कर सकता है।

मार्क्स ने ज्ञान एवं क्रिया में समन्वय स्थापित करने का तथा मन और शरीर तथा विचार और क्रिया के द्वैत को उन्होंने समाप्त करने का प्रयास किया है। इसी दार्शनिक द्वैतवाद के आधार पर शिक्षा में भी द्वैतवाद को प्रश्रय मिला और उच्च वर्ग की तथा निम्न वर्ग की शिक्षा के प्रकार अलग हो गए। एक वर्ग बौद्धिक, साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करने लगा तथा दूसरा वर्ग श्रम की शिक्षा प्राप्त करने

studyofeducation.com

लगा। मार्क्स ने इसी भेद को मिटाने का प्रयास किया। मार्क्स का शिक्षा का दृष्टिकोण बहु-औद्योगिक शिक्षा का है। उन्होंने कहीं भी इस शब्द का प्रयोग नहीं किया, लेकिन सोवियत शिक्षाविदों का इसके लिए आभार प्रकट किया है। मार्क्स का विचार था कि बहु-औद्योगिक शिक्षा साम्यवादी समाज का प्रमुख अंग होती है और ऐसे समाज में ही उसका समुचित विकास सम्भव है।

मार्क्स के अनुसार शिक्षा

शैक्षिक संरचना सम्पूर्ण देश में एक समान होनी चाहिए, इन्होंने सार्वभौमिक शिक्षा को बड़ी गम्भीरता से लिया। कार्ल मार्क्स के समय में लोग सार्वभौमिक शिक्षा की बात सोच भी नहीं सकते थे। उस काल में कल-कारखानों में छोटे बच्चों को नौकरी पर रखा जाता था। सार्वभौमिक शिक्षा इस व्यवहार का विरोधी प्रत्यय है। साम्यवाद में सार्वभौमिक शिक्षा पर बल दिया गया है। यह शिक्षा तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि कानून द्वारा बालश्रम को पूर्णतः प्रतिबन्धित न कर दिया जाए और प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए कानून न बनाया जाए। यही नहीं राज्य सार्वभौमिक शिक्षा को आर्थिक सहायता प्रदान करे। कराधान द्वारा सहायता ही इसका स्रोत हो और यह बालकों के लिए नि:शुल्क हो।

www.studyfeducation.com

साम्यवाद में सार्वभौमिक शिक्षा के इन सभी आयामों को स्वीकार किया गया है। मार्क्सवादी दल ने सार्वभौमिक, समान प्राथमिक शिक्षा को अपने कार्यक्रम का अंग बनाया है और निःशुल्क तथा अनिवार्य उपस्थिति को इस योजना का महत्त्वपूर्ण अंग बताया।

कार्ल मार्क्स का विश्वास था कि अध्यापकों की न्यूनतम योग्यता राज्य के द्वारा निर्धारित होनी चाहिए। विषयों को पढ़ाने के लिए राज्यादेश होना चाहिए और पर्यवेक्षण शिक्षण आदि को कानून द्वारा नियमित किया जाना चाहिए। शिक्षा का वित्त प्रबन्धन राज्य का दायित्व होना चाहिए, किन्तु मार्क्स यह भी चाहते थे कि राज्य एवं चर्च को शिक्षा के क्षेत्र से बाहर हो जाना चाहिए तथा शिक्षा का प्रबन्ध मानव जाति में प्रकाश लाने के लिए किया जाना चाहिए।

मार्क्स ने पुराने शिक्षा प्रकारों को नष्ट करने की बात न कहकर उनमें सुधार करने की और सर्वहारा वर्ग की आवश्यकताओं के अनुसार उनमें सुधार करने की बात कही है। इसके अलावा मार्क्स का कथन है कि शिक्षा को उत्पादक कार्यों से संयुक्त कर दिया जाना चाहिए। स्कॉटलैण्ड के एक मिल मालिक रॉबर्ट ओवन ने अपने बाल श्रमिकों की शिक्षा, शारीरिक विकास, बौद्धिक विकास एवं नैतिक विकास के प्रशिक्षण के लिए एक विद्यालय खोला। उसके इस कार्य की मार्क्स ने प्रशंसा की है।

मार्क्स के अनुसार शिक्षा के प्रकार

मार्क्स के अनुसार शिक्षा के प्रकार निम्न हैं

बौद्धिक शिक्षा इसमें पढ़ना, लिखना, गणित, इतिहास आदि की शिक्षा सम्मिलित है।

शारीरिक प्रशिक्षण या व्यायाम इसमें पीटी व विविध प्रकार के शारीरिक व्यायाम शामिल किए जाते हैं।
पॉलिटेक्निक प्रशिक्षण इसमें उत्पादन की प्रक्रिया में निहित वैज्ञानिक प्रशिक्षण की बात निहित है। उनके अनुसार इस प्रशिक्षण को सभी लोगों को ग्रहण करना चाहिए। इस प्रशिक्षण के उत्पादन के औजारों के सभी प्रयोगों की जानकारी मिल जाती है और छात्र सुयोग्य नागरिक बनकर उत्पादन में वृद्धि करते हैं।

मार्क्सवादी शिक्षा योजना

1 प्रथम स्तर पर से 12 वर्ष के बालकों की शिक्षा में दो घण्टे की शिक्षा दुकान या घर पर ही उत्पादक कार्यों में हाथ बँटाने की होगी।
2 द्वितीय स्तर पर 13 से 14 वर्ष के बालक चार घण्टे तक काम किसी में हाथ बँटाएँगे |
3. तृतीय स्तर पर 17 वर्ष तक के बालक प्रतिदिन छः घण्टे तक काम में हाथ बँटाएँगे।

मार्क्स के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार विद्यालय प्रचलित व्यवस्था का बनाए रखने के लिए स्थापित किए जाते हैं। इनका आधार भौतिक मूल्य होते हैं, जो तात्कालिक समाज में व्याप्त होते हैं। मार्क्स के अनुसार प्रत्येक युग की शिक्षा प्रणाली पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद के युग में दोहरी शिक्षा प्रणाली चलती रही, जिसमें बौद्धिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरुप मार्क्स के अनुसार साम्यवाद की स्थापना के लिए शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य होने चाहिए

विद्यार्थियों में इस भावना को दृढ़ करना कि श्रम गरिमामय है, गौरव की बात है तथा तेजस्विता एवं वीरता का लक्षण है, जो व्यक्ति स्वयं श्रम नहीं करता परन्तु दूसरों के श्रम पर निर्भर रहता है उसका जीवन हेय है। संसार तथा मनुष्य समाज की उन्नति श्रम पर आश्रित है।

छात्रों में साम्यवाद के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना तथा मावर्य द्वारा प्रकल्पित सामाजिक उद्देश्यों के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए तत्पर बनाना शिक्षा का द्वितीय उद्देश्य है। छात्रों में इस भावना को पुष्ट किया जाता है कि साम्यवादी संघर्ष सम्पूर्ण विश्व के श्रमिकों के लिए है तथा उत्पादन एवं वितरण को सुनियोजित बनाने के लिए है।

तीसरा उद्देश्य छात्रों में भौतिकवादी दृष्टिकोण का विकास करना है। सभी अन्य विश्वासों से छात्र को मुक्त रखना तथा प्रत्येक घटना का वैज्ञानिक आधार खोजने की मनोवृत्ति का विकास करना इसका अन्य निहितार्थ है।

www.studyofeducation.com

मार्क्सवादी शिक्षा का सबसे मुख्य उद्देश्य सुदृढ चरित्र पर ही निर्भर करता है। व्यक्तिगत चरित्र के अन्तर्गत सामूहिक भावना का विकास, मानसिक एवं शारीरिक विकास, मार्क्स के आदर्शों के प्रति समर्पण भाव, साहस, ईमानदारी आदि गुणों का समावेश किया जाता है।

मार्क्स के अनुसार उत्पादन के सभी साधनों पर राज्य का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। शिक्षा उत्पादन का साधन है। अत: शिक्षण संस्थाओं पर राज्य का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। निजी स्वामित्व नहीं होना चाहिए, शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक सभी प्रकार के अभिकरणों पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए, जिससे शिक्षा को सही अर्थों में सामाजिक क्रान्ति का साधन बनाया जा सके।

इसके अतिरिक्त मार्क्स ने शिक्षा का पाठ्यक्रम शिक्षण विधि, अध्यापक, छात्र, विद्यालय अनुशासन, तकनीकी शिक्षा आदि के विषय में भी अपना विचार दिया है, जो निम्नलिखित है

मार्क्सवाद और शिक्षा का पाठ्यक्रम

साम्यवादी पाठ्यक्रम में श्रम गरिमा तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। सभी स्तरों पर तथा सभी प्रकार के शिक्षा पाठ्यक्रम में मार्क्सवादी दर्शन अनिवार्यतः पढ़ाया जाता है तथा समाजोपयोगी उत्पादक श्रम तथा उसकी समस्याओ को शिक्षा का केन्द्र बनाया जाता है।

कौरोव के अनुसार, साम्यवादी (मार्क्सवादी) पाठ्यक्रम की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं

- धर्म, पूँजीवादी वर्ग (बुर्जुआ) द्वारा जन-समुदाय को दी जाने वाली अफीम है, जिससे सामान्य जनता सोई पड़ी रहे तथा उनके विरुद्ध विद्रोह न करे। अत: शिक्षा प्रणाली से धर्म का पूर्णरुप से बहिष्कार होना चाहिए।
- अध्यापकों का अधिकार अक्षुण्ण है, वे साम्यवाद के प्रचार व प्रसार के सशक्त साधन हैं।
- देश की आर्थिक समृद्धि, तकनीकी विकास तथा अन्धविश्वास के निवारण के लिए विज्ञान की शिक्षा महत्त्वपूर्ण है।
- इतिहास का अध्ययन साम्यवादी विचारधारा को समझने में सहायक है।

पाठ्यक्रम की व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि इसकी पाठ्यवस्तु ऐसी हो कि यह अपने उद्देश्य की ओर निरन्तर बढ़ता रहे, किन्तु पाठ्यक्रम के विकास के समय इस बात का ध्यान भी रखा जाए कि पाठ्यक्रम पश्चिमी सभ्यता के अनुकूल हो।

www.studyofeducation.com

मार्क्सवादी शिक्षण विधियाँ

- शिक्षा को रचनात्मक शक्ति का विकास करना है। अत: शिक्षण विधि में रचनात्मकता पर बल देना चाहिए।
- छात्रों को इस योग्य बनाना है कि वे अपने नैतिक वातावरण पर अधिकार कर सके।
- शिक्षण विधि यथार्थवादी दृष्टिकोण पर आधारित हो।
- मार्क्सवाद (साम्यवादी) शिक्षण व्यवस्था में प्रयोगशाला एवं कार्यशाला का महत्व अत्यधिक है। इन विधियों से छात्र करके सीखते हैं।

मार्क्सवाद और अध्यापक

- माम्यवादी दर्शन में शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। वह साम्यवादी दर्शन से पूर्णतः परिचित होता है। .
- सामाजिक परिवर्तन के कारणों की उसे जानकारी होती है।
- समाज की अन्त:क्रियाओ का उसे ज्ञान होता है।
- साम्यवादी शिक्षक वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए की जाने वाली क्रान्ति में सहायक होता है।

www.studyofeducation.com

मार्क्सवाद और छात्र

पूर्व सोवियत संघ की शिक्षा साम्यवादी थी, क्योंकि यह साधनों को नया मोड़ देती थी और उनका उचित विनियोग करती थी, किन्तु इसके साथ ही यह शिक्षा पर भी बल देती थी। 2 अगस्त, 1943 को आर एस एफ एस आर के सोवियत पीपुल अधिकारी ने विद्यालयी बालकों के लिए जो 20 नियम बनाए थे उनसे साम्यवादी शिक्षा का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। इनका उल्लंघन करने पर छात्र को दण्ड दिया जाता था।

मार्क्सवाद और विद्यालय

- मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार विद्यालय प्रचलित सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए स्थापित किए जाते हैं।
- साम्यवादी दर्शन में विद्यालय समाज से पृथक् नहीं रह सकता स्थानीय समाज से विद्यालय का घनिष्ठ सम्बन्ध होगा। वर्गयुक्त समाज में विद्यालय का दायित्व क्रान्ति लाना है। वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए जिस सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है विद्यालय उसे सम्भव बनाता है।
- विद्यालय को परम्परागत संस्कृति का संरक्षक न होकर नवीन संस्कृति एवं विचारधारा का अग्रदूत होना चाहिए।
- विद्यालय में प्रचुर शिक्षण सामग्री, प्रयोगशालाएँ एवं कार्यशालाएँ होनी चाहिए।

मार्क्सवादी शिक्षा में अनुशासन

माक्र्सवादी (साम्यवादी) शिक्षा में अनुशासन का बड़ा महत्त्व है। मार्क्सवादी शिक्षा में अनुशासन के महत्त्व को समझने के लिए पूर्व सोवियत यूनियन की शिक्षा को देखा जा सकता है। सोवियत संघ के अनुशासन का अभिप्राय है

- ईमानदारी व सच्चाई के साथ अधिक-से-अधिक सफलता के लिए चिन्तित रहना।
- अपने साथियों के प्रति विनम्र रहना।
- उनके साथ सम्बन्धों के प्रति सावधान व चिन्तनशील रहना। बड़ों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना तथा जरुरतमन्दों की सहायता करना।
- सार्वजनिक भवनों की सुरक्षा स्वयं करना तथा अन्य लोगों को इसके लिए प्रेरित करना।

मार्क्सवादी तकनीकी शिक्षा

मावर्स ने तकनीकी शिक्षण को शिक्षा बताया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि “इस शिक्षा में उत्पादन की सभी प्रक्रियाओं के सामान्य सिद्धान्त रहते है। साथ-साथ शिशु तथा युवक को इसी प्रकार के उद्योगों से सम्बन सरलतम औजारों की प्रक्रिया के शिक्षण का समावेश रहता है।"

www.studyofeducation.com

मार्क्सवाद का शिक्षा पर प्रभाव

मार्क्सवाद का शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव को इस प्रकार देखा जा सकता है

- प्राथमिक स्तर पाठ्यक्रम में रूसी भाषा व साहित्य अकगणित, प्रकृति अध्ययन, भौतिक संस्कृति, इतिहास, भूगोल, चित्रकला, संगीत, आदि विषय सम्मिलित होता है, किन्तु 'हाथ से काम करना' रुसी पाठ्यक्रम का मूल आधार है। इससे छात्रों में श्रमशीलता का विकास किया जाता है। .
- रुस के 15 गणराज्यों में प्राथमिक शिक्षा अपने गणराज्य का शिक्षा मन्त्रालय करता है, किन्तु शिक्षा नीति निर्धारण का कार्य 'एशियन एकेडेमी ऑफ पेडागोगीकल साइंसेज' करती है, जो देश में शिक्षा को एक तरफा बनाए रखती है।
- शिक्षा में मार्क्सवादी सिद्धान्तो के प्रति आस्था व देश प्रेम की भावना का विकास किया जाता है।
- शिक्षा अनिवार्य व नि:शुल्क प्रदान किया जाता है।
- मार्क्सवादी (साम्यवादी) शिक्षा में शिक्षक और शिक्षार्थी कठोर अनुशासन में बद्ध होकर साम्यवाद में दृढ़ निष्ठा व राष्ट्र प्रेम का विकास करते है। दोनों की सत्ता राष्ट्र व साम्यवाद में केन्द्रित रहती है।

रुस में प्रचलित साम्यवादी शिक्षा व्यवस्था से प्रकट होता है कि वहाँ शिक्षा की एकरुपता, गुणवत्ता एवं साम्यवादी सिद्धान्तो के प्रति दृढ़ निष्ठा के कारण शिक्षा, वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति, उत्पादन में वृद्धि एवं राष्ट्र प्रेम के क्षेत्र में प्रभावी सिद्ध हुई है, किन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के हनन, एकरुपता के बन्धन तथा कठोर अनुशासन के कारण वह व्यक्ति के उन्मुक्त विकास में बाधक भी सिद्ध हुई है। यह शिक्षा के विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से भी उपयोगी नहीं है। अत्यधिक केन्द्रीकरण के कारण इस शिक्षा में अधिनायकवादी नियन्त्रण ही अधिक विद्यमान है। अत: इसे विश्व के लोकतान्त्रिक देशो में नहीं अपनाया जाता।

अस्तित्ववाद (Existentialism)

प्राचीनकाल से आज तक दर्शनशास्त्र में हर जगह अस्तित्व की समस्याओं पर विचार किया जाता रहा है। प्राचीन उपनिषदों में यह समस्या थी कि मनुष्य में वह तत्त्व क्या है जिसे उसका सच्चा अस्तित्व माना जा सकता है। पूर्व और पश्चिम हर जगह दार्शनिकगण अस्तित्व की प्रकृति के विषय में विचार करते रहे है। अस्तित्ववाद को मूल रुप से संकट का दर्शन माना जाता है। अस्तित्ववाद के आधुनिक विचारक काली जेस्पर है।

संसार में कोई भी दर्शन ऐसा नहीं है, जो किसी-न-किसी अर्थ में अस्तित्ववादी न कहा जा सकता हो। तब फिर समकालीन दर्शन में अस्तित्ववादी दार्शनिक सम्प्रदाय की विशेषता है कि यह दार्शनिक समस्याओं में सत् से अधिक सम्भूति पर, सामान्य मे अधिक विशेष पर और तत्त्व से अधिक अस्तित्व पर बल देता है। स्पष्ट रुप से अस्तित्ववाद का स्रोत देकात के इस कथन को माना जाता है "मैं सोचता हूँ, अत: में हूँ|

वास्तविक रुप में अस्तित्ववाद का जनक कीकेगार्ड (1813-1866) को माना जाता है। कीकेगार्ड ने ईसाई समाज पर प्रहार नामक पुस्तक लिखी एवं ईसाई धर्म की आलोचना की।

कीकेगार्ड के अनुसार, "अस्तित्ववादी की मुख्य समस्या यह है कि मैं ईसाई किस प्रकार बगा।" अस्तित्ववादी दार्शनिको में हाइडेगर, नीत्शे व ज्यो पॉल माधे मी नास्तिक है। अस्तित्ववादी दर्शन का प्रारम्भ की।गार्ड ने किया। नास्तिकवादी यहाँ पर ईमाः शब्द के स्थान पर प्रामाणिक सत् शब्द का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार अस्तित्ववादियों ने ज्ञान और व्याख्या के स्थान पर क्रिया और चुनाव पर जोर दिया है, क्या के स्थान पर कैसे को महत्त्वपूर्ण माना है। अस्तित्ववादी दर्शन का प्राचीन यूनानी दर्शन से सम्बन्ध बताते हुए सुकरात को भी अस्तित्ववादी माना गया है।

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार, "अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिए एक नया नाम है।

www.studyofeducation.com

अस्तित्ववाद के प्रवर्तक सोरेन कीर्केगार्ड, फ्रेडरिक, नीत्शे, ज्यो पॉल सात्रे, मार्टिन हाइडेगर अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य है

- स्वयं की समझ का विकास
- पूर्ण मानव का विकास
- व्यक्ति का विकास

अस्तित्ववाद के सिद्धान्त

अस्तित्ववाद की बौद्धिक चुनौतियों के विरुद्ध प्रयोजनवाद तथा आदर्शवाद ने काफी आवाज उठाई फिर भी अस्तित्ववाद अपने मूलभूत ठपयोगी सिद्धान्तों के कारण दिन-प्रतिदिन उन्नति करता चला जा रहा है।

अस्तित्ववाद के लिए सत्य, शिव तथा सुन्दर का अर्थ जानना अभीष्ट नहीं है अपितु अभीष्ट यह है कि मानव में इनके प्रति जागरुकता पैदा की जाए, जिससे कि उन्हें आत्मज्ञान हो। तभी वह कतिपय उपयुक्त जीवन मूल्यों का विकास कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति का इनके लिए अर्थ तथा महत्त्व पृथक्-पृथक होता है। इसलिए समस्त मानव-जाति में इस ब्रह्माण्ड, सार्वभौमिक सत्ता तथा जीवन एवं मृत्यु के प्रति एक जैसा सिद्धान्त, जैसाकि अन्य दार्शनिक विचारधाराएँ कर रही हैं, विकसित नहीं किया जा सकता। जीवन का अन्तिम तथा चरम अर्थ क्या है? इसका समग्र रुप में कोई अन्तर नहीं दिया जा सकता। संक्षेप में अस्तित्ववाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नांकित है -

- सत्य, शिव तथा सुन्दर का मूल्य व्यक्ति की आन्तरिक इच्छा-शक्ति पर निर्भर होता है।
- सभी प्रकार का ज्ञान तथा सत्य व्यक्तिगत तथा विषयगत होता है।
- सत्य, शिव तथा सुन्दर का कोई अन्तिम एवं सर्वग्राह्य उत्तर नहीं दिया जा सकता।
- पसन्दों के आधार पर अपने अस्तित्व का आधारभूत यथार्थ के द्वारा व्यक्ति अपने अनोखे स्व का निर्माण करता है।
- शिव तथा सुन्दर का अर्थ तथा मूल्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए पृथक्-पृथक् होता है।
- जब तक व्यक्ति इनके अर्थ तथा मूल्य से अपने को सम्बन्धित नहीं कर लेता, तब तक उसका जीवन सार्थक नहीं है।
- व्यक्ति के स्व के द्वारा ही उसके अस्तित्व का निर्माण होता है।
- आत्मज्ञान के द्वारा व्यक्ति अपने दृष्टिकोण के अनुसार सत्य, शिव तथा सुन्दर की पहचान कर सकता है। अस्तित्ववादी विचारधारा के अनुसार अध्यापक का कार्य बच्चों में आत्मज्ञान की इच्छा जगाना है।
- सत्य, शिव व सुन्दर का ज्ञान, व्यक्ति के इस उदासीन संसार में अपने व्यक्तिगत अस्तित्व की पहचान करने तथा संघर्ष द्वारा मनुष्यत्व का पूर्णता की ओर बढ़ना, यथार्थ के प्रति अन्तिम सम्पर्क मानवीय स्थिति द्वारा स्थापित करना।
- मनुष्य अपना निर्माण स्वयं करता है।

www.studyofeducation.com

अस्तित्ववाद की विशेषताएँ

अस्तित्ववाद की विशेषताएँ निम्नलिखित है

- **आदर्शवाद की आलोचना** अस्तित्ववाद आदर्शवाद के विरुद्ध विद्रोह के रूप में खड़ा हुआ है। अत: अस्तित्ववादी दार्शनिक आदर्शवाद के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं।
- **अन्तर्द्वन्द्व की समस्या** पर बल अन्य दर्शनों की तुलना में अस्तित्ववादी दर्शन अन्तर्द्वन्द्व की समस्याओं पर विशेष बल देते है। परम्परागत दर्शन इन समस्याओं को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। मानव की जगत से पृथकता और स्वयं अपने से पृथकता से ही दर्शन प्रारम्भ होता है।
- **प्रकृतिवाद की आलोचना** अस्तित्ववादी दार्शनिक एक ओर आदर्शवाद और दूसरी ओर उसके विपरीत दर्शन प्रकृतिवाद की भी आलोचना करते हैं।
- **निराशा से उत्पत्ति** हमारे चारों ओर का जगत कई संघर्षों और समस्याओं से भरा हुआ है, किन्तु सामान्य समझदार व्यक्ति इनसे समझौता करके जीवन जीता रहता है।
- **मानव व्यक्तित्व का महत्त्व** अस्तित्ववादी मानव व्यक्तित्व को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं और इसके सामने ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, जगत किसी को भी इतना अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। मानव व्यक्तित्व का मूल तत्त्व स्वतन्त्रता है।
- **वैज्ञानिक दर्शन की आलोचना** प्रत्ययवाद और प्रकृतिवाद के अतिरिक्त अस्तित्ववादी वैज्ञानिक दर्शन की आलोचना करते हैं। वास्तव में इन तीनों प्रकार के दर्शनों के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में ही अस्तित्ववाद का जन्म हुआ है।
- **आत्मनिष्ठा का महत्त्व** अस्तित्ववादी दार्शनिक कीगार्ड ने कहा था कि सत्य आत्मनिष्ठता है। जबकि विज्ञान से प्रभावित दार्शनिकों ने आत्मनिष्ठता और व्यक्तिगत अनुभव को विशेष महत्त्वपूर्ण माना है।

www.studiestoday.com

अस्तित्ववाद एवं शिक्षा

-
- शिक्षा मानव-उत्थान का प्रमुख साधन है, किन्तु यह शिक्षा के सामाजिक स्वरुप का समर्थन नहीं करता।
- अस्तित्ववादी शिक्षा बाल केन्द्रित है। वह बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करती है। शिक्षक बालक को स्वयं अपने को जानने और अपने अस्तित्व को पहचानने में सहायता करनी चाहिए।
- अस्तित्ववाद व्यक्तिनिष्ठ शिक्षा का समर्थक है।
- शिक्षण की विधियाँ पूरी तरह व्यक्तिनिष्ठ हों।
- शिक्षा सत्यम्-शिवम्-सुन्दम् का उत्तर छात्रों को न दें, अपितु उन्हें इनका स्वयं उत्तर तलाश करने हेतु प्रेरित करें।

- अस्तित्ववादियों का तो केवल यही कहना है कि पाठ्यक्रम में विज्ञान के अलावा मानविकी अध्ययन, नीतिशास्त्र और धर्म को भी स्थान मिलना चाहिए।
- विद्यालय-व्यवस्था ऐसी हो जो छात्रों को इतनी पर्याप्त स्वतन्त्रता दे कि वे अपनी पसन्दों का विकास कर सकें, अपने जीवन को समझ सकें तथा अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्रता से संघर्ष कर सकें।
- शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वे छात्र को इतनी पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान करें कि वे अपनी व्यक्तिनिष्ठ पसन्दों का विकास कर सकें।
- अध्यापक एक ऐसी शैक्षिक परिस्थिति उत्पन्न करता है, जिसमें विद्यार्थी अपने से सम्पर्क कर सकता है और प्रतिचेतन होकर आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है।
- अस्तित्ववाद शिक्षा के व्यक्तिनिष्ठ उद्देश्यों का समर्थन तथा प्रतिपादन करता है।
- दर्शन की अस्तित्ववादी विचारधारा आदर्शवाद के विरुद्ध विद्रोह के रूप में खड़ी हुई है।
- अस्तित्ववाद का एक ज्ञानमीमांसात्मक सिद्धान्त ज्ञान भावात्मक तथा अन्तर्वैयक्तिक है।
- अस्तित्ववादी दर्शन आत्मनिष्ठता, अन्तर्द्वन्द्व व एकाकीपन जैसे मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित है।
- 'द रिपब्लिक' पुस्तक के लेखक प्लेटो थे।
- अस्तित्ववाद की अपेक्षा अस्तित्व, सार में अधिक विश्वास रखता है।
- साहित्य का नोबेल पुरस्कार अस्तित्ववादी दार्शनिक ज्यो पॉल सात्रे को प्रदान किया गया।

अस्तित्ववाद एवं शिक्षा के उद्देश्य

प्रो. आडे के अनुसार अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित अवधारणा पर आधारित है

- मनुष्य स्वतन्त्र है, उसकी नियति प्रागनुभूत नहीं है। वह जो बनना चाहे, उसके लिए स्वतन्त्र है।
- मनुष्य अपने कृत्यों का चयन करने वाला अभिकरण है, उसे चयन की स्वतन्त्रता है।

इस आधार पर शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं

- **स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास** चयन करने वाला अभिकरण होने के नाते चयन प्रक्रिया में व्यक्ति को समग्र रूप से अन्तःग्रसित होना पड़ता है। अतः शिक्षा का यह उद्देश्य है कि वह बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करें। 6
- **व्यक्तिगत गुणों व मूल्यों का विकास** अस्तित्ववादी मानते हैं कि मनुष्य स्वयं ही अपने गुणों एवं मूल्यों को निर्धारित करता है। अतः शिक्षा को बालक में व्यक्तिगत गुणों एवं मूल्यों के विकास की योग्यता विकसित करनी चाहिए।

www.studyofeducation.com

- **मानव में अहं व अभिलाषा का विकास** करना इस सम्बन्ध में प्रो. मार्टिन हाइडैगर का कथन है "सच्चा व्यक्तिगत अस्तित्व ऊपर से थोपे और अन्दर से इच्छित किए गए अभिलाषाओं का संकलन है।' अत: अस्तित्ववाद यह मानता है कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की अहं भावना के साथ अभिलाषा का भी विकास करना होना चाहिए।
- **व्यक्तिगत ज्ञान या अन्तर्ज्ञान का विकास** करना इस सम्बन्ध में प्रो. बिआउवर का मानना है कि "मानव एक पत्थर या पौधा नहीं है।" अस्तित्ववादी यह मानते हैं कि मनुष्य अपनी बुद्धि और विवेक से कार्य करे। अत: अस्तित्ववादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत सहज ज्ञान या अन्तर्ज्ञान का विकास करना है तथा मानव को अपने कार्यों हेतु स्वयं निर्णय लेने में सहायता देना है।
- **वास्तविक जीवन हेतु तैयारी** मानव अस्तित्व जीवन में यातना एवं कष्ट सहकर ही रहते हैं। अतः अस्तित्ववादियों के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक को इस योग्य बनाना है कि वह भावी जीवन में आने वाले संघर्षों, कष्टों और यातनाओं को सहन कर सके जो उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन में आ सकते हैं।

अस्तित्ववादी शिक्षा में शिक्षक एवं शिक्षार्थी

अस्तित्ववाद में छात्र को विशेष महत्त्व दिया गया है। अस्तित्ववाद के अनुसार, विद्यार्थी एक मुक्त या निश्चित परिश्रमी एवं विचारशील प्राणी है। विद्यार्थियों की शिक्षा अलग-अलग प्रकार से उनकी योग्यता एवं व्यक्तित्व के अनुसार होनी चाहिए ताकि वह व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर अपनी स्वाभाविक रुचियों एवं गति के अनुसार आगे बढ़े। सभी बालकों को आगे बढ़ने के पर्याप्त अवसर दिए जाने चाहिए। सभी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

अस्तित्ववादी बालक के व्यक्तित्व में निम्न गुणों की परिकल्पना करते हैं
आत्मबोध, आत्मनिर्णय या आत्म नियन्त्रण शक्ति।
आत्मशुद्धि व आत्मकेन्द्रिता के गुण
विचारों एवं इच्छाओं को प्रकट करने की क्षमता
सौन्दर्य बोध की क्षमता
भावात्मक पक्ष की सुदृढ़ता
जीवनपर्यन्त ज्ञान की इच्छा विकसित करने की क्षमता
शिक्षक के साथ मृदु सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता

जैसा कि छात्र संकल्पना में स्पष्ट किया गया है कि अस्तित्ववाद स्वतन्त्रता में विश्वास करते हैं। इसी आधार पर अस्तित्ववादी मानते हैं कि अध्यापकों को स्वतन्त्र विचार करने वाला, स्वेच्छा से काम करने वाला, स्वतन्त्र मूल्यों को स्थापित करने वाला, आशावादी एवं व्यावहारिक होना चाहिए। अध्यापक में विद्यार्थी को उसके अनुकूल तैयार करने की क्षमता होनी चाहिए। शिक्षकों को अपने

www.studyofeducation.com

जीवन से प्राप्त वास्तविक अनुभवों का प्रयोग विद्यार्थियों के मार्गदर्शन हेतु किया जाना चाहिए तथा विद्यार्थियों को निजता की अनुभूति कराते हुए जीवन की सत्यता का बोध कराये। अस्तित्ववादी अनुभूति के माध्यम से विद्यार्थी के व्यक्तित्व का विकास करे।

इस प्रकार शिक्षक के उत्तरदायित्व बहुत से हैं, जिसके लिए उसके द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाने चाहिए

- वह विषय सामग्री के प्रस्तुतीकरण में विद्यार्थियों को उसे सत्य की खोज के लिए स्वतन्त्रता प्रदान करे।
- विद्यार्थियों में मस्तिष्क का स्वयं संचालक एवं नियन्त्रण की क्षमता विकसित करे।
- विद्यार्थियों का चरित्र गठन कर स्वयं सिद्ध सत्य मानने की क्षमता विद्यार्थियों को चयन करने की स्वतन्त्रता प्रदान करे।
- विद्यार्थियों को स्वयं की अनुभूति करने के अवसर प्रदान करे।

अस्तित्ववाद और पाठ्यक्रम

अस्तित्ववाद में व्यक्ति की वैयक्तिकता को विशेष महत्त्व दिया गया है अत: अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम में ऐसी विशेषताओं को महत्त्व दिया गया है, जिसमें मानव जीवन का अस्तित्व प्रधान हो। अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम को विशाल रखना चाहते हैं, जिससे उसमें सम्पूर्ण परिवेश (प्रकृति एवं जीवन) का अनुभव सम्मिलित हो।

www.studyofeducation.com

यह समाज विज्ञान को स्थान प्रदान करता है परन्तु फिर भी यह पक्ष विचारणीय रहता है कि इसके अध्ययन द्वारा विद्यार्थी को स्वयं के अस्तित्व का ज्ञान कराया जाए। अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम में कला, साहित्य, इतिहास, विज्ञान, भूगोल, संगीत, दर्शन, मनोविज्ञान तथा विभिन्न विषयों एवं क्रियाओं को विशेष स्थान दिया गया है। उनके अनुसार, कला, खेलकूद एवं व्यायाम को पाठ्यक्रम में यथोचित स्थान दिया जाना चाहिए क्योंकि यह विद्यार्थियों के अस्तित्व को स्पष्ट करते हुए संसार का ज्ञान देते हैं एवं स्वतन्त्र आत्मप्रकाशन का अवसर देते हैं।

अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षण विधियाँ

अस्तित्ववादियों के अनुसार व्यक्ति स्वयं अपने प्रयासों से ज्ञान प्राप्त करता है। जो भी तथ्य एवं धारणाएँ उसने ग्रहण की हैं उनका उत्तरदायित्व उसका स्वयं का है। अस्तित्ववादी सामूहिक विधि का विरोध करते हैं। वह शिक्षण प्रक्रिया को व्यक्ति केन्द्रित बनाने के प्रबल समर्थक हैं उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में व्यक्तिगत विभिन्नता पायी जाती है, जो उसे अन्यों से अलग करती है अत: सामूहिक विधि वैयक्तिक विकास बाधक है।

विद्यार्थियों को एकल शिक्षा दी जानी चाहिये, साथ ही अन्तर्ज्ञान विधि की परिस्थितियों से भी छात्रों को अवगत कराया जाना चाहिए। ये शिक्षण में प्रश्नोत्तरी विधि को महत्त्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि बालकों को अपने ज्ञान के प्रदर्शन के अवसर उपलब्ध कराती है। अस्तित्ववादी आत्मीकरण के साथ-साथ समस्या विधि के प्रयोग को भी महत्त्व देते हैं, क्योंकि इससे वैयक्तिक योग्यता एवं आत्मदर्शन के पर्याप्त अवसर मिलते हैं। व्यक्तिवादी विचारधारा के कारण अस्तित्ववाद का शिक्षा में विशेष प्रभाव है क्योंकि वर्तमान युग में व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है।

अस्तित्ववाद और अनुशासन

अस्तित्ववादी जॉन पाल किसी भी आचार-संहिता को स्वीकार नहीं करता। वह छात्र को पूर्णतया स्वतन्त्रता प्रदान करता है। ऐसी परिस्थिति में यह सम्भव है कि अधिकांश विद्यार्थी मनमानी करें, जिससे समाज में अव्यवस्था उत्पन्न जो जाए। सात्रे के अनुसार, वैयक्तिक चेतना द्वारा इस समस्या को आसानी से सुलझाया जा सकता है। स्वतन्त्रत चयन से वैयक्तिक निर्वाह की क्षमता उत्पन्न होती है।

व्यक्ति जो कुछ चयन करेगा, शुभ होगा। इसी प्रकार अशुभ चयन भी हो जाता है, तो उसका भोक्ता वह स्वयं होगा। इस प्रकार चयन से वैयक्तिक उत्तरदायित्व उत्पन्न होता है। इस उत्तरदायित्व भाव तथा स्वतन्त्रता से परे कोई नैतिक गुण नहीं होता। अतएव इससे ही अनुशासन द्वारा लाया जा सकता है।

www.studyofeducation.com

PART C - शिक्षा का समाजशास्त्रीय आधार

शिक्षा का समाजशास्त्रीय उपागम (Sociological Approaches of Education)

शिक्षा का समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की वह शाखा है जो शिक्षा तथा समाजशास्त्र का समन्वित स्वरुप है। शिक्षा का समाजशास्त्र इस बात पर बल देता है कि समाजशास्त्र के विभिन्न उद्देश्यों को शैक्षिक प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त किया जाए। शिक्षा का समाजशास्त्र सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था हेतु विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं का समूह प्रस्तुत करता है। इसके माध्यम से समाज की समस्याओं को प्रस्तुत किया जाता है। शिक्षा का समाजशास्त्र सामान्यत: शैक्षिक अनुसन्धानों का प्रयोग सामाजिक व्यवस्था में

करता है। यह स्वयं के अनुसन्धानों द्वारा शिक्षा की समस्याओं का समाधान खोजता है। यह शिक्षाशास्त्रियों के कार्यों का विश्लेषण सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में करता है। यह विद्यालयी व्यवस्था को भी एक सामाजिक संरचना के रुप में प्रस्तुत करता है। अतः शिक्षा के समाजशास्त्रीय पहलुओं का विस्तृत अध्ययन हेतु इसके विभिन्न उपागमों का अध्ययन आवश्यक होता है। शिक्षा का समाजशास्त्रीय उपागम निम्नलिखित है

प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया (Symbolic Interaction)

प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया पद की उत्पत्ति हरबर्ट ब्लूमर से जुड़ी है। वर्ष 1969 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'सिम्बॉलिक इण्टर एक्शनिज्म पर्सपेक्टिव एण्ड मेथड' में उन्होंने इस शब्द का प्रयोग किया। साधारणतः प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादी उपागम का अभिप्राय उस मानवीय क्रिया की व्याख्या से है जिसे सामाजिक अन्तःक्रिया से उत्पन्न मानकर अध्ययन किया जाता है।

मैक्स वेबर, जॉर्ज सिमेल, मीड, हरबर्ट ब्लूमर तथा पारसन्स का मत है कि सामाजिक सम्बन्धों को सामाजिक क्रिया अथवा अन्तःक्रिया द्वारा समझा जा सकता है। उल्लेखनीय है, कि प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया का विकास बहुत पुराना है। सबसे पहले जॉर्ज सिमेल ने परस्पर क्रिया के विश्लेषण पर बल दिया था। इसके बाद कई सिद्धान्तवेत्ताओं ने परस्पर क्रिया (अन्तःक्रियावाद) को विकसित किया।

परस्पर के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि एक व्यक्ति क्रिया करता है, और उसके प्रत्युत्तर में दूसरा व्यक्ति भी क्रिया करता है। यहाँ दोनों एक दूसरे से कुल्ल प्रभावित होते हैं। पारस्परिक रुप से प्रभावित करने की इसी क्रिया को परस्पर किया कहते हैं। समाजशास्त्र की दृष्टि से प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया, एक महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक उपागम है। इस उपागम का लम्बा ऐतिहासिक पक्ष रहा है। जर्मन समाजशास्त्री एवं अर्थशास्त्री मैक्स वेबर एवं अमेरिकन दर्शनशास्त्री जी. एच. मीड ने सामाजिक प्रक्रिया एवं मानव व्यवहार पर विशेष रुप से अध्ययन किया। हरबर्ट ब्लूमर, जिन्होंने एच. मीड के साथ मिलकर इस उपागम के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त दिए जो काफी प्रचलित हुए।

www.studyofeducation.com

- प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया के अन्तर्गत समाज का रुप संगठित होता है एवं समाज के सभी लोगों के मध्य परस्पर क्रियाएँ होती रहती हैं।
- इसमें सामाजिक प्रक्रिया के समष्टि संरचनात्मक पहलुओं की अपेक्षा सामाजिक जीवन के विभिन्न विषयों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।
- जहाँ भी सामाजिक प्रक्रिया में प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया द्वारा सामाजिक स्थिरता की स्थिति उत्पन्न होती है, लोगों के मध्य परस्पर लेने-देने की भावना प्रबल हो जाती है। सामाजिक सम्बन्धों का सृजन स्थिरता के द्वारा निर्धारित होता है।
- परस्पर क्रिया के समर्थक सामाजिक संस्थानों एवं सामाजिक संरचनात्मक सम्बन्धों के बजाय आमने-सामने के सम्बन्धों को विशेष रुप से प्रासंगिक मानते हैं।
- प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया के अन्तर्गत मानव को व्यवहारवादी समर्थक मानते हैं, जो अपनी क्रियाओं के माध्यम से लगातार दूसरे को प्रभावित करते हैं।

परस्पर क्रिया की परिभाषाएँ

प्रमुख विद्वानों द्वारा परस्पर क्रिया की दी गई परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

मार्विन ई ओल्सन के अनुसार, "प्रतीकात्मक सिद्धान्त का सम्बन्ध मुख्य रुप से उन विषयगत अर्थो से है, जो लोग अपने तथा दूसरों की क्रियाओं का लगाते हैं।

बर्नार्ड फिलिप्स के अनुसार, "प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया एक सैद्धान्तिक अभिमुखन है, जो परिस्थिति, भूमिका तथा आत्मबिम्ब की व्यक्ति द्वारा दी गई परिभाषा पर प्रकाश डालता है।'

हरबर्ट ब्लूमर के अनुसार, "प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया शब्द मनुष्यों में होने वाली विचित्र एवं विशिष्ट विशेषता वाली अन्तःक्रिया से सम्बन्धित है।" अर्थात् इन्होंने मनुष्यों के बीच होने वाली परस्पर क्रिया को ही इसकी विषयवस्तु के रुप में स्वीकार किया है।"

मार्निस-मेल्टजर के अनुसार, "प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया का सम्बन्ध मानवीय व्यवहार के आन्तरिक पक्ष से है।" .

परस्पर क्रिया की विशेषताएँ

परस्पर क्रिया की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

- विचार करने की क्षमता का निर्माण सामाजिक परस्पर क्रिया के कारण होता है।
- मानव में विचार करने की क्षमता के विकास में परस्पर क्रिया सहायक होती है।
- परस्पर क्रिया के दौरान लोग अर्थ व प्रतीकों को सीखते हैं।
- क्रियाओं व अन्तःक्रियाओं के प्रतिमानित जाल ही समूहों एवं समाजों का निर्माण करते हैं।
- ब्लूमर व कोहन का मत है कि सांकेतिक अन्तःक्रियावाद की विषय वस्तु यह है कि मानव मस्तिष्क के अन्दर क्या चल रहा है।

परस्पर क्रिया के प्रकार

परम्पर क्रिया तीन प्रकार की होती,

1. **व्यक्ति और व्यक्ति के बीच की पाणा क्रिया** इस पणा क्रिया में एक व्यक्ति की क्रिया तथा दुयो व्यक्ति के प्रतिक्रिया को शामिल किया जाता है। इसमें व्यक्ति अपने विचार, क्रियाविधि तथा प्राचाण से दूसर व्यक्ति को प्रभावित करते है।

www.studyofeducation.com

2. **व्यक्ति और समूह के बीच की परस्पर क्रिया** इस प्रकार की परम्पर क्रिया में व्यक्ति की क्रिया अथवा प्रतिक्रिया तथा यमूह की क्रिया अथवा प्रतिक्रिया शामिल होकर एक दूसरे को प्रभावित करती है। इसमें एक के परस्पर क्रिया का प्रभाव उस समूह के सभी व्यक्तियों का पड़ता है।

3. **समूह और समूह के बीच की परस्पर क्रिया** इसमें परम्पर क्रिया समूहों के स्तर पर होती है, जिसका प्रभाव व्यापक होता है। इसके माध्यम समाज में किसी भी प्रकार के बदलाव को देखा जा सकता है।

परस्पर क्रिया के सिद्धान्त

शिक्षा के समाजशास्त्र के अन्तर्गत प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया का विशेष महत्त्व है। परस्पर क्रिया सिद्धान्त को दो भागों में विभाजित किया जाता है

1. लेवलिंग थ्योरी इसके अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि स्वयं की पहचान कैसे करें एवं अन्य के साथ किस प्रकार का व्यवहार करे।

2. एक्सचेंज थ्योरी यह सिद्धान्त इस बात पर विशेष बल देता है कि सामाजिक कार्य, विभिन्न व्यक्तियों की रुचि का परिणाम है, जो सम्बन्धित लागत एवं लाभ द्वारा अर्जित की जाती है।

मीड का प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया सिद्धान्त

जी. एच. मीड प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद में 'स्व' को धुरो बनाकर प्रतीकात्मक सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं। इस सिद्धान्त की प्रकृति दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक अधिक है। समाजशास्त्रीय जी. एच. मीड ने अपनी पुस्तक 'माइण्ड सेल्फ एण्ड सोसायटी' में और मुझे के सिद्धान्त पर या Signifed Other के सिद्धान्त के आधार पर अपना सिद्धान्त विकसित किया। इन्होंने प्रमुख अवधारणाओं के आधार पर अपने मत का विस्तार किया।

स्व की अवधारणा

मीड ने स्व की अवधारणा को प्रतीकात्मक अन्तःक्रिया (परस्पर क्रिया) का केन्द्रीय आधार बनाया है, उनके अनुसार मनुष्य के अन्दर स्व होता है। कई बार हम स्व का अर्थ आत्मा से लेते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य का मस्तिष्क भले ही भ्रष्ट हो जाए, परन्तु स्व यानि आत्मा, परमात्मा का अंग जो सबसे ऊपर शुद्ध रुप में विद्यमान रहता है। इसी आत्मा को थोड़े बहुत फेर- -बदल के साथ मनोवैज्ञानिक पदावली में मीड स्व कहते हैं। यह स्व जन्म लेने के बाद अपने विशुद्ध रुप में होता है। यह स्व न तो हिन्दू होता है और न ही मुसलमान यह तो केवल सहजवृत्ति व आवेश से भरा होता है। मीड की स्व की अवधारणा में मनुष्य का 'स्व' बराबर सृजनात्मक और क्रियाशील होत है। स्व और समाज के मूल्यों, मानकों, भूमिकाओं आदि में अन्तःक्रिया हो है। दोनों में आदान-प्रदान

www.studyofeducation.com

होता है। स्व मूल्य, मानक आदि का निर्वाच करता है और इस तरह या तो समाज इन मानकों, मूल्यों आदि अस्वीकार करता है या आंशिक स्वीकार करता है। इसके बावजूद मीड स्व की अवधारणा को अवस्थाओं में बाँटकर देखा है।

स्व की अवस्थाएँ

मोड ने स्व को दो अवस्थाओं में देखा है। पहली अवस्था मै (1) की है। यह मैं सावयव का विशुद्ध रुप है। यह 'स्व' तो मनमाने ढंग से अपनी क्रियाएँ करता है। नवजात शिशु का स्व की दूसरी अवस्था मेरा मुझे (Mo) की है। इस अवस्था में 'स्व' दूसरे से सीखता है।

स्व परस्पर क्रिया

जब बाहरी समाज के मूल्य, मानक, भूमिका और प्रस्थिति स्व की दुनिया में पहुँचते हैं तब स्व और बाहर की दुनिया के बीच में वादअन्तःक्रियाएँ होती हैं और इसी अन्त:क्रिया की प्रक्रिया में अपने आप प्रतीकों और की सूची का आकार बढ़ता जाता है। इस प्रकार दूसरे लोगों अनुभवों को स्व लेता है और इस प्रकार स्व के अनुभवों का खजाना निरन्तर बढ़ता रहता है।

स्व का विकास

जैसे-जैसे बच्चा अपने विकास की अगली अवस्थाओं में पहुँचता है भूमिका ग्रहण करने की प्रक्रिया लम्बी और जटिल होने लगती है। इसके साथ ही प्रतीकों की सूची भी बड़ी हो जाती है। आगे चलकर व्यक्ति जिस समाज का सदस्य होता है। उसके मानक, मूल्य, भूमिकाएँ और प्रस्थितियों को अपनाने लगता है। स्व के विकास की यह कहानी वस्तुतः मीड के प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद का मूल आधार है।

www.studyofeducation.com

हरबर्ट ब्लूमर का प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया सिद्धान्त

हरबर्ट ब्लूमर का जीवन बहुआयामी था। वे मीड के शिष्य थे। प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया के सिद्धान्त के विकास के निम्न पहलू महत्त्वपूर्ण हैं

निर्वचन यह तो स्व ही निश्चित करता है कि अमुक दशा में उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए। अतः सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारकों की तुलना में व्यक्ति का स्व एक शक्तिशाली कारक है। वास्तविकता यह है कि कर्ता अपनी बाहरी दुनिया का स्वयं निर्वचन करता है।

प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद के तीन मौलिक आधार वाक्य प्रतीकात्मक निर्वचन में तीन मौलिक आधार वाक्य हैं, जिन्हें बराबर ध्यान में रखा जाना चाहिए

1. मनुष्य की क्रियाओं में अभिप्राय का महत्त्व है।

2. अभिप्राय के स्रोत।

3. निर्वचन में अभिप्राय की भूमिका।

विधि ब्लूमर ने प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद की विधि के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। उनके अनुसार, मनुष्य के व्यवहार को समझने के लिए आगमनात्मक उपागम सबसे अधिक उपयोगी है। उन्होंने कहा कि प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद एक ऐसा वैज्ञानिक उपागम है, जिसमें वह किसी समस्या को आनुभाविक दुनिया के साथ जोड़कर देखता है प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद प्रकार्यवादियों की तरह निगमनात्मक सिद्धान्त को नहीं अपनाता।

हरबर्ट ब्लूमर के प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्न है

- मानव समाज का निर्माण व्यक्तियों द्वारा होता है जिसमें स्व या यात्म होता है।
- वैयक्तिक क्रियाओं का निर्माण स्व की सूचना के आधार पर एक चरणबद्ध रुप में होता है।
- समूह या सामूहिक क्रियाएँ वैयक्तिक क्रियाओं के संयोग से ही होती है।
- मानव उन प्रतीकों के आधार पर अन्तःक्रिया करता है, जिनको वह विशिष्ट अर्थ प्रदान करता है।
- किसी भी प्रत्यय का अपना कोई वस्तुगत अर्थ नहीं होता है, वरन् प्रत्येक प्रत्यय का अर्थ सामाजिक अन्तःक्रिया की प्रक्रिया के दौरान विकसित होता है।
- सभी प्रतीकात्मक अर्थ समाज में चलने वाली व्याख्यात्मक प्रक्रिया को परिणाम है।

www.studyofeducation.com

अतः ब्लूमर समाज को अन्तःक्रिया की निरन्तर होने वाली प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया उपागम में सर्वेक्षण एवं साक्षात्कार में विशेष महत्त्व नहीं होता। इसमें प्रत्यक्ष भागीदारी को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसी से विचारों का परस्पर आपसी समन्वय होता है। विभिन्न गतिविधियों को जानने, समझने के लिए नियमित सम्पर्क एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

संरचनात्मक प्रकार्यवाद (Structural Functionalism)

संरचनात्मक प्रकार्यवाद या प्रकार्यवाद समाजशास्त्र की एक प्रमुख अवधारणा है। इस प्रकार्यवादी सोच के विचार को विकसित करने वाले विचारकों में दुखीम (1858-1917) तथा टॉलकाट पार्सन्स (1902-1979) का नाम उल्लेखनीय है। इस सिंद्धान्त का अमेरिकी समाजशास्त्रियों के नजर में विशेष स्थान था।

प्रकार्यवादी सिद्धान्त के समर्थक विचारक यह मानते हैं कि समाज की क्रियाएँ व्यवस्थित तरीके से चलती है और इसलिए यह समाज को एक व्यवस्था के रूप में देखते हैं। इनका मानना है कि सामाजिक व्यवस्था को व्यवस्थित रुप से चलाए रखने में विभिन्न तत्त्वों के बीच आत्मनिर्भरता पाई जाती है।

अतः समाज के व्यवस्थित स्वरूप को बनाए रखने में विभिन्न समूहों तथा संस्थानों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। उल्लेखनीय है, कि समाजशास्त्र में प्रकार्यवादी सिद्धान्त का जनक इमाइल दुर्थीम को माना जाता है। इन्होंने इस सन्दर्भ में बताया है कि समाज में एकता बनाए रखने में धर्म, नैतिक आधार प्रदान करते हैं, क्योंकि धर्म नैतिक मूल्य के माध्यम से समाज के एकांकी स्वरुप को प्रदान करते हैं। अतः प्रकार्यवाद को समझना महत्त्वपूर्ण है।

प्रकार्यवाद की परिभाषाएँ

विद्वानों द्वारा दी गई प्रकार्यवाद की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

- रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, "प्रकार्य एक आंशिक क्रिया द्वारा उस सम्पूर्ण क्रिया को दिया जाने वाला योगदान है, जिसका कि वह एक भाग है।"
- मर्टन के अनुसार, "प्रकार्य वे अवलोकित परिणाम हैं, जो कि सामाजिक व्यवस्था के अनुकूलन या सामंजस्य को बढ़ाते हैं।"
- ब्राउन ने प्रकार्य को सम्पूर्ण के अनुरक्षण और कल्याण के अंश के योगदान के रूप में परिभाषित किया है।
- मैलिनोवस्की ने प्रकार्यवाद को व्यक्तिवादी प्रकार्य कहा है।
- सांस्कृतिक तत्त्वों के प्रकार्य पर अत्यधिक बल दिया है।
- डेविस के अनुसार, "समाज में आज जो कुछ भी है, उसका तीन चौथाई भाग प्रकार्यवाद है।"
- दुखीभ के अनुसार, "समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति जिन गतिविधियों द्वारा होती है, उन्हें ही प्रकार्य कहते हैं।"

www.studyofeducation.com

प्रकार्यवाद की विशेषताएँ

- प्रकार्य का सम्बन्ध सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली इकाइयों से है।
- सभी प्रकार्य नहीं हैं, केवल उन्हीं कार्यों को प्रकार्य कहा जाता है, जो समाज द्वारा अपेक्षित होते हैं।
- प्रत्येक प्रकार्य का कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य होता है। प्रकार्य का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।
- प्रकार्य का प्रयोग सदैव लाभदायक या वांछनीय नहीं होता है।
- प्रकार्य केवल क्रिया ही नहीं, बल्कि समस्त क्रियाओं का योग है।
- प्रकार्य की परिभाषा मनुष्य के शरीर के आधार पर की जा सकती है।

- प्रकार्य एक जटिल अवधारणा है, क्योंकि यह देखी नहीं जा सकती।
- यह गतिशील अवधारणा है।
- समाज में प्रकार्यों की संख्या तय नहीं होती है।
- कभी-कभी प्रकार्य स्पष्ट एवं प्रकट होते हैं, किन्तु कभी-कभी अप्रकट भी होते हैं।
- प्रकार्य का सम्बन्ध इकाइयों द्वारा समाज को दिए जाने वाले सकारात्मक योगदान से है।

दुर्थीम का प्रकार्यवाद (Durkheim's Functionalism)

समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद (Functionalism) का प्रारम्भ स्पेन्सर से माना जाता है, किन्तु इसे वैज्ञानिक रूप से प्रतिष्ठित करने का श्रेय दुखीम को है। उन्होंने अपनी रचना "द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसायटी" तथा "द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड' में प्रकार्यवाद की विवेचना की है। इन्होंने समाजशास्त्र में विश्लेषण की विधि को प्रकार्यवाद का नाम दिया है। दुर्थीम के अनुसार, प्रकार्य का अर्थ "किसी भी इकाई द्वारा उससे सम्बन्धित व्यवस्था को बनाए रखने में दिया जाने वाला योगदान है।"

www.studyofeducation.com

दुर्थीम के कथनानुसार, प्रकार्यात्मक पद्धति का उद्देश्य किसी भी समूह, समाज के संगठन और संस्कृति की इकाइयों को ज्ञात कर उनके प्रकार्यों को बताना है। दुखीम का मत है कि प्रकार्य शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है

1. इसका प्रयोग जीवन देने वाली गतिविधियों की व्यवस्था के रूप में किया जाता है, जिसके परिणामों से कोई तात्पर्य नहीं रहता।

2. दूसरा प्रयोग सम्पूर्ण व्यवस्था में उसकी आवश्यकता के रूप में किया जाता है।

दुर्थीम ने समाज को एक जीवधारी की भाँति माना है। जिस प्रकार शरीर को ने जीवित रखने के लिए कुछ आवश्यकताओं; जैसे- हवा पानी की पूर्ति आवश्यक है। समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति जिन गतिविधियों के द्वारा होती है, उन्हें ही वह उनका प्रकार्य कहता है। परिवार, धर्म नातेदारी, राजनीतिक संगठन तथा आर्थिक संगठन समाज व्यवस्था को चलाने में अपना जो योगदान देते हैं, वही उनका प्रकार्य है। दुीम ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रकार्यों की अवधारणा विकसित की।

प्रकार्यवाद पर स्पेन्सर का प्रभाव

दुखीम का प्रकार्यवाद स्पेन्सर के प्रकार्यवाद एवं सावयववाद से प्रभावित था। इन्होंने सामाजिक व्यवस्था की इकाई या अंग द्वारा सम्पूर्ण सामाजिक मावाणा को चलाने में उसके द्वारा किए जाने वाले योगदान को ही प्रकार्य पाना।

स्पेन्सर के अनुसार, "प्रकार्य किसी इकाई का यह अवलोकित परिणाम है, जो व्यवस्था के अनुकूलन या समायोजन में योगदान देता है।" प्रकार्यवाद के मंत्र दुखीम द्वारा दिए गए योगदान को ही रेडक्लिफ पाटन, मैलिलीवप्की, मर्टन, पारसन्स एवं लेवी स्ट्रॉस ने आगे बढ़ाया।

प्रकार्यवाद सम्बन्धी अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य

संरचनात्मक प्रकार्यवाद समर्थित विद्वानों का मानना है कि समाज सामाजिक परम्पराओं एवं उसके महत्त्वों के मध्य प्रासंगिक भूमिका निभाता है। इस सिद्धान्त के समर्थित विद्वानों का मानना है कि समाज मानव शरीर के समान है, जिसका प्रत्येक भाग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये सभी भाग जीवित रहने हेतु एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। शिक्षा एक ऐसी प्रासंगिक सामाजिक संस्थान का अभिरुप है, जिसे मानव अंग रुपी माना जाता है, समाज स्वस्थ रहता है। सामाजिक स्वास्थ्य का तात्पर्य समाज को शिक्षित करने से सम्बन्धित है। अपने समाज के नैतिक मूल्यों के विकास के लिए सभी लोग इस तथ्य को स्वीकार करते हैं।

- संरचनात्मक प्रकार्यवाद महत्त्वपूर्ण संस्थानों जैसे शिक्षा के लक्ष्य को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। ऐसे विद्वानों का मानना है कि बालकों को समाजीकृत करने में शिक्षा की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। शिक्षा से ही बालकों में नैतिक विकास समृद्ध होता है।
- संरचनात्मक प्रकार्यवाद के अनुसार समाजीकरण वह प्रक्रिया जिसके द्वारा नई पीढ़ी, ज्ञान, व्यवहार एवं प्रभावी नागरिक बनने हेतु आवश्यक मूल्यों को सीखते हैं।
- शिक्षा एक पृथक् प्रकार्यों को पूर्ण करता है, शिक्षा को रोजगार के दृष्टिकोण से देखा जाता है। जब विविध कार्यक्षेत्र रिक्त हो जाते हैं, तो उसे योग्य लोगों द्वारा भरा जाना अनिवार्य होता है। अतः शिक्षा के अलग-अलग उद्देश्य हो सकते हैं। संरचनात्मक प्रकार्यवाद शिक्षा के विविध उपयोगों पर विशेष अध्ययन करता है।
- कुछ लोग अधिक महत्त्वाकांक्षी होते हैं। इसके लिए वे विशेष प्रशिक्षण हासिल करते हैं ताकि वे उच्च वेतन प्राप्त कर सकें। ऐसे लोग जो कम उपलब्धि हासिल करते हैं, उनकी मांग भी कम होती है। रोजगार के अभाव में उन्हें वेतन नहीं मिलता। ऐसे लोग बिल्कुल ही महत्त्वाकांक्षी नहीं होते।
- औपचारिक पाठ्यक्रम में लक्ष्य प्राप्ति की बातें निहित होती हैं, जिसे मूलतः छिपे हुए पाठ्यक्रम के द्वारा प्राप्त किया जाता है। छिपे हुए पाठ्यक्रम अधिक प्रभावशाली होते हैं। सामाजिक विकास में यह भी प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- संरचनात्मक प्रकार्यवाद उपागम के अन्तर्गत छात्र उन मूल्यों को सीखता है, जो स्कूलों में अपने व्यवहार को नियमित रुप से सीखता है। वे धीरे-धीरे ऐसे व्यवहार को अपनाते हैं।

आलोचनात्मक पहलू

इस उपागम की कुछ विद्वानों ने आलोचना भी की। सेनेट एवं कोब्ब महोदय ने इसकी आलोचना करते हुए इसे अव्यावहारिक बताया। इनका मानना था कि कोई व्यक्ति स्वयं कैसे तय कर सकता है कि ईनाम एक धोखे के समान है। सार्जेण्ट महोदय का मानना है कि विद्यालयी प्रक्रिया की निरन्तरता सामाजिक गतिविधियों के पक्ष में समाहित हो जाती है।

www.studyineducation.com

जैकब महोदय का मानना है कि मध्यम व संस्कृति की यह पहचान होती है कि स्कूलो में दी जाने वाली शिक्षा के विपरीत काम करने वाले बच्चे घरों में शिक्षा प्राप्त कर अनुभव की प्राप्ति करते है। केवल स्कूलों में ही शिक्षा प्राप्त नही की आती है, बल्कि स्कूलों के बाहर भी ज्ञान अर्जित कर रोजगार के स्रोत खोजे जा सकते है।

संघर्ष सिद्धान्त (Conflict Theory)

संघर्ष सिद्धान्त को संरचनात्मक प्रकार्यवाद के प्रतिकूल माना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज विभिन्न आकांक्षाओं का सामाजिक समूह है। जहाँ जीवन परिवर्तन के विभिन्न आयाम विद्यमान होते हैं तथा विभिन्न सामाजिक सम्मान प्राप्त करते हैं। संघर्ष सिद्धान्त की दृष्टि से समाज के सन्दर्भ में, यहाँ मुख्य रुप से शोषण, दमन, अत्याचार का प्रभाव महत्त्वपूर्ण है। साम्यवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक कार्ल मार्क्स के विचारों से प्रभावित अनेक सामाजिक सिद्धान्त को संघर्ष सिद्धान्त से अभिप्रेरित बताया जाता है। मार्क्सवादी विचारधारा संघर्ष उपागम की ऐतिहासिक भौतिकवादी विचारधाराओं पर, विशेष रुप से बल दिया है। यह सिद्धान्त शक्ति की विविधता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करता है। यह सिद्धान्त मुख्य रुप से मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है, परन्तु प्रतिक्रिया के रुप में यह प्रकार्यवाद एवं सकारात्मक विधि से भी आलोचनात्मक सिद्धान्त के साथ सम्मिलित हो सकता है।

कुछ संघर्षवादी सिद्धान्तों के समर्थक मैक्स वेबर के अनुसार, शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण होना चाहिए। शिक्षा से सम्बन्धित गतिविधियों के संचालन में राज्य प्रभावी भूमिका निभाता है, क्योंकि राज्य के पास शक्तियाँ होती हैं। इन शक्तियों का मुख्य उद्देश्य मौजूदा असमानता के स्थान पर सन्तुलित व्यवस्था को स्थापित करना है। ईसा से 205 वर्ष पूर्व पोलिवियस ने अपने संघर्ष सम्बन्धी सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। उनके अनुसार पशुओं की भाँति मनुष्यों में भी झुण्ड में रहने एवं संघर्ष करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। शासक वर्ग जब बिल्कुल ही अन्यायी और अत्याचारी हो जाता है, तो शासित वर्ग उसे संघर्ष के द्वारा निर्मूल करने हेतु संगठित होता है|

इस प्रकार स्पष्ट है कि संघर्ष से सम्बन्धित सिद्धान्त का क्रम बहुत पुराना है। लेकिन डार्विन की उद्विकासीय सोच के पश्चात् हरबर्ट स्पेन्सर ने उसे एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का प्रयत्न किया। फलस्वरुप जीवित रहने के लिए संघर्ष का सिद्धान्त जिसका आधार प्राणिशास्त्रीय है, उभरकर सामने आया।

19वीं शताब्दी में जिन संघर्ष सम्बन्धी सिद्धान्तों ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया उनमें **हीगल का दार्शनिक सिद्धान्त एवं कार्ल मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त** विशेष रुप से उल्लेखनीय है।

संघर्ष की परिभाषाएँ - संघर्ष की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

www.studyeducation.com

- **मैकाइवर एवं पेज** के अनुसार, "सामाजिक संघर्ष में ही सब क्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा मनुष्य किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे के विरुद्ध कार्य करते हैं।"
- **मैकाइवर** के अनुसार, "संघर्ष सहयोग से एक क्रॉस पर कटता है।"
- **डेविस** के अनुसार, "प्रतिस्पर्धा के परिवर्तित रुप को संघर्ष कहा जाता है।"
- **कूले** के अनुसार, "संघर्ष और सहयोग पृथक् तत्त्व नहीं हैं, बल्कि वह एक ही प्रक्रिया के विभिन्न चरण हैं, जिनमें दोनों तत्त्वों का बराबर समावेश होता है।"

संघर्ष की विशेषताएँ - संघर्ष की विशेषताएँ निम्न हैं

- दो या दो से अधिक व्यक्तियों या समूहों का होना।
- संघर्ष चेतन प्रक्रिया है।
- यह अनिरन्तर प्रक्रिया है।
- यह वैयक्तिक, सार्वभौमिक प्रक्रिया है।
- इसमें संघर्ष में सम्पर्क होना आवश्यक है।
- इसमें नियमों का पालन नहीं किया जाता है।
- इसमें संघर्ष में हिंसा महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

संघर्ष के कारण

- **माल्थस** ने जीवन जीने के साधनों में कमी को संघर्ष का मुख्य कारण माना है।
- **डार्विन** बलशाली जीवन का सिद्धान्त संघर्ष का मुख्य कारण है।
- **फ्रायड** मनुष्य में जन्मजात हिंसा या संघर्ष की प्रवृत्ति पाई जाती है।

www.studyofeducation.com

संघर्ष के प्रकार - विभिन्न विद्वानों के अनुसार संघर्ष के प्रमुख प्रकार निम्न है

- मैकाइवर एवं पेज ने संघर्ष के दो प्रकार बताए हैं-प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्षा
- किंग्सले डेविस ने संघर्ष के दो प्रकार बताए हैं-आंशिक तथा पूर्ण सिमेल तथा कोजर ने संघर्ष के दो प्रकार बताए हैं-वास्तविक तथा अवास्तविक।
- कोजर ने संघर्ष के दो प्रकार बताए हैं-आन्तरिक तथा बाह्य।
-

संघर्ष के स्वरुप

- गिलिन एवं गिलिन ने संघर्ष के पाँच प्रकार के स्वरुप बताए हैं-वैयक्तिक, प्रजाति, वर्ग, राजनीतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय।
- सिमेल ने संघर्ष के चार प्रकार के स्वरुप बताए हैं-युद्ध, कलह, मुकदमेबाजी तथा अवैयक्तिक आदर्श नियमों के कारण संघर्ष।

संघर्ष के परिणाम

- अन्तःसमूह में एकता
- समूह की एकता का भंग होना
- जन एवं धन की हानि
- स्वस्थ समाज का विकास सम्भव नहीं।
- उच्चता व अधीनता का उद्भव।
- संघर्ष के बाद व्यवस्थापन की प्रक्रिया का प्रारम्भ।

मार्क्स का संघर्ष सिद्धान्त

- मार्क्स ने बताया है कि पुराने समाज के अन्त तथा नए समाज के जन्म के लिए संघर्ष आवश्यक है।
- मार्क्स हमेशा सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना पर बल देते हैं।
- इन्होंने अपनी पुस्तक कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में कहा है कि "श्रमिकों तुम उठो तुम्हें अपने पैरों की बेड़ियों को खोने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं खोना है और तुम्हें पाना सब कुछ है और तुम पूँजीवाद का अन्त कर दो।"
- मार्क्स वर्ग-संघर्ष को इतिहास को समझने की कुंजी मानते हैं।

www.studyeducation.com

मार्क्स का दर्शन हीगल के बिल्कुल विपरीत है। मार्क्स के अनुसार, पूँजी वह धन है, जो श्रमिकों के शोषण करने के उपयोग में लाया जाता है। इस शोषण को ही वर्ग-संघर्ष का बीजारोपण माना गया है। मार्क्स ने श्रमिक वर्ग को ही स्थायी रूप में पूँजीवादी वर्ग का जन्मदाता माना है तथा मार्क्स ने शोषण को संघर्ष का प्रमुख कारण माना है। मार्क्स वर्ग-संघर्ष को पूरे समाज में मानते हैं इस विचार का विरोध करते हुए डेहरेनडॉर्फ ने कहा कि वर्ग-संघर्ष पूरे समाज में कभी भी नही हो सकता, बल्कि समाज के अन्तर्गत पाए जाने वाले छोटे-छोटे समूहों के बीच होता है।

इस प्रकार मार्क्स का कहना है कि स्वयं पूँजीवादी व्यवस्था में ही तीव्रतम वर्ग संघर्ष और पूंजीवाद के विनाश के बीज छिपे हुए है। मार्क्स के अनुसार, पूँजीवादी व्यवस्था में दिन-प्रतिदिन श्रमिक वर्ग में निर्धनता, भुखमरी और बेरोजगारी बढ़ती जाएगी और उनकी दशा उत्तरोत्तर दयनीय होती जाएगी। मार्क्स के अनुसार पुराने समाज के अन्त और नए समाज के जन्म के लिए क्रान्ति अत्यन्त आवश्यक है। अपने स्वार्थों से परिवृत्त पूँजीपति संसदीय नियमों द्वारा अपने एकाधिकार का कभी भी परित्याग नहीं करेंगे अर्थात्

शान्तिपूर्ण ढंग से उन्हें हराया नहीं जा सकेमा। उसके लिए क्रान्ति ही एक सामान्य उपाय है। इस क्रान्ति का परिणाम होगा पूँजीवादी वर्ग का विनाश और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना।

डेहरेनडॉर्फ का संघर्ष सिद्धान्त

डेहरेनडॉर्फ का संघर्ष सिद्धान्त मूलत: सत्ता के सम्बन्धों पर आधारित है। सत्ता संरचना जो प्रत्येक सामाजिक संगठन का अभिन्न भाग होती है, अनिवार्य रुप स्वार्थ समूह को संगठित करती है और उन्हें निश्चित स्वरुप प्रदान करता है और इस रुप में संघर्ष की सम्भावनाओं को जन्म देती है। वास्तव में समाज में सत्ता का बँटवारा समान नहीं होता इसलिए संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

इस प्रकार डेहरेनडॉर्फ का संघर्ष सिद्धान्त मूलभूत रुप से शक्ति और सत्ता के सिद्धान्त पर आधारित है। डेहरेनडॉर्फ ने शक्ति की असमानता को ही संघर्ष का कारण माना है। डेहरेनडॉर्फ ने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त की आलोचना की है। डेहरेनडॉर्फ ने भी संघर्ष को समन्वयकारी तथा संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टि से देखा है।

डेहरेनडॉर्फ का संघर्ष सिद्धान्त जबरदस्ती का/के सिद्धान्त पर आधारित है। डेहरेनडॉर्फ ने संक्षेप में अपने सिद्धान्त को इस प्रकार प्रस्तुत किया है|

- किसी भी आदेशसूचक समन्वित समाज के लोगों में वास्तविक समाज के बारे में जितनी अधिक चेतना होगी उतनी ही अधिक उनकी संघर्ष करने की सम्भावना होगी।
- जितनी आर्थिक तकनीकी राजनैतिक और सामाजिक दशाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति संगठन में होगी उतना ही संघर्ष अधिक तीव्र होगा।
- अधि-कोटि और अधीनस्थ समूहों में जितनी कम गतिशीलता होगी संघर्ष उतना ही तीव्र होगा।
- संघर्ष जितना अधिक गहरा, सघन और हिंसात्मक होगा, उतना ही अधिक सामाजिक परिवर्तन होगा।

कोजर का संघर्ष सिद्धान्त

सामाजिक सिद्धान्त में लुईस कोजर का सिद्धान्त विशेष रुप से उल्लेखनीय है। कोजर अपने सिद्धान्त को संघर्ष का प्रकार्यवाद कहते हैं, क्योंकि उन्होंने सामाजिक संघर्ष के प्रकार्यात्मक पक्ष पर विशेष बल दिया है और यह बताया कि सामाजिक संघर्ष केवल विघटनात्मक परिणाम ही उत्पन्न करता है, यह धारणा गलत है। यथार्थ में सामाजिक संघर्ष का संगठनात्मक सिद्धान्त प्रकार्यों पर आधारित पाया जाता है।

www.studyoneducation.com

कोजर के अनुसार, "सामाजिक संघर्ष के दो सम्भावित परिणाम हो सकते हैं एक तो संगठनात्मक परिणाम और दूसरा विघटनात्मक परिणाम।" सामाजिक संघर्ष के संगठनात्मक परिणाम उस अवस्था में प्रकट होते हैं जबकि संघर्ष कर रहे विरोधी पक्षों की एक समान आस्था समाज के कुछ आधारभूत मूल्यों में होती है। उदाहरण के लिए, लोकतन्त्र के कुछ आधारभूत मूल्यों के आधार पर ही शासक दल और विरोधी दल संसद या विधानसभा के अन्दर या बाहा एक-दूसरे से टकराते हैं। परन्तु इस प्रकार के टकराव में हानि के स्थान पा लाभ ही होता है, क्योंकि टकराव, आलोचना के माध्यम से दोनों ही पलों को अपनी अपनी कमियों का ज्ञान होता है।

कोजर ने संघर्ष को दो भागों में विभाजित किया है

1. **यथार्थवादी संघर्ष** वे संघर्ष जो कि कुछ लक्ष्यों के आधार पर कुछ परिणामों को प्राप्त करने के लिए उत्पन्न होते हैं अथवा विफल हुए लक्ष्यों को पुनः प्राप्त करने की ओर निर्देशित होते हैं उन्हें यथार्थवादी संघर्ष कहते हैं।

2. **अयथार्थवादी संघर्ष** इसके विपरीत अयथार्थवादी संघर्ष में न तो लक्ष्य स्पष्ट होता है और न ही किन्हीं विशिष्ट परिणामों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया जाता है। ऐसे संघर्षों में परिणाम महत्त्वपूर्ण नहीं होते, इनमें स्वयं विरोधी पक्ष पर प्रहार किया जाता है। अत: जब संघर्ष का लक्ष्य विरोधी पक्ष को हानि पहुँचाना हो, तो ऐसे संघर्ष को अयथार्थवादी संघर्ष कहते हैं, क्योकि यह यथार्थता से दूर होता है।

कॉलिन्स का संघर्ष सिद्धान्त

अमेरिकन समाजशास्त्री रेण्डाल कॉलिन्स ने अपनी पुस्तक 'कॉनफ्लिक्ट सोशियोलॉजी टुवर्ड एन एक्सप्लेनेटरी साइंस' में संघर्ष सिद्धान्त सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त किए हैं। कॉलिन्स परम्परागत रुप से द्वन्द्वात्मक संघर्ववादी सिद्धान्त को नहीं मानते। उन्होंने बताया है कि मनुष्यों में समाजीकरण का गुण पाया जाता है, जिनका समाजीकरण नहीं होता वह संघर्षवाद में विश्वास करते हैं।

कॉलिन्स के अनुसार, "मनुष्यों में सामाजिकता का गुण पाया जाता है, लेकिन वे संघर्ष प्रवृत्त प्राणी हैं। संघर्ष का प्रमुख आधार हिंसात्मक बल प्रयोग है। प्रत्येक समाज में इच्छित वस्तुओं; जैसे-प्रतिष्ठा, सम्पत्ति का असमान वितरण पाया जाता है। यह असमानता समाज को श्रेणी संस्थाओं में बाँट देती है।

सामाजिक संस्थाओं की संकल्पना (Concept of Social Institutions)

सामाजिक संस्थाएँ भी राज्य की तरह समाज के प्रत्येक व्यक्ति व परिवार के सदस्यों को प्रतिबन्धित, नियन्त्रित, दण्डित तथा पुरस्कृत करती है, जिससे परिवार, समाज का संचालन सुव्यवस्थित होने के साथ-साथ उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है। इसके साथ ही सामाजिक संस्थाओं के अनुशासन का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का प्रमुख दायित्व होता है। इसी की देन है कि समाज के

www.studyofeducation.com

प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से परस्पर क्रिया कर प्रेरित होते रहते हैं, जिसका प्रभाव शिक्षा के सन्दर्भ में भी देखा जा सकता है, क्योंकि इसी संस्थाओं के दायित्वों के रुप में शिक्षा सम्बन्धी पारिवारिक दायित्व तथा सामाजिक दायित्व को देखा जा सकता है।

इस प्रकार सामाजिक संस्थाएँ एवं माध्यम दिशा-निर्देश तथा अनुशासन का संग्रहालय होती है, जहाँ व्यक्ति का विकास होता है।

बालकों के समाजीकरण में सामाजिक संस्थाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जन्म के समय बालक सामाजिक गतिविधियों से बिल्कुल अनजान होता है, परन्तु जैसे-जैसे वह समाज एवं अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है, विभिन्न सामाजिक गतिविधियों में हिस्सा लेता है वैसे-वैसे बालक का मानसिक विकास होने लगता है उसकी समझ विकसित होने लगती है। वह अपनी समझ के प्रकार बालक सामाजिक संस्थानों के माध्यम से निरन्तर अधिगम करने लगता माध्यम से सामाजिक आदर्शों एवं मूल्यों का अनुसरण करने लगता है। इस है। बालक के समाजीकरण में अनेक सामाजिक संस्थानों की भूमिका रहती है, जिनमें प्रमुख है-परिवार, विद्यालय, समाज, समुदाय, जाति, भाषा समूह, विवाह, नातेदारी, धार्मिक क्रियाकलाप, खेलकूद, पड़ोस, आयु समूह, एवं राजनैतिक संस्थाएँ इत्यादि।

राजनीति सामाजिक संस्थाओं के प्रकार - पाँच सामाजिक संस्थाएँ पाई प्रत्येक समाज में मुख्य रुप जाती हैं

परिवार पारिवारिक दायित्वों को पूरा करने, विवाह तथा पारिवारिक व्यवस्था की निरन्तरता को बनाए रखने हेतु महत्त्वपूर्ण होता है।

धर्म यह व्यक्ति के जन्मजात भय से निपटने तथा धार्मिक प्रार्थनाओं के माध्यम से समाज में योगदान देता है।

सरकार यह कानून और औपचारिक साधनों के माध्यम से आबादी के बड़े समूह का नेतृत्व करता है।

शिक्षा यह विभिन्न संस्थानों के माध्यम से समाज के कामकाज के कार्यात्मक कौशल को संचारित करता है।

अर्थशास्त्र यह जनसंख्या की भौतिक आवश्यकताओं से निपटने, भोजन, वस्त्र, आश्रम जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु महत्त्वपूर्ण होता है।

परिवार के प्रकार्य

आज तक कोई भी ऐसा संगठन नहीं बना है जो परिवार का स्थान ले सके। परिवार के विभिन्न कार्यों के फलस्वरूप मानव आज सभ्यता के शिखर पर पहुँच चुका है। यही कारण है कि परिवार के द्वारा अनेक कार्य किए जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं

जैविक कार्य

(i) यौन इच्छाओं की पूर्ति

www.studyeducation.com

(ii) सन्तानोत्पत्ति

(iii) प्रजाति की निरन्तरता

शारीरिक कार्य

(i) शरीर की रक्षा एवं बच्चों का पालन

(ii) भोजन का प्रबन्ध

(iii) निवास स्थान

(iv) वस्तु की व्यवस्था

आर्थिक कार्य

(i) उत्तराधिकार का निर्धारण

(ii) श्रम-विभाजन

(iii) आय एवं सम्पत्ति का प्रबन्ध

सामाजिक कार्य

(i) समाजीकरण

(ii) सामाजिक नियन्त्रण

(iii) पदों का निर्धारण

शैक्षणिक कार्य

(i) अध्यापन कार्य

(ii) शिक्षा ग्रहण करना

(iii) मानव विकास

सांस्कृतिक एवं धार्मिक कार्य

www.studyofeducation.com

(i) धार्मिक अनुष्ठान करना

(ii) कला का विकास करना

(iii) परम्पराओं का विकास

शिक्षा के विकास में घर या परिवार का महत्त्व

पारम्परिक दृष्टिकोण से घर या परिवार को शिक्षा के अनौपचारिक एवं सक्रिय साधन के रूप में देखा गया है। पारिवारिक जीवन के विषय में समझने और शिक्षित करने में घर को एक आदर्श स्थान माना जाता है, क्योंकि माता-पिता और बच्चों के बीच वर्षों तक लगातार सम्बन्ध बना रहता है। यह सम्बन्ध दृष्टिकोण को विकसित करने एवं जानकारी बढ़ाने में अति महत्त्वपूर्ण होता है। इसके बुनियादी दृष्टिकोण प्रारम्भिक वर्षों में घर पर विकसित होता है, वही बाद में जीवन पर भी प्रभाव बनाए रखता है। इसलिए परिवार बच्चे के भौतिक, भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक शिक्षा देने की भूमिका की जिम्मेदारी लेना अति आवश्यक है।

शिक्षक के रूप में माता-पिता

बालकों के लिए परिवार स्कूलों का भी स्कूल माना जाता है। माता-पिता की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। माता-पिता ही उनके सर्वश्रेष्ठ शिक्षक होते हैं। माता-पिता के प्रति बच्चे का लगाव प्रारम्भिक वर्षों में बच्चे । व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। अक्सर ऐसा देखा भी जाता है कि किसी वयस्क व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके घर के बचपन के अनुभव से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित रहता है। जॉन लॉक के अनुसार, बच्चे का दिमाग तबूला रासा (लैटिन भाषा) के समान होता है, इसका तात्पर्य साफ स्लेट होता है, जिस पर कुछ लिखा हुआ नहीं होता है। माता-पिता इस साफ स्लेट पर कुछ भी लिख सकते हैं। परिवार के बारे में सम्पूर्ण ज्ञान बच्चे को शुरुआती दिनों के अनुभवों से मिलता है। एक बच्चे को जिस प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, उसे माता-पिता घर पर ही देते हैं। परिवार में प्रचलित मापदण्ड और नैतिक मूल्य बाद के जीवन में मार्गदर्शक का कार्य करते हैं।

चरित्र निर्माण में परिवार की भूमिका

किसी भी परिवार की सफलता दम्पति के चरित्र पर निर्भर करती है। परिवार के सदस्यों के चरित्र निर्माण में परिवार के सदस्यों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। सफलता या असफलता, अच्छा या बुरा, सामंजस्य और खुशी अथवा शोक यह सब बुद्धिमत्ता की अपेक्षा चरित्र से ज्यादा प्रभावित और निर्भर होते हैं। आधुनिक युग में जिन्दगी के प्रत्येक हिस्से में अच्छे नेतृत्व का अभाव महसूस किया जाता है। इसका मुख्य कारण परिवार की गलती है। यह चरित्र निर्माण के दौरान अच्छे घरेलू वातावरण की अपर्याप्तता का प्रतिफल होता है। यदि माता-पिता अच्छा व्यवस्थित जीवन जी रहे हैं, तो बच्चे भी वैसा ही वैवाहिक जीवन घर और परिवार बना सकते हैं।

वैवाहिक जीवन में सहयोग

www.studiestoday.com

परिवार वैवाहिक जीवन को सुखमय बनाने में सकारात्मक एवं रचनात्मक भूमिका निभाता है। शिक्षा के लिए घर ही प्रारम्भिक बिन्दु माना जाता है। एक बच्चे का एक लड़का अथवा लड़की, एक पति अथवा पत्नी, एक माता अथवा पिता के रुप में जो छवि उभरेगी उसका आकार घर के सामाजिक एवं भावनात्मक वातावरण के अनुरुप बनेगा, क्योंकि मानव व्यवहार एवं समन्वय की कला का पहला पाठ परिवार में ही सीखा जाता है।

अतः माता-पिता का नैतिक दायित्व है कि बच्चों को वैवाहिक जीवन के लिए विशेष रुप से तैयार करें। उन्हें मानसिक रुप से तैयार करें एवं वैवाहिक जीवन के सकारात्मक पक्षों से अवगत करवाएँ।

व्यक्तित्व निर्माण में सहयोग

व्यक्तित्व के सामान्य विकास के लिए बच्चे को सन्तोषप्रद पारिवारिक जीवन उपलब्ध होना अनिवार्य होता है। ऐसे घर जिसमें माता-पिता और बच्चे सुख-दुःख में साथ-साथ शामिल होते हैं, जहाँ हमेशा शान्ति एवं खुशी का वातावरण बना रहता है, उनके बच्चे व्यक्तिगत रुप से व्यवस्थित एवं सामाजिक रुप से आत्मविश्वासी होते हैं। ऐसे बच्चे दूसरों के साथ सम्बन्ध बनाते समय व्यक्तिगत क्षमता एवं जिम्मेदारी का बेहतर निर्वहन कर लेते हैं। यह अनुभव केवल दिन-प्रतिदिन की पारिवारिक जिन्दगी में ही मिल सकता है।

www.studyofeducation.com

यौन शिक्षा में परिवार की भूमिका

वर्तमान में यौन शिक्षा पारिवारिक जीवन की शिक्षा दोनों एकसमान हो गए हैं। वर्तमान अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है कि लगाव प्यार और एक-दूसरे के साथ ये सारी बातें दम्पति के लिए आवश्यक होती हैं।

इन आवश्यकताओं की पूर्ति अधिकांश यौन सम्बन्धों के द्वारा होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यौन वैवाहिक जीवन में विशेष महत्त्व रखता है। बहुत से लोगों का विचार है कि वैवाहिक जीवन की सफलता या असफलता सन्तोषजनक यौन सम्बन्धों पर निर्भर करती है। इसलिए इस शिक्षा का भी परिवार में विशेष महत्त्व है।

परिवार में होने वाली शिक्षा के मार्ग में कठिनाइयाँ परिवार में होने वाली शिक्षा के मार्ग में कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं

माता-पिता की असफलता माता-पिता अपने बच्चों को किसी तरह की बड़ी या छोटी जोखिम उठाने की इजाजत नहीं देते हैं।

माता-पिता का अति आशावादी होना आज के प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में माता-पिता बच्चों से अधिक उम्मीदें लगाने लगते हैं। सफलता से वंचित रहने से पारिवारिक वातावरण के विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगता है।

तिरस्कृत बच्चे माता-पिता द्वारा तिरस्कृत बच्चे भी एक गम्भीर समस्या है। माता-पिता जब दोनों नौकरी पेशा में हों तो बच्चे का उचित संरक्षण नहीं हो पाता है। इससे बच्चों के विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगता है।

पूर्णतावादी माता-पिता परिवार का माहौल उस समय प्रतिकूल हो जाता है जब माता-पिता अति अनुशासित हो जाते हैं, इससे बच्चों का व्यवहार हिंसात्मक होने लगता है।

तानाशाही व्यवहार माता-पिता का तानाशाही व्यवहार बच्चों के व्यवहार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। ऐसे माहौल में बच्चों के निर्णय को अनदेखा किया जाता है एवं माता-पिता अपने स्वयं के निर्णय बच्चों पर थोपने लगते हैं।

विद्यालय के प्रकार्य

सामाजिक संस्थाओं के रुप में विद्यालयों के प्रमुख प्रकार्य निम्न हैं

शैक्षणिक कार्य

(i) अध्यापन कार्य

(ii) शिक्षा ग्रहण करना

(iii) मानव विकास करना

(iv) कक्षा प्रबन्धन करना

(v) व्यक्तित्व निर्माण करना।

मनोवैज्ञानिक कार्य

(i) संवेगात्मक विकास करना

(ii) तार्किकता का विकास करना

(iii) तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति का विकास

मनोरंजन कार्य एवं सांस्कृतिक कार्य

(i) खेलना-कूदना

(ii) रुचिकर कार्य को प्रोत्साहित करना

(iii) कलात्मक एवं परम्पराओं का विकास करना।

www.studyofeducation.com

शिक्षा के विकास में विद्यालय का महत्त्व

पारिवारिक जीवन की शिक्षा के लिए घर या परिवार ही सबसे महत्वपूर्ण घटक माना जाता है, लेकिन विद्यालय की प्रासंगिकता को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। विद्यालय को घर का विस्तार माना जाता है, क्योंकि विद्यालय का बच्चों से नियमित एवं निरन्तर सम्पर्क होता है। अतः यह भी पारिवारिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण देने में पूरक तत्त्व माना जाता है।

विद्यालय में न केवल पाठ्यक्रम सम्बन्धित शिक्षा दी जाती है, बल्कि अपाठ्यक्रम से सम्बन्धित गतिविधियाँ भी संचालित की जाती हैं। इससे बच्चों का न केवल मानसिक बल्कि शारीरिक विकास भी तीव्रता से होता है। विद्यालयों में प्राप्त किए गए अनुभव आदर्शों और मूल्यों के निर्माण में सहयोग देते हैं। बच्चे का सम्पूर्ण चरित्र निर्माण विद्यालयी शिक्षा द्वारा सम्भव है। विद्यालय छात्रों को औपचारिक शिक्षा प्रदान करता है, जो नैतिक मूल्यों के साथ-साथ रोजगारपरक उद्देश्यों को भी पूर्ण करता है। अतः विद्यालयी शिक्षा के महत्त्व को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से देखा जा सकता है -

- विद्यालय न केवल शिक्षा का एक औपचारिक साधन है, बल्कि यह बच्चे के समाजीकरण की प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान करता है और विद्यालय के इस कार्य में शिक्षक की भूमिका सर्वाधिक अहम होती है।
- परिवार के बाद बच्चों को विद्यालय में प्रवेश मिलता है। अध्यापक ही शिक्षा के द्वारा बच्चे में वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य पैदा करता है, जो समाज व संस्कृति में मान्य होते हैं।
- स्कूल में खेल प्रक्रिया द्वारा बच्चे सहयोग, अनुशासन, सामूहिक कार्य आदि सीखते हैं। इस प्रकार, विद्यालय बच्चे में आधारभूत सामाजिक व्यवहार तथा व्यवहार के सिद्धान्तों की नींव डालता है।
- समाजीकरण की प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान करने के लिए शिक्षक का सर्वप्रथम कार्य यह है कि वह बालक के माता-पिता से सम्पर्क स्थापित करके उसकी रुचियों तथा मनोवृत्तियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करे एवं उन्हीं के अनुसार उसे विकसित होने के अवसर प्रदान करे।
- शिक्षक को चाहिए कि वह स्कूल में विभिन्न सामाजिक योजनाओं के द्वारा बालकों को सामूहिक क्रियाओं में सक्रिय रुप से भाग लेने के अवसर प्रदान करे।
- बालक के समाजीकरण में स्वस्थ मानवीय सम्बन्धों का गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह दूसरे बालकों, शिक्षकों तथा स्कूल के प्रधानाचार्य के साथ स्वस्थ मानवीय सम्बन्ध स्थापित करे।
- इन स्वस्थ मानवीय सम्बन्धों के स्थापित हो जाने से स्कूल का समस्त वातावरण सामाजिक बन जाएगा।
- बच्चे को सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यताओं, मूल्यों, मानकों आदि का ज्ञान देना उनके समाजीकरण को तीव्र करने में सहायक सिद्ध होता है।
- जहाँ तक सामाजिक भूमिका की उपयोगिता एवं उनके निर्वाह का प्रश्न है, तो अध्यापक स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत कर उन्हें अनुकरण हेतु प्रेरित कर सकता है।

www.studyinfeducation.com

- विद्यार्थियों से घनिष्ठ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर उन्हें अपनी अभिवृत्तियों की समीक्षा करने हेतु प्रोत्साहित कर तथा उनकी वर्तमान अभिवृत्तियों का समर्थन कर उनके समाजीकरण में सहायता की जा सकती है।
- समाजीकरण के सन्दर्भ में बच्चे अभि वकों एवं शिक्षकों का ही अनुकरण करते हैं तथा बालकों के समाजीकरण हेतु शिक्षक को चाहिए कि वह उनके साथ स्नेह एवं सहानुभूतिपूर्ण बर्ताव करे।

समाज के प्रकार्य - समाज के प्रमुख कार्य निम्न है

सामाजिक कार्य

(i) सामाजिक व्यवहार सीखना

(ii) कर्तव्य का निर्वाह करना

(iii) समाजीकरण

(iv) सामाजिक नियन्त्रण

(v) पदों का निर्धारण

जैविक कार्य

(i) सन्तान की उत्पत्ति

(ii) प्रजाति की निरन्तरता

आर्थिक कार्य

(i) श्रम विभाजन

(ii) उत्तराधिकार का निर्धारण

(iii) आय एवं सम्पत्ति का प्रबन्ध

अन्य कार्य - सांस्कृतिक कार्य, मनोरंजन कार्य, अनुभव स्थानान्तरता।

शिक्षा के विकास में समाज का महत्त्व

शिक्षा के विकास में समाज के महत्त्व निम्न प्रकार देखा जा सकता है

www.studyofeducation.com

प्राचीन भारतीय समाज

प्राचीन भारतीय समाज में जाति-धर्म का अधिक प्रभाव था, इसलिए शिक्षा कुछ विशेष जाति तक ही सीमित थी। लोग धार्मिक सिद्धान्तों का अनुसरण करते थे और व्यक्ति के चारित्रिक एवं धार्मिक विकास पर अधिक बल दिया जाता था।

मध्यकालीन भारतीय समाज

मध्यकालीन भारतीय समाज में भी धर्म का अत्यधिक प्रभाव था, इसलिए शिक्षा भी धार्मिक थी। उस समय शिक्षा में भी धार्मिक प्रभाव अधिक था।

आधुनिक भारतीय समाज

आधुनिक समाज पर विज्ञान का विशेष प्रभाव है। अत: शिक्षा के द्वारा इस बात पर बल दिया जाता है कि व्यक्ति की चिन्तन, तर्क तथा निर्णय आदि मानसिक शक्तियाँ पूर्णरुपेण विकसित हो जाएँ। ध्यान देने की बात है कि वर्तमान समाज के विभिन्न रूप हैं। प्रत्येक समाज अपने-अपने सिद्धान्तों तथा आदर्शों के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करता है, जिसे निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है -

भौतिकवादी समाज

भौतिकवादी समाज में भौतिक सम्पन्नता को प्रमुख स्थान दिया जाता है। ऐसे समाज में नैतिक आदर्शों, आध्यात्मिक मूल्यों, रचनात्मक कार्यों तथा व्यक्ति के विवेक का कोई स्थान नहीं होता। शिक्षा प्राप्त करने का प्रमुख उद्देश्य भौतिक सुखों की प्राप्ति होती है।

आदर्शवादी समाज

इस समाज के लोग विचार, आदर्श को अधिक महत्त्व देते हैं। आध्यात्मिक विकास के आदर्शों का ध्यान रखते हुए शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। अत: ऐसे समाज में शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य के अन्तर्गत चरित्र का गठन तथा नैतिक विकास पर बल दिया जाता है।

प्रयोजनवादी समाज

ऐसे समाज के लोगों का विश्वास है कि सत्य सदैव, देश काल तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। उनके अनुसार सत्य की कसौटी उसका पुनर्निरीक्षण करती है। अत: यदि कोई सत्य किसी परिस्थिति में सत्य सिद्ध नहीं होता, तो वह असत्य पान लिया जाता है। चूंकि प्रयोजनवादियों के अनुसार सा परिवर्तनशील होता है, इसलिए प्रयोजनवादी समाज में विचार की अपेक्षा क्रिया तथा बुद्धि की अपेक्षा परिस्थिति को अधिक महत्त्व देते हुए शिक्षा की व्यवस्था नवीन मूल्यों के निर्माण के लिए करते हैं।

फासिस्ट समाज

www.studiestoday.com

हित में अपने फासिस्ट समाज में राज्य को मुख्य तथा व्यक्ति को गौण स्थान दिया जाता है। इस समाज में व्यक्ति से आशा की जाती है कि वह राज्य आप को बलिदान करने के लिए कभी संकोच न करे। इस दृष्टि से इस समाज में शिक्षा की व्यवस्था केवल ऐसे व्यक्तियों के लिए ही की जाती है, जो आप हित को त्यागकर समाज की सेवा करते हैं। इस समाज में शिक्षा, बल और आदेश द्वारा प्रदान की जाती है।

लोकतन्त्रवादी समाज

लोकतन्त्रवादी समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व को विशेष महत्त्व दिया जाता है। जैसा कि हम जानते हैं जनतन्त्र वह आदर्श है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को एक सुखी, सम्पन्न तथा समृद्धिशाली जीवन व्यतीत करने का समान अवसर प्राप्त होता है, इसलिए जनतन्त्रवादी समाज में प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन तथा मनन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है और इस समाज के प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता, सबके समान अधिकार तथा वैयक्तिक और सामूहिक जीवन में विश्वास आदि आदर्श को प्राप्त करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार से की जाती है कि प्रत्येक बालक को उसकी रुचियों, रुझानों, योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार विकसित होने के लिए ऐसे अवसर मिलते हैं।

www.studyofeducation.com

सामाजिक आन्दोलनों की संकल्पना (Concept of Social Movements)

सामाजिक आन्दोलन सामूहिक व्यवहार का एक स्वरुप माना जाता है। सामाजिक आन्दोलन परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। यह सामाजिक विकास प्रगति एवं उद्विकास की भाँति नियन्त्रित एवं निरन्तर परिवर्तनशील होता है। सामाजिक आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिवर्तन लाना होता है। राजनीतिक क्षेत्र में यह परिवर्तन आंशिक रुप से ही होता है। बीसवीं सदी को सामाजिक आन्दोलनों का काल कहा जाता है। इस सदी के दौरान रूस, चीन, यूरोप के अलग-अलग देशों में अनेक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आन्दोलन हुए। जैसे-जैसे चेतना का विकास हुआ, गतिशीलता बढ़ने से तत्कालीन परिस्थितियों के कारण व्यापक स्तर पर सामाजिक आन्दोलन हुए।

सामाजिक आन्दोलन असन्तुष्टि के कारण उत्पन्न प्रतिफल को माना जाता है। जब समाज में असन्तोष की भावना उत्पन्न होती है, तो लोगों में आक्रोश उत्पन्न होने लगता है। इसकी आक्रोश की चरम अवस्था सामाजिक आन्दोलन होता है। सामाजिक आन्दोलन किसी-न-किसी विचारधारा से अवश्य प्रभावित होता है। प्रारम्भिक अवस्था में किसी भी आन्दोलन का स्वरुप असंगठित होता है, परन्तु धीरे-धीरे ये संगठित हो जाते हैं। यह एक सामूहिक व्यवहार का प्रतिरुप होता है। सामाजिक आन्दोलन के सन्दर्भ में कॉम्टे, दुर्थीम, टाडे एवं लीबा जैसे समाजशास्त्रियों ने अपने-अपने विचार दिए।

सामूहिक प्रयास है।" हार्टन एवं हण्ड के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन या आन्दोलन समाज अथवा उसके सदस्यों में परिवर्तन लाने अथवा उसका विरोध करने का सामूहिक प्रयास है।"

हरबर्ट बलूमर के अनुसार, "सामाजिक आन्दोलन मुख्यत: जीवन को नई व्यवस्था को स्थापित करने हेतु किया गया सामूहिक प्रयास है।"

समानता होती है। सामाजिक आन्दोलन में एक लम्बे समय तक निरन्तर सामूहिक गतिविधियों को आवश्यकता होती है। ऐसी गतिविधियाँ प्रायः राज्य के विरुद्ध होती हैं तथा राज्य की नीति तथा व्यवहार में परिवर्तन की माँग करती हैं। ऐसे आन्दोलनों में भाग लेने वाले लोगों के उद्देश्य तथा विचारधारा में भी

सामाजिक आन्दोलन में सामान्य अभिमुखता अथवा किसी परिवर्तन को लाने या रोकने का तरीका होता है। ये विशिष्ट लक्षण स्थायी नहीं होते। सामाजिक आन्दोलन प्राय: किसी जनहित के मामले में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से उत्पन्न होते हैं, जैसे जनजातीय लोगों के लिए जंगल के उपयोग का अधिकार अथवा विस्थापित लोगों के पुनर्वास तथा क्षतिपूर्ति के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए आदि।

सामाजिक आन्दोलन के प्रकार

सामाजिक आन्दोलन अनेक प्रकार के होते हैं। उन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है -

प्रतिदानात्मक अथवा रुपान्तरणकारी आन्दोलन प्रतिदानात्मक सामाजिक आन्दोलन का लक्ष्य अपने व्यक्तिगत सदस्यों की व्यक्तिगत चेतना तथा गतिविधियों में परिवर्तन लाना होता है।

सुधारवादी सामाजिक आन्दोलन सुधारवादी सामाजिक आन्दोलन वर्तमान सामाजिक तथा राजनीतिक विन्यास को धीमे प्रगतिशील चरणों द्वारा बदलने का प्रयास करता है। भारत के राज्यों को भाषा के आधार पर पुनर्गठित करना या सूचना के अधिकार का अभियान संचालित करना सुधारवादी आन्दोलन के उदाहरण माने जाते हैं।

क्रान्तिकारी सामाजिक आन्दोलन इसके अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धों के आमूल रुपान्तरण का प्रयास करते हैं। ऐसे आन्दोलन सामान्यतः हुकूमत के विरुद्ध की जाती है। क्रान्तिकारी सामाजिक आन्दोलन प्राय: राज्यसत्ता पर अधिकार के द्वारा की जाती है। रुस की बोल्शेविक क्रान्ति जिसने जार शासक को सत्ता से बेदखल कर वहाँ साम्यवादी सरकार की स्थापना की तथा भारत में नक्सली आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रतीक माने जाते हैं।

सामाजिक आन्दोलनों के सिद्धान्त

सामाजिक आन्दोलनों के प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं

www.studyofeducation.com

सापेक्षिक वंचन के सिद्धान्त

सापेक्षिक वंचन के सिद्धान्त (Relative Deprivation Theory) के अनुसार सामाजिक संघर्ष तब उत्पन्न होता है, जब सामाजिक समूह यह महसूस करता है कि वह अपने आस-पास के अन्य लोगों से खराब स्थिति में है। ऐसा संघर्ष सफल सामूहिक विरोध के रूप में परिणत हो सकता है। यह सिद्धान्त सामाजिक आन्दोलनों को भड़काने में मनोवैज्ञानिक कारकों; जैसे-क्षोभ तथा रोष की भूमिका पर विशेष रूप से बल देता है।

इस सिदान्त की सीमा यह है कि यचन का आभाय सामूहिक गतिविधियों के लिए आवश्यक माना जाता है, परन्तु प्यय में यह पर्याप्त कारण नही हो सकता। सभी घटनाएँ जहाँ लोग सापेक्षिक वचन अनुभव का है, सामाजिक प्राटालत में परिणत नहीं हो सकता। सामूहिक कार्यवाही को संगठित करने तथा परन पर गतिशील रखने हेतु शिकायतों की चर्चा एवं विश्लेषण आवश्यक है ताकि साझी विचारधारा तथा रणनीति पर पहुंचा जा सके।

मनकर ओल्सन की पुस्तक 'द लॉजिक पण्ड स्नैक्टिय एकाहत' में दिया गया है कि सामाजिक आन्दोलन में स्वहित चाहने वाले विवेकी, चितात का का पूर्ण योगवान होता है। एक व्यक्ति सामाजिक आन्दोलन का रिप्या भी बात है जब वह उससे कुछ प्राप्त कर सके अर्थात् वह आन्दोलन में तभी शामिल होगा, जब जोखिम कम हो और लाभ की प्राप्ति अधिक हो।

संसाधन गतिशीलता का सिद्धान्त

वर्ष 1970 के दशक में सामाजिक आन्दोलन के सिद्धान्तकारों ने नागरिक अधिकार आन्दोलन, नारीवादी आन्दोलन आदि अपने समय के आन्दोलनों के आधार पर यह तर्क दिया कि आन्दोलन के संचालक साधनविहीन नहीं बल्कि असन्तुष्टी से परिपूर्ण थे। इसी असन्तोष के कारण सामाजिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार होती थी।

मैकार्थी और जेल्ड ने संसाधन गतिशीलता का सिद्धान्त (Resource Mobilisation Theory) प्रस्तावित किया तथा ओल्सन की इस विचारधारा को खारिज कर दिया कि सामाजिक आन्दोलन स्वहित चाहने वाले व्यक्तियों का समूह होता है। मैकार्थी और जेल्ड का मानना था कि सामाजिक आन्दोलनों की सफलता संसाधनों अथवा विभिन्न प्रकार की योग्यता को गतिशील करने की क्षमता पर निर्भर करती है। यदि एक आन्दोलन नेतृत्व, संगठ्नात्मक क्षमता तथा संचार सुविधाओं जैसे संसाधनों को एकत्रित कर सकता है तथा उन्हें विद्यमान राजनीतिक अवसर संरचना में प्रयोग कर सकते हैं, तो वह काफी प्रभावशाली हो सकता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपक्ष में आलोचकों का मानना है कि सामाजिक आन्दोलन उपलब्ध संसाधनों द्वारा सीमित नहीं होते हैं। यह नए प्रतीक तथा पहचानो जैसे संसाधनों का निर्माण कर सकता है। प्रारम्भिक सीमित भौतिक संसाधनों तथा संगठनात्मक आधार के साथ भी एक आन्दोलन संघर्ष की प्रक्रिया द्वारा संसाधनों की उत्पत्ति कर सकता है। सामाजिक आन्दोलनों के कर्ता बौद्धिक जन होते हैं, जो एक सम्पोषित गतिविधि के माध्यम से अपने साझे उद्देश्यों को हासिल करने का प्रयास करते हैं।

www.studyofeducation.com

राजनीतिक प्रक्रिया का सिद्धान्त

राजनीतिक प्रक्रिया का सिद्धान्त (Political Process Theory) वह माध्यम है, जिसके जरिए आन्दोलन की शक्ति को गतिशील बनाया जा सकता है। यदि राजनीतिक अवसर विद्यमान हो तो जनता सामाजिक आन्दोलन में भाग लेतो है और सामूहिक कार्यवाही द्वारा वह नए आन्दोलनों को जन्म भी देती है। जिन समूहों के पास राजनीतिक सुअवसर उपलब्ध होते हैं वे अपनी मामूली शिकायतों और अपर्याप्त आन्तरिक स्रोतों के बावजूद आन्दोलन के रुप में प्रकट हो सकते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी समूह होते हैं जिनकी समस्याएँ गम्भोर होती हैं, संसाधन भी उपलब्ध होते हैं, परन्तु राजनीतिक सुअवसर के अभाव में आन्दोलन के रुप में नहीं उभर पाते हैं।

राजनीतिक संरचना समूह के बाहरी संसाधनों पर अधिक बल देती है, जिनका दुर्बल और असंगठित चुनौतियों के बावजूद लाभ उठाया जा सकता है। राजनीतिक अवसर संरचना विभिन्न गतिशील कारकों को समझने में सहायता मिलती है।

यह सामाजिक आन्दोलनों में बदलाव के प्रभाव को समझने में सहायता करती है। डैला पोर्टा औडायली के अनुसार, राजनीतिक प्रक्रिया के अन्तर्गत राजनीतिक संस्थाओं राजनीतिक संस्कृति, सामाजिक आन्दोलनों के प्रतिपक्षियों का आचार एवं मित्र राष्ट्रों के आचरण इत्यादि को शामिल किया जाता है।

www.studyofeducation.com

नव सामाजिक आन्दोलन सिद्धान्त

सामाजिक आन्दोलन के सिद्धान्तकारों का कहना है कि सामाजिक आन्दोलनों ने बड़े-बड़े सामाजिक बदलाव उत्पन्न किए हैं। जबकि अमेरिकी अध्ययन के अनुसार सामूहिक गतिविधियों पर साधन संचालन सिद्धान्त का प्रभाव दिखाई देता है। नव सामाजिक आन्दोलन सिद्धान्त (New Social Movement Theory) का सार यूरोप के सामाजिक सिद्धान्त और राजनीतिक दर्शन में व्यापक रुप से देखने को मिलता है।

इस दृष्टिकोण की उत्पत्ति सामूहिक गतिविधियों के विश्लेषण में परम्परागत मार्क्सवादी नीतियों की आलोचना के परिणामस्वरुप हुई थी। एक नव सामाजिक आन्दोलन सिद्धान्तकार के अनुसार परम्परागत मार्क्स दो प्रकार की सीमाओं के कारण सामूहिक गतिविधि के समकालिक रुप को पूरी तरह से स्वीकृत नहीं कर पाए। पहला, मार्क्सवाद आर्थिक परिवर्तनवाद की मान्यता है कि सभी प्रकार की राजनीतिक गतिविधियाँ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का परिणाम हैं। फलत: सभी सामाजिक तर्क गौण हैं। दूसरा, मार्क्सवादी विश्लेषण सामूहिक गतिविधियों को बढ़ावा देने वाले अन्य सभी सामाजिक तत्त्वों को नजरअन्दाज करके उन्हें अर्थव्यवस्था के वर्गीय तत्त्व तक ही सीमित कर देता है।

जाल इस प्रकार नव सामाजिक आन्दोलन के समर्थक सर्वहारा क्रान्ति से जुड़े पुराने सामाजिक आन्दोलन के सिद्धान्त के स्थान पर समूहीकरण गतिविधियों के विभिन्न विन्यास की बात करते हैं। नव सामाजिक आन्दोलन केन्द्रीकृत तन्त्र के स्थान पर पारस्परिक तन्त्रों को विशेष रुप से मान्यता देते हैं। सामाजिक बदलाव के उद्देश्य से व्यापक संगठन संरचना और विचारधारा पर आधारित होने

के कारण ये आन्दोलन स्वयं में नए होते हैं, क्योंकि ये अपनी विचारधारा के माध्यम से अपने दमन और अभिव्यक्ति का शोषण करते हैं।

नव सामाजिक आन्दोलन के सिद्धान्त में सांकेतिक प्रतिक्रिया आत्मनिर्णय उत्तर-1 र-भौतिकवादी मूल्य सामूहिक पहचान, समस्याओं की अभिव्यक्ति और संरचनाओं के सम्मुख चुनौतियों पर बल देने के साथ-साथ समकालीन सामाजिक सक्रियतावाद के बारे में पर्याप्त जानकारी देते है। इस प्रकार नव सामाजिक आन्दोलन में सामाजिक आन्दोलन 'क्यों' से ध्यान हटाकर सामाजिक आन्दोलन कैसे' पर केन्द्रित किया है।

PART D - समाजीकरण तथा शिक्षा

शिक्षा एवं समाजीकरण में सम्बन्ध (Relation between Education and Socialisation)

www.studyofeducation.com

समाजीकरण तथा शिक्षा में अटूट सम्बन्ध पाया जाता है। अतः शिक्षा की व्यवस्था समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा आदर्शों के अनुरूप की जानी चाहिए। शिक्षा के द्वारा बालकों में सामाजिक भावनाओं तथा सामाजिक गुणों को विकसित किया जाए, जिससे वे अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का पालन कर सकें एवं कुशल नागरिक के रूप में समाज की प्रगति में विशेष योगदान दे सकें। वर्तमान समय में संसार के प्रायः सभी राष्ट्रों में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व माना जाता है। इस दृष्टि से राज्य विशेष की सम्पूर्ण जनता ही उस राज्य का समाज होती है।

जब हम शिक्षा के सन्दर्भ में समाजीकरण की बात करते हैं, तो हमारा तात्पर्य राज्य अथवा राष्ट्र विशेष की सम्पूर्ण जनता से होता है। जिस देश का जैसा समाज होता है वैसी ही उसकी शिक्षा भी होती है। जैसा किसी समाज की शिक्षा होती है वैसा ही वहाँ का समाज बन जाता है। अतः समाज की संस्कृति, रीति-रिवाज एवं मान्यताएँ शिक्षा को विशेष रुप से प्रभावित करती हैं। इसी के अनुरुप शिक्षा व्यवस्था के आधार पर समाजीकरण की प्रक्रिया भी प्रभावित होती है।

शिक्षा समाजीकरण के रूप में सामाजिक स्तरीकरण के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होने के साथ समाज में समायोजन का विकास होता है। इतना ही नहीं शिक्षा सामाजिक विषमता को मिटाने में सहयोग करती है और सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाने में सहायता करती है। इस प्रकार समाजीकरण तथा शिक्षा में पूरकता का सम्बन्ध पाया जाता है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति सामाजिक मूल्यों के अनुकूल या प्रतिकूल समझकर अपना वैयक्तिक एवं पारिवारिक विकास करता है।

शिक्षा द्वारा सामाजिक एवं वैयक्तिक मूल्यों का विकास

अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार चलने की बढ़ती हुई योग्यता सामाजिक विकास का ही एक प्रकार है। शिक्षा के द्वारा निम्नलिखित सामाजिक एवं वैयक्तिक मूल्यों का विकास होता है -

- **सामाजिक आचरण** सामाजिक मूल्यों में सामाजिक आचरण को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसके विकास में सामाजिक, परिवार के साथ शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान पाया जाता है। यह आने वाले भविष्य में बच्चों के लिए मार्गदर्शक के रुप में कार्य करता है, क्योंकि इसका प्रभाव परिवार के सदस्यों पर पड़ता है।
- **चरित्र का विकास** चरित्र के विकास में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक नियमों, दायित्वों, व्यक्ति के आचरण आदि के विकास में सहायक व प्रेरक होता है। अतः शिक्षित व्यक्ति का आचरण अशिक्षित व्यक्ति की तुलना में समाज में अधिक प्रशंसनीय होता है।
- **अनुशासन** सामाजिक एवं व्यक्ति के मूल्यों का सही पालन करने में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ऐसे व्यक्ति समाज एवं परिवार के मध्य एक अको अनुशासन को बनाए रखते हैं। इसके साथ ही यह समाज में अच्छे अनुशासन को बनाए रखने में प्रेरक का कार्य करते हैं।
- **प्रतिस्पर्धा तथा सहयोग** शिक्षित व्यक्ति में किसी प्रतिस्पर्धा का सामना करने अथवा दूसरे को सहयोग करने की भावना प्रबल होती है। इससे व्यक्ति को सही तथा गलत का सही ज्ञान हो पाता है। अतः शिक्षा महत्त्वपूर्ण है।
- **आत्मविश्वास** की भावना शिक्षा किसी व्यक्ति के आत्मविश्वास को बढ़ाती है। यह कठिनाइयों का सामना तार्किकता के साथ करने में सक्षम होती है। अतः शिक्षा व्यक्ति के आत्मविश्वास, आत्मबल बढ़ाने में उत्प्रेरक का कार्य करती है।
- **बड़ों का सम्मान** शिक्षा से व्यक्ति के कर्त्तव्यपालन की भावना, कर्त्तव्यनिष्ठा, बड़े का सम्मान, छोटे के प्रति व्यवहार, सामाजिक मूल्यों को बनाए रखने तथा उसका सही पालन करने की प्रवृत्ति का विकास होता है।
- **सामाजिक भूमिका** निर्वहन सामाजिक दायित्वों का निर्वहन समाज का शिक्षित व्यक्ति सही तरीके से करने में सक्षम होता है। अतः वह सामाजिक मूल्यों को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- **नैतिक मूल्यों का विकास** शिक्षित व्यक्ति में सामाजिक परम्परा, सामाजिक व्यवहार, सामाजिक आचरण, व्यक्ति का विकास, बड़ों का सम्मान, कर्त्तव्यपालन आदि नैतिक मूल्यों का विकास पाया जाता है। अतः शिक्षा ऐसे मूल्यों के विकास को प्रेरित करती है।
- **सामाजिक परिपक्वता** सामाजिक परिपक्वता वाले समाज, सामाजिक मूल्यों, नैतिक आचरण तथा वैयक्तिक विकास से पूर्ण माने जाते हैं। समाज में ऐसी परिपक्वता शिक्षा के माध्यम से आती है। यह समाज को एक आदर्श समाज बनाने में सहायक होती है।
- **वर्ग प्रतिष्ठा** शिक्षा समाज व परिवार के व्यक्ति को, समाज व समाज में अपने से बड़े व्यक्ति के प्रति आदर, प्रतिष्ठा आदि को बनाए रखने में सहायता करती है। अतः शिक्षा समाज में वर्ग-विभेद से बचाकर उनकी प्रतिष्ठा को बनाए रखने में सहायक होती है।

www.studyofeducation.com

- **राष्ट्रीयता शिक्षा** व्यक्ति में सामाजिक दायित्वों के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना के विकास को प्रेरित करती है। शिक्षा से व्यक्ति में अपने राष्ट्र के प्रति सद्भाव, आदर तथा सदैव राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना आदि का विकास होता है।
- **आदर्शवादिता** शिक्षा से व्यक्ति में आदर्शवादिता के गुण का विकास होता है। वह समाज के लिए प्रेरक बनता है, जिससे आदर्शवादी समाज के निर्माण को बढ़ावा मिलता है।

शिक्षा और संस्कृति (Education and Culture)

शिक्षा और संस्कृति के सम्बन्ध में भारतीय शिक्षा आयोग का कथन है कि शिक्षा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य सुधार इसको रुपान्तरित करने, इसको जीवन के साथ सम्बद्ध बनाने का प्रयास करने, लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरुप बनाने तथा राष्ट्र के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पाना का एक सशक्त साधन बगाने का है।" शिक्षा का प्रमुख लय माति प्रमा सामाजिक धरोहर का सम्प्रेषण है।

व्यक्ति क्षमताओं के विकास के अतिरिक्त यह यमात्र का प्रमुख लक्ष्य है। यी प्रकार संस्कृति संक्रमण प्रक्रिया के अन्तर्गत देश की संस्कृति का यकाय ऐसा अभिकरण है, जिसमें संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सम्प्रेषण प्रभाव करने वाले गुणधर्मों का विकास किया जाता है। केवल शिक्षा ही एक करना सम्भव है। शिक्षा के द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाते है -

1. संस्कृति का सम्प्रेषण
2. संस्कृति का परिरक्षण
3. संस्कृति का प्रोन्नयन

मनुष्य के श्रेष्ठ लाभ के लिए इसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

इस आधार पर शिक्षा के संस्कृति के लिए मुख्यतः कार्य निम्नलिखित है

संस्कृति का हस्तान्तरण व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप में संस्कृति को सीखता है और अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है। इस कार्य में शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करती है। इस विषय में ओटावे का कथन है कि "शिक्षा का एक कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानी को उसके तरुण और समर्थ सदस्यों को स्थानान्तरित करना है। जीवन को निरन्तरता को बनाए रखने के लिए संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संवहन करना या हस्तान्तरण करना आवश्यक होता है। संस्कृति का संरक्षण, विकास तथा हस्तान्तरण करना विद्यालय तथा परिवार का कार्य है। विद्यालय में बालक संस्कृति को सीखता है तथा परिवार में रहते हुए वह अपनी संस्कृति को स्वयं ही ग्रहण करता है। सभ्यता की प्रगति के तोत्र होने पर यह सांस्कृतिक विलम्बना का रूप ले लेती है। ऐसी स्थिति में शिक्षा का यह कार्य है कि वह सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठापित करते हुए इनका हस्तान्तरण आने वाली पीढ़ियों को करें।

संस्कृति का सृजन शिक्षा के द्वारा संस्कृति के सम्बन्ध में मूलतः दो कार्य किए जाते हैं-संरक्षणात्मक कार्य एवं सृजनात्मक कार्य सृजनात्मक कार्य से तात्पर्य संस्कृति में नवीन मूल्यों का सृजन करना है। बदलती परिस्थितियों के अनुसार नवीन सांस्कृतिक मूल्यों

www.studyofeducation.com

का सृजन करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान युग में शिक्षण संस्थानों का दायित्व है कि शिक्षा द्वारा पुराने उपयोगी सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण करते हुए नवीन सांस्कृतिक मूल्यों का सृजन करें।

संस्कृति का संरक्षण हुमायूँ कबीर के अनुसार, "सांस्कृतिक परम्परा ही एक जाति के जीवित रहने की आवश्यक शर्त है।" संस्कृति किसी भी जाति के इतिहास का विशुद्ध सार है। यह उन रीतियों एवं परम्पराओं के मेल से बनती है, जिनमें उस जाति के लम्बे समय के अनुभवों का निचोड़ होता है। शिक्षा किसी भी समाज की संस्कृति का संरक्षण करती है और उसे नष्ट नहीं होने देती। प्रत्येक समाज की संस्कृति की अपनी विशेषता होती है, जिसका संरक्षण शिक्षा द्वारा किया जाना आवश्यक होता है। इसी के साथ संस्कृति ग्रहण प्रक्रिया के अन्तर्गत कोई व्यक्ति किसी अन्य संस्कृतियों को प्रथाओं एवं मूल्यों को स्वीकार करता हुआ अपनी संस्कृति का संरक्षण और विस्तार करता है। .

संस्कृति का परिशोधन संस्कृति के दो पक्ष हैं-भौतिक और अभौतिक। मनुष्यों द्वारा भौतिक संस्कृति सहज ही स्वीकार कर ली जाती है तथा अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन सहज स्वीकार्य नहीं होता। ऐसी स्थिति में शिक्षा का कार्य है कि वह भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति में सन्तुलन लाए। यह दायित्व शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक द्वारा निभाया जाता है। शिक्षक एक निश्चित योजना बनाकर किसी विशेष किया की व्यवस्था करके बालकों को संस्कृति का ज्ञान दे सकता है तथा छात्रों के व्यवहार को निर्देशित कर सकता है ताकि णात्र संस्कृति के सही रुप को पहण कर सके।

निष्कर्ष रुप से यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक देश की संस्कृति अपने आप मे उच्च स्थान रखती है। शिक्षा व्यक्ति के संस्कृतीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। अत: शिक्षा विधागो द्वारा छात्रों को ऐसी शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए जो उसे सुसंस्कृत बनाए तथा देश के भविष्य को उज्ज्वल बनाए।

www.studyoreducation.com

सामाजिक परिवर्तन (Social Change)

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। संसार की प्रत्येक स्थिति और दशा में परिवर्तन होते रहते हैं। यह परिवर्तन का क्रम कभी नहीं टूटता। मानव से सम्बन्धित तत्त्व, भाषा, विचार, आवश्यकताएँ, जीवन उद्देश्य, संस्कृति एवं सभ्यता किसी-न-किसी रुप में परिवर्तित होते रहते हैं। सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समाज सम्बन्धी हेर-फेर अथवा समाज में होने वाले परिवर्तन से है। वास्तविकता यह है कि मानव जीवन हमेशा एक-सा नहीं रहता है। इस प्रकार मानव जीवन के साथ-साथ मानव द्वारा निर्मित समाज में भी परिवर्तन होते रहते हैं।

दूसरे शब्दों में जिस प्रकार मनुष्य गतिशील है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य द्वारा निर्मित समाज भी गतिशील होता है। उदाहरणस्वरुप, किसी क्षेत्र में शिक्षा के व्यापक अवसर की उपलब्धता, शहरीकरण, नगरीकरण, विज्ञान प्रौद्योगिकीय क्षमता का विकास आदि सामाजिक गतिशीलता को प्रेरित करते हैं। ऐसा हो सकता है कि किसी समाज में बड़ी तेजी के साथ परिवर्तन हो और किसी में मन्द गति से, लेकिन यह वास्तविकता है कि कोई भी समाज परिवर्तन नहीं बच सकता।

सर जोन्स के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन वह शब्द है, जो सामाजिक प्रक्रियाओं तथा सामाजिक संगठन के किसी अंग में अन्तर अथवा रुपान्तर का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया जाता है।"

गिलिन तथा गिलिन के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन जीवन की मानी हुई रीतियों में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं। चाहे परिवर्तन भौगोलिक दशाओं के परिवर्तन हों अथवा सांस्कृतिक साधनों में अथवा जनसंख्या के स्थान या सिद्धान्तों में अथवा प्रसार से अथवा समूह के अन्दर ही आविष्कारों के फलस्वरुप ही हुए हों।"

मेरिल तथा एल्ड्रिज के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन का यह अर्थ है कि बहुत बड़ी संख्या में व्यक्ति ऐसे कार्य कर रहे हैं, जो कुछ दिनों पहले अथवा उनके पूर्वजों के कार्य से भिन्न हैं अर्थात् जब मानव-व्यवहार संशोधित हो रहा है तो वह सामाजिक परिवर्तन का संकेत है।"

सामाजिक परिवर्तन के निर्णायक कारक

सामाजिक परिवर्तन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। समाजशास्त्रियों के अनुसार सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारक होते हैं, उनमें मुख्य कारक हैं भौतिक पर्यावरण, वैज्ञानिक आविष्कार, अन्तःक्रिया।

ऑगबर्न के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन पहले भौतिक संस्कृति में होता है तथा इसके बाद अभौतिक संस्कृति में, लेकिन ओटावे का मत है कि सामाजिक परिवर्तन संस्कृति के भौतिक तथा अभौतिक दोनों तत्त्वों में अलग-अलग न होकर दोनों की अन्तःक्रिया के परिणामस्वरुप होता है।"

ओटावे के अनुसार, "सामाजिक अथवा सांस्कृतिक परिवर्तन प्राविधिक आविष्कारों अथवा वैज्ञानिक खोजों तथा समाज के लक्ष्यों तथा मूल्यों की अन्तःक्रिया के कारण होता है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक परिवर्तन प्रौद्योगिकी द्वारा उत्पन्न की गई प्रविधियों और सामाजिक मूल्यों की अन्तःक्रिया के परिणामस्वरुप होता है। इन दोनों में से एक के अभाव में सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत प्रौद्योगिकी, प्रविधि और मूल्यों का विशेष महत्त्व है, इसलिए इन शब्दों का अर्थ समझना आवश्यक है।"

प्रौद्योगिकी उस विज्ञान को कहते हैं, जिसके द्वारा विभिन्न प्रविधियाँ विकषिः । होती है। प्रविधियाँ उन साधनों को कहते हैं, जिसके द्वारा मानव प्रार मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करता है। मूल्यों का तात्पर्य टन लान विश्वासों तथा विचारों और सूक्ष्म तत्त्वों से है, जिनमे हम अपने जीवन सार्थक बनाते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन न केवल प्रति और न ही केवल मूल्यों द्वारा लाया जा सकता है, बल्कि यह भी का कठिन है कि प्रविधियों और मूल्यों में से किसका प्रभाव सामाजिक परिकार पर अधिक पड़ता है। वास्तविकता यह है कि जब प्रविधियों में कोर्ट पनि होता है तो प्रायः मूल्य बदल जाते हैं। ऐसे ही मूल्यों के बदलने से प्रविधि में परिवर्तन हो जाते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रविधियाँ मूल्य दोनों ही सामाजिक परिवर्तन का आधार हैं।

उल्लेखनीय है कि भारत में जनगणना सामाजिक परिवर्तन का कारक नहीं है|

www.studyofeducation.com

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

समाज की विभिन्न इकाइयाँ समाज का निर्माण करती हैं। सामाजिक इका और साधनों के संगठन एवं संरचना में जीवन की नई विचारधाराओं, मूल्य आदर्शों और समस्याओं के कारण परिवर्तन होते रहते हैं और यही परिक समाज में परिवर्तन लाते हैं। इस तरह समाज हमेशा परिवर्तनशील रहता है। समाज में वृद्धि होती रहती है। इसकी जटिलताएँ बढ़ती रहती हैं। परिवर्तनों के कारण आज का संसार हमारे पूर्वजों के संसार से बिल्कु भिन्न है।

नई समस्याएँ तथा आवश्यकताएँ उत्पन्न हो रही हैं, जिसके कारण समान की जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सन्तु के लिए नए-नए साधन जुटाने पड़ रहे हैं। इन सब बातों ने हमारी संस्क की संरचना को बदल दिया है। सामाजिक परिवर्तन को एक विकास प्रक्रिया मानना एक भूल हो सकती है, क्योंकि परिवर्तन कभी प्रगति । दिशा में होता है तो कभी अवनति की दिशा में। सामाजिक परिवर्तन विभिन प्रकार के होते हैं और उनकी दिशाएँ भी भिन्न होती हैं। इस प्रकार : सामाजिक परिवर्तनों में अनेक दृष्टियों से भिन्नता पाई जाती है।

भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रक्रियाएँ निम्नलिखित हैं

- **नगरीकरण** पिछले दो दशकों में नगरीकरण को तेजी से बढ़ावा मिला है. जिससे नगरीय जनसंख्या में वृद्धि हुई है। नगरीकरण के कारण विभिन्न क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन आए हैं। .
- **औद्योगीकरण** भारत में औद्योगीकरण की गति निरन्तर तेज हो रही है। अब उत्पादन उद्योगों और मशीनों के द्वारा किया जाने लगा है। इससे उत्पादन बढ़ा है, साथ ही उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि हुई है। औद्योगीकरण ने लोगों की जीवन शैली को बदलने में योगदान दिया है।
- **पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव** पश्चिमी संस्कृति के अनुकरण के कारण समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं। इससे जीवन शैली में बदलाव आया है। इसके अतिरिक्त पश्चिमीकरण ने साहित्य, दर्शन, संस्कृति और राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्थाओं को भी प्रभावित किया है।
- **संस्कृतीकरण** डॉ. एमएन श्रीनिवासन ने समाज में चल रही सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया को समझने के लिए संस्कृतीकरण की प्रक्रिया को प्रतिपादित किया है। डॉ. एमएन श्रीनिवासन ने अपने अध्ययन के दौरान यह पाया कि निम्न समझी जाने वाली जातियाँ जातीय संस्तरण की प्रणाली में ऊपर उठने के लिए उच्च जातियों की संस्कृति का अनुकरण करती हैं, उनकी जीवन-शैली को अपना लेती हैं। ये जातियाँ निम्न समझे जाने वाले व्यवसायों को छोड़कर उच्च प्रतिष्ठा वाले व्यवसायों को अपना लेते हैं। ये जातीय आधार पर अपनी प्रस्थिति को ऊँचा उठाने की दिशा में कोशिश करते रहते हैं। दो-तीन पीढ़ियों के पश्चात् समाज में उनकी स्थिति कुछ ऊपर उठ जाती है। इसी प्रक्रिया को डॉ. श्रीनिवासन ने संस्कृतीकरण नाम दिया है।

www.studyeducation.com

- **आधुनिकीकरण** आधुनिकीकरण का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया किसी एक ही दिशा या क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन को प्रकट नहीं करती, बल्कि यह एक बहु-दिशा वाली प्रक्रिया है। आधुनिकीकरण में तार्किक अभिवृत्ति, सार्वभौम दृष्टिकोण, वैज्ञानिक विश्व दृष्टि, मानवता, प्रौद्योगिक प्रगति आदि सम्मिलित होते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ

सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं

- सामाजिक संगठन में होने वाले परिवर्तन की गति सामाजिक कार्यों में होने वाले परिवर्तनों की अपेक्षा बहुत धीमी है।
- सांस्कृतिक परिवर्तन की अपेक्षा आर्थिक परिवर्तन की गति तीव्र है।
- परिवर्तन पूर्ण सामाजिक ढाँचे में भी हो सकता है और उसके किसी एक संगठन में भी हो सकता है।
- जब हमारी भौतिक अथवा अभौतिक संस्कृति बदलती है, तो सामाजिक परिवर्तन होता है।
- शिक्षा आदि के द्वारा जब व्यक्ति के विचार-जगत में क्रान्ति होती है, तो उसके व्यवहार में भी परिवर्तन आ जाता है।
- स्वाभाविक ढंग से और सामान्य गति से होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव हमारे विचारों तथा सामाजिक संरचना पर पड़ता है।
- मुक्त समाज में परिवर्तन की गति तीव्र होती है और बन्द समाज बहुत मन्द होती है। 6
- जब सामाजिक परिवर्तन की गति मन्द होती है, तो क्रान्तियों की सम्भावना बढ़ जाती है और इस क्रान्ति के द्वारा एकाएक व्यापक परिवर्तन होते हैं।
- यह आवश्यक नहीं है कि समाज में होने वाले परिवर्तन उसे सदैव विकास की ओर ही ले जाएँ। कभी-कभी कुछ परिवर्तन समाज को अवनति की ओर भी ले जाते हैं।
- यह आवश्यक नहीं है कि सभी परिवर्तन स्थायी ही हों। आज जो परिवर्तन दिखाई दे रहा है, भविष्य में उसके स्वरूप में भी परिवर्तन हो सकता है।

www.studyofeducation.com

सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त

सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं

प्रावैधिक सिद्धान्त

यह सिद्धान्त ऑगबर्न द्वारा प्रतिपादित किया गया है। ऑगबन ने सभी प्रकार के सामाजिक परिवर्तन का आधार तकनीकी क्षेत्र में होने वाले विकास को बताया। उन्होंने सामाजिक परिवर्तन तथा आविष्कारों के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया। ऑगबर्न के अनुसार, नवीन आविष्कारों का अर्थ है नवीन सास्कृतिक गुणों व तत्त्वों की खोज। जब समाज इन आविष्कारों को अपनाने (लगता है, तभी समाज में परिवर्तन आ जाता है।

श्रृंखला सिद्धान्त

कॉम्टे, स्पेन्सर और कार्ल माक्र्म इस सिद्धान्त के प्रतिपादक माने जाते हैं। इन्हीन समाज के विकास के क्रम को ऐतिहासिक बताया तथा एक ऐम समान की का की, जहाँ परिवर्तन एक श्रृंखला के रूप में पाया जाता है, जो एक चक्र के म बढ़ते हुए अन्त में स्थिर हो जाता है।

चक्रीय सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक स्पेंगलर, सोरोकिन और टायनबी है। योगकितने समाज को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है विचारात्यक, संवगायक आदर्शात्मक-जो समाज में समयानुसार परिवर्तन लाती है।

टायनबी ने समाज में परिवर्तन के कारण व्यक्ति की आन्तरिक आध्यात्मिक प्रति को माना है। स्पेंगलर ने सामाजिक परिवर्तन के लिए तीन घटनाओं को उनादायी माना है-जन्म, परिपक्वता और अन्त, इनके कारण समाज में परिवर्तन आता है।

सामाजिक परिवर्तन के रूप

सामाजिक परिवर्तन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह परिवर्तन हमेशा एकसमान नहीं होते। इसके विभिन्न रूप होते हैं। यह प्रक्रिया विकासात्मक परिवर्तन, लहरदार परिवर्तन, चक्रीय क्रम परिवर्तन के रुपों में दृष्टिगोचर होती है। सामाजिक परिकॉट के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्व पाए जाते हैं, जो सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होता है।

सामाजिक परिवर्तन के स्वरुप को समझने के लिए समाज के विभिन्न क्टकों में हुए परिवर्तन को देखना आवश्यक होता है। उदाहरणस्वरूप समाज में शिक्षक परिवर्तन, सामाजिक स्थिति में परिवर्तन, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आदि। इस सब परिवर्तन के पीछे कुछ तत्त्वों का योगदान होता है।

www.studyeducation.com

सामाजिक परिवर्तन के मूल तत्त्व

सामाजिक प्रगति एवं समृद्धि के लिए परिवर्तन आवश्यक होता है। सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन और विश्लेषण पाँच मूल तत्त्वों की सहायता से किया जाता है, ये मूल तत्त्व निम्नलिखित हैं

- सामाजिक चिन्तन
- सामाजिक सम्बन्ध
- सामाजिक भूमिका
- सामाजिक मानक एवं संस्कृति
- सामाजिक मूल्य एवं आचरण

सामाजिक परिवर्तन में बाधक तत्त्व

सामाजिक परिवर्तन में बाधक तत्त्व निम्नलिखित हैं

नवीनता का भय

ऑगबर्न और निमकॉफ के अनुसार समाज में अधिकतर लोग ऐसे होते है, जो किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते हैं। ऐसे लोग अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहते हैं। नवीन परिवर्तन को ग्रहण करने से डरते हैं। उन्हें लगता है कि नई बातें उनके लिए अहितकर होंगी। इस प्रकार नवीनता का भय सामाजिक परिवर्तन में बाधक रहता है।

सांस्कृतिक जड़ता

समाज के सभी व्यक्ति जिस सांस्कृतिक वातावरण में जन्म लेते हैं, उसी से उन्हें विशेष लगाव होता है। वे अपने पूर्वजों से प्राप्त किए हुए आदर्शों, मूल्यों विश्वासों, परम्पराओं को ही उत्तम समझते हैं। समाज के कुछ लोगों में अटल विश्वास हो जाता है कि जो बातें अथवा वस्तुएँ हमारे पूर्वजों के लिए ठीक थीं वही हमारे लिए भी ठीक है। इससे सांस्कृतिक जड़ता उत्पन्न होती है। ये लोग उन सभी बातो का विरोध करते है जिनसे स्वीकृत आदर्शों तथा मान्यताओं को ठेस पहुँचती है। अतः जिस समाज में जितनी अधिक सांस्कृतिक जड़ता होती है, वह समाज सामाजिक परिवर्तन का उतना अधिक विरोध करता है।

निहित स्वार्थ

कोई भी समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित रहता है और प्रत्येक वर्ग के लोगों के कुछ स्वार्थ होते हैं। ये लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे रहते हैं। इन लोगों को स्वार्थों की पूर्ति तब तक होती रहती है जब तक कोई परिवर्तन नहीं होता। अतः इस तरह के लोगों द्वारा किसी भी परिवर्तन का विरोध किया जाता है। अत: लोगों के निहित स्वार्थ सामाजिक परिवर्तन में बाधक होते हैं।

पृथकता की मात्रा

प्रत्येक समाज अथवा वर्ग अपने अस्तित्व को बनाए रखने लिए अन्य समाजों या वर्गों की संस्कृतियों के सम्पर्क में आना नहीं चाहता है। इस प्रकार दूसरी संस्कृति से सम्पर्क न होने के कारण लोग सामाजिक परिवर्तनों का विरोध करते हैं, जैसे भारत में निवास करने वाली पिछड़ी हुई जातियों के लोग समाज के अन्य वर्गों से पृथक् रहने में ही अपना कल्याण समझते हैं। इस प्रकार के लोगों में पृथकता की मात्रा जितनी अधिक होती, वे उतनी ही शक्ति के साथ सामाजिक परिवर्तन का विरोध करते हैं।

शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन होता है। सामाजिक परिवर्तन के दृष्टिकोण से शिक्षा के निम्नलिखित कार्य हैं

www.studyofeducation.com

- शाश्वत मूल्यों को स्थायी करना
- परिवर्तन ग्रहण कराने में सहायता
- परिवर्तनों की समीक्षा
- नवीन परिवर्तनों के उदय में सहायक
- संस्कृति का हस्तान्तरण
- एकता तथा समग्रता उत्पन्न करना
- मानवीय तथा सामाजिक सम्बन्धों को बनाए रखना
- सामाजिक परिवर्तनों की शिक्षा
- परिवर्तनों में बाधा करना
- ज्ञान के क्षेत्रों में विकास करना
- सामाजिक परिवर्तन का नेतृत्व

सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा के क्षेत्र में अनेक दार्शनिकों एवं शिक्षाशास्त्रियों ने अपने विचार एवं सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। अगर हम इतिहास देखें तो ऐसे अनेक दार्शनिक मिल जाएँगे, जो शिक्षाशास्त्री भी थे और जिन्होंने अपने शैक्षिक विचारों के माध्यम से महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन किए हैं। इनमें स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी, अरबिन्दो, जे कृष्णामूर्ति, पावलो फ्रेरे, वोलस्टोनक्राफ्ट, नेल नौडिंग्स तथा सावित्रीबाई फुले प्रमुख हैं।

शैक्षिक विकास में विचारकों का योगदान

www.studyofeducation.com

शैक्षिक विचार के विकास में स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी, अरबिन्दो, जे कृष्णामूर्ति, पावलो फ्रेरे, वोलस्टोनक्राफ्ट, नेल नौडिंग्स तथा सावित्रीबाई फुले का उल्लेखनीय योगदान है। जिनका वर्णन इस प्रकार है

स्वामी विवेकानन्द (Swami Vivekanand)

स्वामी विवेकानन्द जी का जन्म 12 जनवरी, 1863 ई. में कलकत्ता के एक कायस्थ परिवार में हुआ था, इनके बचपन का नाम नरेन्द्र दत्त था। इनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक सुसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित वकील थे। इनकी माता भुवनेश्वरी देवी भी विदुषी महिला थीं। उनका पारिवारिक वातावरण धार्मिक था, इसलिए उन्हें बाल्यावस्था ही धर्म-कर्म, पूजा-पाठ तथा धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में रुचि हो गई।

इस धार्मिक वातावरण की गहराई ने इनको प्रारम्भ से ही गम्भीर, चिन्तनशील, धर्मनिष्ठ और कर्मनिष्ठ बना दिया। ज्ञान के प्रकाश से मोहित, आध्यात्मिक तेज से प्रदीप्त और चुम्बकीय आकर्षण से युक्त इनका व्यक्तित्व इतना प्रभावी था कि इनकी प्रशंसा करते हुए इनके प्राचार्य हेस्ट्री ने कहा था कि "नरेन्द्रदत्त वास्तव में प्रतिभाशाली हैं। मैंने विश्व के विभिन्न देशों की यात्राएँ की हैं, किन्तु किशोरावस्था में ही इसके समान योग्य एवं महान् क्षमताओं वाला युवक मुझे जर्मन विश्वविद्यालयों में भी नहीं मिला।" नरेन्द्र जी के

ऊपर स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी का गहरा प्रभाव पड़ा। उनके सम्पर्क में नरेन्द्र जी छः वर्ष तक रहे और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करके नरेन्द्र से स्वामी विवेकानन्द बन गए।

1886 ई. में स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी का निधन हो गया तथा स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु की स्मृति में 1 मई, 1897 ई. में रामकृष्ण मिशन स्थापित किया एवं उनके द्वारा दिए हुए वेदान्त के उपदेशों का एशिया, यूरोप और अमेरिका की जनता में आजीवन प्रचार किया। इन्होंने वेदान्त दर्शन से काफी कुछ सीखा था। स्वामी विवेकानन्द दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए 24 दिसम्बर, 1892 को कन्याकुमारी पहुँचे और तपस्या में लीन हो गए। कहा जाता है कि इन्हें यहाँ दिव्य अनुभूति हुई और यहाँ पर इन्होंने मातृभूमि की सेवा में अपने को समर्पित करने की प्रतिज्ञा की। अमेरिका के शिकागो नगर में रोमन कैथोलिक-ईसाइयों द्वारा आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में 11 सितम्बर, 1893 को दिए गए व्याख्यान ने सभी को अत्यधिक प्रभावित किया।

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने पश्चिमी मंच से पश्चिम के सम्मुख वेदान्त के सर्वोच्च सत्य की धारणा प्रस्तुत की। उनकी सार्वजनिक घोषणा ने एक सच्चे विश्व-बन्धुत्व की लहर उत्पन्न कर दी। संक्षेप में, स्वामी जी ने पाश्चात्य देशों में भावात्मक तथा भारत में क्रियात्मक वेदान्त का प्रचार करके हिन्दू धर्म की महानता को फैलाया। उन्होंने अपने अन्तिम दिनों में विश्व-बन्धुत्व के लिए भी प्रचार किया एवं 4 जुलाई, 1902 की रात्रि में स्वामी जी केवल 39 वर्ष की आयु में संसार छोड़कर चले गए।

www.studiestoday.com

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, "यदि शिक्षा का अर्थ सूचनाओं से होता, तो पुस्तकालय संसार के सर्वश्रेष्ठ सन्त होते तथा विश्वकोष ऋषि बन जाते' स्वामी जी के अनुसार, "शिक्षा का अर्थ मनुष्य में निहित शक्तियों का पूर्ण विकास है, न कि मात्र सूचनाओं का संग्रह है।"

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं

अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति

स्वामी जी के अनुसार, "ज्ञान बाहर से नहीं आता, बल्कि वह तो मनुष्य के भीतर होता है। इस अन्तर्निहित ज्ञान को अनावृत्त करना अर्थात् अपने अन्दर निहित ज्ञान का अन्वेषण करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।' अतः शिक्षा को मष्य के अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति करनी चाहिए।

शारीरिक एवं मानसिक विकास

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, "शिक्षा का उद्देश्य बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास है।" स्वामी जी कहते हैं कि लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है, जिससे कि बालक भविष्य में निर्भीक

एवं बलवान योद्धा के रुप में, गीता का अध्ययन करके देश की उन्नति कर सके। शिक्षा के मानसिक उद्देश्य पर बल देते हुए उन्होंने बताया कि हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिसे प्राप्त करके मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो जाए।

धार्मिक विकास

धार्मिक विकास भी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। स्वामी जी के अनुसार, "सत्यान्वेषण धर्म का प्रमुख लक्ष्य है, सत्य, ज्ञान स्वरुप है और शक्ति स्वरुप है।" अत: प्रत्येक व्यक्ति को उस सत्य अथवा धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जो उसके अन्दर छिपा हुआ है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, को पूजा-पाठ करने के लिए प्रेरित करे, जिससे वह अपने जीवन को पवित्र प्रत्येक मनुष्य बना सके।

विभिन्नता में एकता की खोज

स्वामी जी के अनुसार, "आध्यात्मिक और भौतिक जगत एक ही है। अत: विभिन्नता की अनुभूति मोक्ष अथवा माया है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि बालक विभिन्नता में एकता की अनुभूति करने लगे।"

चरित्र-निर्माण

स्वामी जी ने चरित्र-निर्माण को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना तथा इसके लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य पालन पर बल दिया और बताया कि ब्रह्मचर्य के द्वारा मनुष्य में बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ विकसित होंगी तथा वह मन, वचन और कर्म से पवित्र बन जाएगा। स्वामी जी के शब्दों में, "अपने चरित्र का निर्माण करो और अपनी प्रकृति स्वरुप उसी ज्योतिर्मय, उज्ज्वल, नित्य, शुद्ध स्वरुप को प्रकाशित करो तथा प्रत्येक व्यक्ति में उसी आत्मा जगाओ।'

राष्ट्रीयता का विकास

स्वामी जी ने शिक्षा का एक उद्देश्य राष्ट्रीय भावना का विकास करना बताया है। स्वामी जी के शब्दों में, "जो शिक्षा देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की प्रेरणा नहीं ती, उसे राष्ट्रीय शिक्षा नहीं कहा जा सकता।'

समाज सेवा और विश्व- बन्धुत्व की भावना का विकाय

स्वामी जी ने शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में समाज पथा और विशण प्रशुलन की भावना का विकास करना भी बताया। स्वामी जी के अनुसार, शिक्षा के द्वारा यह ज्ञान होना चाहिए कि "विश्व के प्रति हमारा बढ़ा कर्ना है, पटक ऋणी है, वह हमारा ऋणी नहीं है। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हम शिव के प्रति कुछ करने का अवसर मिल सके।"

व्यावसायिक क्षमता का विकास

"भारत एक निर्धन देश है तथा यहाँ के लोग मुश्किल से ही अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाते हैं।' स्वामी जी ने इस तथ्य को टय में अनुभव किया और उन्होंने माना कि कोरे अध्यात्म से ही काम नहीं चल सकता, जीविकोपार्जन के लिए किसी व्यवसाय में दक्षता प्राप्त करना भी आवश्यक है, इसके लिए उन्होंने बालक को शिक्षा के द्वारा व्यवसायों में प्रशिक्षित करने पर बल दिया।

www.studyforeducation.com

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण की जानकारी उनके द्वारा शिक्षा पाठ्यक्रम शिक्षण पद्धति अनुशासन, छात्र, अध्यापक, नारी शिक्षा. जन शिक्षा के विषय में दिए गए विचारों से पता चलता है, जो निम्नलिखित हैं

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा में योगदान

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन में प्रकृतिवाद, आदर्शवाद तथा प्रयोजनवाद आदि सभी मुख्य दार्शनिक विचारधाराओं की झलक दिखाई पड़ती है। स्वामी जी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में प्राचीन तथा आधुनिक विचारों का समन्वय है।

संक्षेप में भारतीय शिक्षा को उनकी देन का उल्लेख निम्नलिखित बिन्दुओं पर किया जा सकता है

- स्वामी जी ने वेदान्त को व्यावहारिक रुप प्रदान किया।
- स्वामी जी ने आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल दिया।
- स्वामी जी ने चरित्र -निर्माण में शिक्षा पर बल दिया।
- स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया।
- स्वामी जी की एक महत्त्वपूर्ण देन बालकों के लिए व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना था।
- स्वामी जी ने शारीरिक शिक्षा पर बल दिया है। स्वामी जी ने जन शिक्षा सम्बन्धी विचार पर बल दिया।
- स्वामी जी ने बालक की क्षमताओं के आधार पर शिक्षा की व्यवस्था करने पर बल दिया है।
- स्वामी जी ने शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के लिए ब्रह्मचर्य पर बल दिया है।
- स्वामी जी ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की है।

www.studyeducation.com

रवीन्द्रनाथ टैगोर (Rabindranath Tagore)

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म 6 मई, 1861 को कलकत्ता में हुआ था। इनके पिता प्रसिद्ध धर्म एवं समाज सुधारक महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर थे। गुरुदेव न केवल उच्च कोटि के विद्वान्, बल्कि एक महान् कवि, विचारक तथा महान् शिक्षाशास्त्री भी थे। उन्होंने साहित्य, कला, दर्शन के क्षेत्र में अपनी असाधारण उपलब्धियों से विश्व में भारत का मस्तक ऊँचा किया। गुरुदेव का जन्म एक सम्पन्न जमींदार परिवार में हुआ था। इन्हें सबसे पहले ओरिएण्टल सेमेनरी विद्यालय में भर्ती किया गया।

यहाँ पर उनका मन नहीं लगा इसलिए इनको वहाँ हटा लिया गया। इसके उपरान्त इन्हें नॉर्मल स्कूल में भर्ती किया गया। इस नॉर्मल स्कूल में वे परम्परागत बिटिशकालीन शिक्षा प्रणाली के सम्पर्क में आए. उनमें यहाँ पर इतने कर अनुभव हुए कि उसी समय उन्होंने शिक्षा प्रणाली में सुधार का संकल्प ले लिया तथा आगे चलकर शान्ति निकेतन की स्थापना द्वारा अपने संकल्प को पूर्त रुप प्रदान किया।

विद्यालय तो वे केवल नाममात्र को गए घर में धन-दौलत की कोई कमी नही थी। अत: उनकी प्रारम्भिक शिक्षा विद्यालय की अपेक्षा घर पर अधिक अच्छी हुई। घर पर ही उन्होंने संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, चित्रकला, संगीत आदि की शिक्षा प्राप्त की। 1877 ई. में वे कानून की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत गए, परन्तु वहाँ भी इनका मन नहीं लगा और वहाँ से लौट आए।

वर्ष 1901 में इन्होने बोलपुर के समीप शान्ति निकेतन की स्थापना की तथा उसके पश्चात् अपना समस्त जीवन उन्होंने शिक्षा, साहित्य व समाज की सेवा मेअर्पित कर दिया। उन्होंने राजनीतिक कार्यों में भी सफलतापूर्वक भाग लिया। वर्ष 1919 के उपरान्त राजनीति के कार्यो को करते हुए भी उनकी साहित्य साधना अनवरत् चलती रही। वर्ष 1941 में भारत के इस महान् पुत्र का निधन हो गया।

टैगोर के शिक्षा सम्बन्धी विचार

टैगोर ने अपने समय की शिक्षा को दोषपूर्ण बताया तथा शिक्षा के व्यापक अर्थ पर बल दिया। उन्होंने शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि "सर्वोत्तम शिक्षा वह है, जो हमें सूचना तथा ज्ञान ही प्रदान नहीं करती, वरन् हमारे जीवन का विश्व के समस्त जीवों के साथ मेल उत्पन्न करती है।"

शिक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है- "शिक्षा मस्तिष्क को अन्तिम सत्य खोजने योग्य बनाती है, जो सत्य हमें पार्थिव बन्धनों से मुक्त करता है और हमें वह धन देता है, जो सांसारिक वस्तु नहीं है, बल्कि आन्तरिक प्रकाश है, जो शक्ति नहीं है, बल्कि प्रेम है और जिसके कारण मानव उस सत्य को अपना बना लेता है और उसे ढंग से प्रकट करता है।"

उनका कहना है कि पुस्तकों की अपेक्षा प्रत्यक्ष रुप से जीवित व्यक्ति को जानने का प्रयास करना ही शिक्षा है।

www.studyofeducation.com

टैगोर के शिक्षा के उद्देश्य

टैगोर ने शिक्षा के उद्देश्य की पृथक् रुप से किसी भी स्थान पर चर्चा नहीं की है, तथापि उनके लेखों में शिक्षा के उद्देश्य सम्बन्धी विचार उनके लेखों में संकलित हैं। इन्हीं विचारों के आधार पर शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं

शारीरिक विकास

गुरुदेव शिक्षा के लिए स्वस्थ शरीर को महत्त्वपूर्ण मानते थे। अत: उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक विकास माना है। उनका कहना था कि शारीरिक विकास के लिए यदि आवश्यक हो, तो अध्ययन को कुछ समय के लिए छोड़ देना चाहिए।

बौद्धिक विकास

शारीरिक विकास के साथ-साथ उन्होंने बौद्धिक विकास पर भी बल दिया और शिक्षा का उद्देश्य बौद्धिक विकास करना बताया है, परन्तु बौद्धिक विकास के लिए उन्होंने पुस्तकीय शिक्षा का विरोध किया एवं जीवन तथा प्रकृति से प्रत्यक्ष रुप से ज्ञान प्राप्त करना

आवश्यक बताया। उनका मानना था कि इस प्रकार की शिक्षा से स्वतन्त्र चिन्तन एवं ज्ञानार्जन करने की क्रिया को प्रोत्साहन मिलता है। वे यह भी विश्वास करते थे कि बौद्धिक विकास तभी सम्भव हो सकता है, जब वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में प्रत्यक्ष रुप से ज्ञान प्राप्त किया जाए।

सामाजिक विकास

रैगोर व्यक्तिवादी होने के साथ साथ समाजवादी भी थे। ये समाज सेवा को शिक्षा का उत्तम लक्ष्य मानते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि समाज सामाजिक सेवा को उतना ही महत्त्वपूर्ण मानना चाहिए जितना व्यक्ति का व्यक्तित्व को।

नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास

टैगोर आदर्शवादी भी थे, इसलिए उन्होंने शिक्षा का उददेश्य व्यक्ति के पदा नैतिकता तथा आध्यात्मिक गुणों का विकास करना माना है।

राष्ट्रीयता का विकास

रवीन्द्रनाथ टैगोर राष्ट्रवादी सन्त थे और वे शिक्षा को राष्ट्रीय जागृति का गौत मानते थे। उन्होंने अपने विचारों, लेखों, कविताओं, गीतों आदि के माध्यम व्यक्ति को राष्ट्रप्रेम की ओर आकर्षित किया तथा उन्हें राष्ट्रीय एकता के अनुभूति कराई थी। वे शिक्षा को राष्ट्रीयता के विकास का एक सफल साधन मानते थे।

अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास

रवीन्द्रनाथ टैगोर वसुधैव कुटुम्बकम की धारणा में विश्वास करते थे तथा मान थे कि इसी से मानवता का विकास एवं दुःखों की समाप्ति हो सकती है। समस्त मानवता से प्रेम व सद्भावना रखने के पक्ष में थे। दूसरे शब्दों में, है विश्व बन्धुत्व में विश्वास करते थे।

इसी दृष्टि से उन्होंने शिक्षा में, अपने देश की भाषा संस्कृति के साथ अन्य देशों की भाषा संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया। उनका विश्वास था कि इस प्रकार की शिक्षा से विभिन्न राष्ट्रों मध्य सद्भावना व मैत्री स्थापित होगी। गुरुदेव का यह शिक्षा दर्शन वर्तमान में, जबकि वैश्वीकरण का दौर है, अत्यधिक प्रासंगिक है। इसके माध्यम से न केवल विश्व बन्धुत्व बल्कि विश्व शान्ति की अवधारणा भी साकार हो सकती है।

महात्मा गाँधी (Mahatma Gandhi)

विश्व के महानतम् राजनीतिज्ञ, दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री तथा भारत के राष्ट्रपिता श्री मोहनदास करमचन्द गाँधी का जन्म कठियावाड़ के पोरबन्दर नामक स्थान पर 2 अक्टूबर, 1869 को हुआ था। उनके पिता श्री करमचन्द गाँधी पोरबन्दर राज्य के दीवान

www.studyofeducation.com

थे। उनकी माता का नाम पुतलीबाई था। वे एक धार्मिक साध्वी एवं निष्ठावान नारी थीं। 13 वर्ष की आयु में गाँधीजी का विवाह कस्तूरबा के साथ हुआ।

1887 ई. में इन्होंने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की और इसी वर्ष कानून की शिक्षा पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड चले गए। 10 जून, 1891 में गाँधीजी बैरिस्टरी पास करके भारत वापस लौट आए। एक मुकदमे के सिलसिले में गाँधीजी 1893 ई. में दक्षिणी अफ्रीका गए। वहाँ पर भारतीयों की दुर्दशा देखकर वे बड़े दुःखी हुए और यहाँ से इनके जीवन की दिशा बदल गई। वहाँ पर भारतीयों में नव-जीवन एवं नव-निर्माण का कार्य गाँधीजी ने ही किया तथा वर्ष 1911 ट्रान्सवाल में गाँधीजी ने मिस्टर पोलक की सहायता से 'टॉलस्टॉय फार्म' की स्थापना की।

यहाँ पर बालकों की शिक्षा की व्यवस्था की गई वर्ष 1914 में गाँधीजी वापस आए। यहाँ उन्होंने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया तथा भारतीय राजनीति को एक नया मोड़ दिया। वर्ष 1917 में इन्होंने हरिजन उद्धार ग्रामोद्योग तथा अन्य सामाजिक सुधारों एवं रचनात्मक कार्यों को करने के लिए साबरमती आश्रम की स्थापना की।

वर्ष 1921 में गाँधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। वर्ष 1927 में देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए इनके द्वारा खादी आन्दोलन शुरु किया गया। वर्ष 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन किया गया। वर्ष 1997 में वर्धा बेसिक शिक्षा योजना का प्रारूप तैयार किया गया। वर्ष 1942 में गाँधीजी के नेतृत्व में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। इस आन्दोलन के दौरान गांधीजी को जेल जाना पड़ा और अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े इन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरुप 15 अगस्त, 1947 को अंग्रेजों ने भारत छोड़ दिया। भारत स्वतन्त्र हो गया, लेकिन देश का विभाजन हो गया और चारों ओर साम्प्रदायिक झगड़े हो गए। इन दंगों को रोकने के लिए गाँधीजी ने अथक् प्रयास किए। 80 जनवरी, 1948 को नाथूराम गोडसे नामक व्यक्ति ने गोली मारकर इनकी हत्या कर दी।

www.studyneducation.com

गाँधीजी के अनुसार शिक्षा का अर्थ

गाँधीजी ने शिक्षा का अर्थ समझाते हुए हरिजन में लिखा था कि "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के उत्कृष्ट एवं सर्वांगीण विकास से है, साक्षरता शिक्षा की न तो अन्तिम सीढ़ी है और न ही प्रथम सोपान। यह तो पुरुष-स्त्री को शिक्षित करने का एक साधन है, साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं कहला सकती।" उनका विश्वास था कि शिक्षा को बालक की समस्त शक्तियों का विकास करना चाहिए, जिससे वह पूर्ण मानव बन जाए। पूर्ण मानव का अर्थ बालक के व्यक्तित्व के चारों तत्त्वों-शरीर, हृदय, मन तथा आत्मा के समुचित विकास से है।

गाँधीजी के अनुसार, शिक्षा के द्वारा बालकों में सत्यम्, शिवम्,सुन्दरम् और विश्व बन्धुत्व आदि की भावनाओं का विकास करना चाहता है तथा ऐसे नागरिक उत्पन्न करना चाहते हैं, जो स्वावलम्बी हों, आत्माभिमानी और संयमी हों। गाँधीजी ने लिखा है कि "उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसका शरीर इतना सधा हुआ है कि वह उसके नियन्त्रण में रह सके और आराम व आसानी के साथ उसका बताया हुआ काम करे, उस आदमी को सच्ची शिक्षा (मिली है, जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शान्त और न्यायदर्शी है, उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका मन प्रकृति के नियमों से भरा है, जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं, जिसकी अन्तर्वृत्ति विशुद्ध

है और आदमी नीच आचरण को धिक्कारता है तथा दूसरों को अपने जैसा समझता है। ऐसा आदमी सचमुच में शिक्षा पाया हुआ माना जाता है।"

गाँधीजी के शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त

गाँधीजी की शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं

- शिक्षा द्वारा बालक में शारीरिक, मानसिक तथा चारित्रिक क्षमताओं को विकसित किया जा सकता है।
- शिक्षा का बालक-बालिकाओं में निहित समस्त मानवीय गुणों का विकास करना चाहिए। 7 से 14 वर्ष के बालकों की शिक्षा नि:शुल्क तथा अनिवार्य होनी चाहिए।
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए ताकि छात्र में उसके प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण उत्पन्न हो सके।
- शिक्षा ऐसी हो जिसे प्राप्त करके बालक किसी-न-किसी व्यवसाय में लग जाए। किसी उद्योग के द्वारा शिक्षा को स्वावलम्बी बनाना चाहिए।
- बालक की शिक्षा किसी लाभप्रद हस्तकला या दस्तकारी से प्रारम्भ होनी चाहिए, जिससे वह अपने भावी जीवन में अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके। स्कूल ऐसा होना चाहिए जहाँ बालक अनेक प्रकार के प्रयोगों द्वारा नई-नई खोजें करता रहे।
- शिक्षा के द्वारा बालकों में बन्धुत्व, सहयोग और समाज सेवा की माटा की जानी चाहिए।
- शिक्षा को बालक के व्यक्तित्व, शरीर, हृदय, मष्तिष्क और आत्मा की सामंजस्यपूर्ण विकास करना चाहिए अर्थात् मानव जाति का समय होता चाहिए।

महात्मा गाँधी की प्रमुख रचनाएँ

- सत्य के साथ प्रयोग
- अनाशक्ति योग टीका
- सर्वोदय 'हरिजन' (पत्रिका)

गाँधी जी के शिक्षा के उद्देश्य

गाँधीजी ने शिक्षा के निम्नलिखित तात्कालिक उद्देश्य सुझाए हैं

गाँधीजी ने मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में विभक्त किया है

तात्कालिक उद्देश्य

सन्तुलित व्यक्तित्व का उद्देश्य गाँधीजी के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण कर उसे विकसित करना है। व्यक्तित्व के निर्धारक (मानसिक, संवेगात्मक, शारीरिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक) अर्थात् सभी में सन्तुलन एवं सामंजस्य रखते

www.studyofeducation.com

हुए उन्हें विकसित करना। गाँधीजी के अनुसार, "शरीर, मन तथा आत्मा का उचित सामंजस्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व की रचना करता है और यहाँ शिक्षा की सच्ची मितव्ययिता का निर्माण करता है।"

जीविकोपार्जन का उद्देश्य गाँधीजी ने शिक्षा को जीविकोपार्जन का प्रमुख उद्देश्य माना है। यदि शिक्षा जो उसे रोजी-रोटी न दे सके, आत्मनिर्भर न बनाए, बेरोजगार रहने दे, तो वह व्यर्थ है। बिना आत्मनिर्भरता के व्यक्तित्व का कोई भी पक्ष विकसित नहीं हो सकता। अतः उन्होंने आत्मनिर्भर शिक्षा पर बल देते हुए बताया कि शिक्षा का उद्देश्य जीविकोपार्जन होना चाहिए, जिससे प्रत्येक बालक अपने जीवन में स्वावलम्बी बन जाए।

नैतिक या आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य गाँधीजी ने शिक्षा का उद्देश्य सर्वप्रथम वैयक्तिक विकास माना है, वैयक्तिक गुणों के विकास के बिना वह सामाजिक विकास के बारे में कुछ भी सोच नहीं सकते। गाँधीजी ने वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के उद्देश्य को एक-दूसरे का पूरक कहा है। अतः दोनों में समन्वय करके ही राष्ट्र या समाज का विकास सम्भव है। गाँधीजी ने विद्यालय को सामुदायिक केन्द्र माना ताकि दोनों में एक-दूसरे के समीप आकर सेवा एवं सामाजिक सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

सांस्कृतिक उद्देश्य गाँधीजी भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त थे गाँधीजी कहते थे कि शिक्षा के द्वारा बालक को अपने व्यवहार में अपनी संस्कृति को व्यक्त करने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उन्होंने एक बार कहा था कि "मैं शिक्षा के सांस्कृतिक पक्ष को उसके साहित्यिक पक्ष से अधिक महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। संस्कृति शिक्षा का आधार है। अतः मानव के प्रत्येक व्यवहार संस्कृति की छाप होनी चाहिए।"

मुक्ति का उद्देश्य 'सा विद्या या विमुक्तये' गाँधीजी के इस आदर्श के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सांसारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाना है और उसकी आत्मा को उन्नत जीवन की ओर ले जाना है। गाँधीजी शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को आध्यात्मिक स्वतन्त्रता देना चाहते थे, जिससे उसकी आत्मा का विकास हो सके।

www.studyofeducation.com

सर्वोच्च उद्देश्य

गांधीजी के अनुसार, "शिक्षा सर्वोच्च उद्देश्य है, अन्तिम वास्तविकता का अनुभव, ईश्वर और आत्मानुभूति का ज्ञान। इस उद्देश्य के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे व्यक्ति अन्तिम वास्तविकता को पहचान सके और अपने नश्वर शरीर को ईश्वर में विलीन न कर सके।'

महात्मा गाँधी के शिक्षा के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण की जानकारी उनके द्वारा शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि शिक्षक, छात्र, विद्यालय, अनुशासन आदि के विषय में दिए गए विचारों में दिखाई देता है।

गाँधीजी का शिक्षा में योगदान

गाँधीजी के दर्शन का आधार आदर्शवाद है तथा प्रकृतिवाद एवं प्रयोजनवाद मात्र उसके सहायक है। गाँधीजी का शिक्षा-दर्शन क्योंकि बालक की प्रकृति पर पूरा ध्यान देता है, इसलिए वह प्रकृतिवादी है, यह दर्शन बालक को उसकी रुचि के अनुसार सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर क्रिया करके सीखने पर बल देता है। अतः वह इस अर्थ में प्रयोजनवादी है।

आदर्शवाद वह इस अर्थ में है, क्योंकि गाँधीजी शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति को मानते हैं, वे बालकों को सत्य और अहिंसा का अमर पाठ पढ़ाना चाहते हैं।

डॉ. एम एस पटेल के अनुसार, "दार्शनिक के रूप में गाँधीजी की महानता इस बात में है कि उनके शिक्षा दर्शन में प्रकृतिवाद, आदर्शवाद और प्रयोजनवाद को मुख्य प्रवृत्तियाँ अलग और स्वतन्त्र नहीं हैं वरन् वे सब मिल-जुलकर एक हो गई हैं, जिससे ऐसे शिक्षा-दर्शन का जन्म हुआ है, जो आज की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त होगा, मानव आत्मा को सवोच्च आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करेगा।"

गाँधीजी की भारतीय शिक्षा को सबसे बड़ी, सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे मूल्यवान देन वर्धा योजना है। गाँधीजी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों के आधार पर हम निर्विवाद रुप से यह कह सकते हैं कि महात्मा गाँधी इस युग के महान् शिक्षार्थी थे। हुमायूँ कबीर के अनुसार, "गाँधीजी की राष्ट्र को बहुत-बहुत देनों में नवीन शिक्षा के प्रयोग की देन सर्वोत्तम है।"

वर्धा शिक्षा योजना - 23 अक्टूबर, 1937 में वर्धा में मारवाड़ी राष्ट्रीय हाईस्कूल में आयोजित शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए गाँधीजी ने कहा था कि "मेरी शिक्षा योजना का तात्पर्य यह नहीं है कि बालक पढ़ाई के साथ धन्धों को सीखे, बल्कि तात्पर्य यह है कि बालकों को जो भी ज्ञान दिया जाए, वह किसी उद्योग अथवा दस्तकारी द्वारा ही दिया जाए।" दस्तकारी के उद्देश्य को समझाते हुए गाँधीजी ने कहा, "मेरा उद्देश्य तो उद्योग या दस्तकारी द्वारा बालक के मस्तिष्क को सुन्दर बनाना है।" इस सम्मेलन में बेसिक शिक्षा की नींव डाली गई। इसलिए बेसिक शिक्षा वर्धा शिक्षा योजना भी कहलाती है। "

www.studyofeducation.com

श्री अरबिन्दो (Aurobindo)

श्री अरबिन्दो का जन्म 15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता के प्रसिद्ध घोष परिवार में हुआ था। उनके पिता डॉ. कृष्णन घोष एक मेडिकल ऑफिसर थे। श्री अरबिन्दो को मात्र सात वर्ष की आयु में ही इंग्लैण्ड पढ़ने भेज दिया गया। वहाँ वे 21 वर्ष की अवस्था तक रहे, वहाँ पर उन्होंने यूनानी तथा लैटिन साहित्य का अध्ययन किया तथा 1893 ई. में वापस भारत आ गए। हालाँकि इंग्लैण्ड में रहकर वे यूरोपीय युवा बन चुके थे, फिर भी वे ब्रिटेन में स्थापित इण्डिया मजलिस तथा लोटस एण्ड हैंगर आदि संस्थाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। मैजिी तथा गैरीबाल्डी के जीवन चरित्र का भी उन पर काफी प्रभाव पड़ा। ब्रिटेन में रहते हुए ही उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आलोचना करते हुए कुछ लेख प्रकाशित किए, जिस कारण अंग्रेजी शासकों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ।

भारत वापस आने के पश्चात् भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता गया तथा बड़ौदा में प्रोफेसर रहते हुए उन्होंने भारतीय दर्शन का गहन अध्ययन किया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द के वैदान्तिक समन्वय का भी उन पर विशेष प्रभाव पड़ा

वर्ष 1905 से बंगाल में राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। इस कारण वे भी इसमें सक्रिय हो गए। उस समय उनके त्याग एवं राष्ट्रीय विचारधारा के कारण लोग उनसे प्रभावित हुए। उनका विचार था कि ब्रिटिश शासन तथा पश्चिमी विचारधारा दोनों ही हिन्दुत्व के लिए खतरनाक हैं। उन्होंने अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से क्रान्तिकारी उग्रवाद में सम्मिलित होकर अपने साथियों की मदद से ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष छेड़ दिया, इसी कारण वर्ष 1908 के अलीपुर बम काण्ड में वे जेल भेज दिए गए।

वर्ष 1910 में जेल बाहर आने पर उन्होंने अपने आप को राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक् कर लिया तथा पाण्डिचेरी जाकर आध्यात्मिक जीवन आरम्भ किया। उन्होंने लिखा है कि "अलीपुर जेल में उन्हें रहस्यात्मक अलौकिक शक्तियों से साक्षात्कार हुआ था। उन्हीं की प्रेरणा से आध्यात्मिक रास्ते पर चल पड़े।" पाण्डिचेरी में उन्होंने अरबिन्दो आश्रम की स्थापना की, जो आज भी उनके विचारों को फैला रहा है। 5 दिसम्बर , 1950 को उनका देहान्त हो गया।

www.studyofeducation.com

श्री अरबिन्दो के अनुसार शिक्षा का अर्थ

अरबिन्दो घोष ने समग्र शिक्षा की संकल्पना प्रस्तुत की। वे भारत की प्रचलित शिक्षा के विरोधी थे। वे कहते थे कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त भारतीय शिक्षा की रुपरेखा में परिवर्तन तो अवश्य आ गया है, परन्तु वह अब भी बालकों के मस्तिष्क, आत्मा तथा चरित्र एवं राष्ट्र को आवश्यकताओं के अनुरुप नहीं है। उनके मतानुसार हमारी शिक्षा को आधुनिक जीवन की आवश्यकतानुसार होना चाहिए।

दूसरे शब्दों में, महर्षि अरबिन्दो ऐसी शिक्षा पद्धति का पक्ष पोषण करना चाहते थे, जो बालकों को कर्मठ नागरिक बनाए तथा आधुनिक युग की आवश्यकताओं को पूरा कराने में समर्थ हो। वे स्वयं लिखते हैं- "सच्ची शिक्षा को मशीन से बना हुआ सूत नहीं होना चाहिए, अपितु इसको मानव के मस्तिष्क तथा आत्मा की शक्तियों का निर्माण अथवा जीवित उत्कर्ष करना चाहिए।"

श्री अरबिन्दो शिक्षा को मुख्य अंग के रूप में अन्त:करण को स्वीकार करते हैं। अन्तःकरण के उन्होंने चार स्तर बताए—चित्त, मानस, बुद्धि और ज्ञान। इन सभी शक्तियों का क्रमिक विकास होता है। अत: उनके अनुसार शिक्षा का प्रमुख दायित्व है-अन्त:करण की इन शक्तियों का विकास करना। उनके अनुसार, "शिक्षा मात्र ज्ञान की प्राप्ति नहीं है वरन् शिक्षा वह है, जो मानव का पूर्ण विकास करने की क्षमता रखती हो।" "सूचनाओं का संग्रह मात्र शिक्षा नहीं, सूचनाएँ ज्ञान की नींव नहीं हो सकती।

वे अधिक-से-अधिक वह सामग्री हो सकती हैं, जिनके द्वारा जानने वाला अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकता है अथवा वे वह बिन्दु हैं जहाँ से ज्ञान को आरम्भ किया जाए उनका मानना था कि मानव अन्य मानवों की सेवा करते हुए स्वयं को अतिमानस में बदल सकता है। नई खोजों को निकालना प्रारम्भ किया जाए वह शिक्षा जो अपने को ज्ञान देने तक सीमित रखती है, वह शिक्षा नहीं है।"

अरबिन्दो की प्रमुख रचनाएँ

- द लाइफ डिवाइन
- ह्यूमन सायकल
- सावित्री
- द मिस्ट्री ऑफ गीता
- द सिन्थेसिस ऑफ योगा

श्री अरबिन्दो के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

श्री अरबिन्दो के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं

शारीरिक विकास व शुद्धि

श्री अरबिन्दो के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य बालक के शरीर का पूर्ण एवं शुद्ध विकास करना है। उनका विश्वास था "शरीरम् खलु धर्म साधनम्" अर्थात् शरीर के माध्यम से ही धर्म की साधना होती है। अतः उन्होंने बालक के शारीरिक विकास पर ही बल नहीं दिया, अपितु इनके अन्तर्गत शारीरिक शुद्धि को भी शामिल किया और बताया कि शरीर के उचित विकास उसकी शुद्धि के बिना मानव का आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता।

ज्ञानेन्द्रियों का विकास

श्री अरबिन्दो के अनुसार, शिक्षा का दूसरा उद्देश्य बालक की दृष्टि, श्रवण एवं घ्राण स्वाद आदि सभी ज्ञानेन्द्रियों का पूर्ण प्रशिक्षण है। उनका विश्वास था कि उक्त ज्ञानेन्द्रियों का स्वस्थ विकास उसी समय हो सकता है, जब स्नायु, चित्त, मन, शुद्ध हो। इनके अभ्युपगमन के अनुसार शिक्षा चेतना के निम्न स्तर् को धीरे-धीरे उच्चतम स्तर पर ले जाती है, जिसे प्रज्ञान कहा जाता है। अत: शिक्षा और साधना द्वारा सबसे पहले ज्ञानेन्द्रियों को शुद्ध कर लेना परम आवश्यक है।

मानसिक विकास

श्री अरबिन्दो के अनुसार, शिक्षा का तीसरा उद्देश्य बालक का मानसिक विकास है। मानसिक विकास से उनका तात्पर्य स्मृति, चिन्तन, तर्क, कल्पना तथा निर्णय आदि मानसिक शक्तियों से था। अतः शिक्षा को उक्त सभी मानसिक शक्तियों का विकास करना चाहिए।

नैतिकता का विकास

www.studyofeducation.com

श्री अरबिन्दो ने बालक में नैतिकता के विकास को भी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य माना है। उन्होंने बताया कि बिना नैतिक तथा संवेगात्मक पूर्णता के मानसिक शिक्षा मानव प्रगति के लिए हानिकारक है। अतः श्री अरबिन्दो ने स्पष्ट शब्दों में बताया कि मानव के नैतिक विकास के लिए संवेग, संस्कार या आदतें तथा स्वभाव अथवा प्रकृति तीन मुख्य बातें हैं।

वे इन तीन बातों को शिक्षा के द्वारा शुद्ध व सुन्दर बनाकर मानव हृदय को प्रशिक्षित करना चाहते थे, जिससे कि वह समस्त प्राणियों के साथ प्रेम तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते हुए एक उत्तम नैतिक जीवन व्यतीत कर सकें। श्री अरबिन्दो ने बताया है कि शिक्षक के आदर्शों को इतना उत्तम होना चाहिए कि बालक उनका हृदय से अनुकरण करके जीवन की उच्चतम अवस्थाओं को प्राप्त करते रहे।

अन्तःकरण का विकास

अरबिन्दो के अनुसार, शिक्षा का प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण उद्देश्य -अन्तःकरण का विकास करना। उनके मतानुसार अन्तःकरण के चार स्तर चित्त, मानस, बुद्धि तथा ज्ञान हैं, का विकास करना चाहिए।

आध्यात्मिक विकास

श्री अरबिन्दो ने बताया कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का प्राण्यायिक विकास करना है। उनके मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति में कुछ टैवीय अत्र होता है। शिक्षा के द्वारा इस दैवीय अंश को खोजकर विकसित करके आध्यात्मिक पूर्णता के ओर अग्रसर किया जा सकता है। "शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए विति होने वाली आत्मा का विकास करना, जो उसमें सर्वोतम है उसे व्यर करना तथा उसे श्रेष्ठ कार्य के लिए पूर्ण बनाना।"

www.studyofeducation.com

विशेष क्षमताओं का विकास

श्री अरबिन्दो के अनुसार, शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य व्यक्ति की अम्ता का विकास करना है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष शक्तियाँ तथा क्षमताएँ होती है. जिनका विकास होने के पश्चात् ही वह अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा - श्री अरबिन्दो ने भारत की विदेशी शिक्षा नीति की आलोचना की त्या राष्ट्रीय शिक्षा की पूरी रुपरेखा प्रस्तुत की। उनके अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा उस शिक्षा को कहा जाता है, जो राष्ट्र के लोगों को राष्ट्रीय पद्धति से राष्ट्र के नियन्त्रण में दी जाती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनका विचार था कि भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता का अत्यधिक महत्त्व है, शिक्षा का आधार आध्यात्मिकता त्या ब्रह्मचर्य होना चाहिए। भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने पर भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास होगा ऐसा उनका मानना था।

जे कृष्णामूर्ति (JKrishnamurthy)

जे कृष्णामूर्ति का जन्म तमिलनाडु के एक गरीब ब्राह्मण परिवार में 1895 ई. में हुआ था। ये दस वर्ष के ही थे तब इनकी माता का देहान्त हो गया। उस समय तक थियोसॉफिकल सोसायटी पूरे विश्व में अपनी जड़ें जमा रही थी। इनकी प्रतिभाओं से प्रभावित होकर बचपन में ही एनी बेसेण्ट ने इन्हें गोद ले लिया तथा वर्ष 1912 में शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड भेज दिया। वर्ष 1921 में कृष्णामूर्ति भारत वापस लौट आए।

वर्ष 1927 में एनी बेसेण्ट ने इन्हें 'विश्व गुरु' घोषित कर दिया, परन्तु दो ही वर्षों में कृष्णामूर्ति ने थियोसोफिकल सोसायटी से सम्बन्ध तोड़ लिया और स्वतन्त्र चिन्तक बन गए। उन्होंने 'ऑर्डर ऑफ द स्टार' (आध्यात्मिक संस्था) को भंग (करते हुए कहा कि "अब से कृपा करके याद रखें कि मेरा कोई शिष्य नहीं है, क्योंकि गुरु तो सत्य को दबाते हैं और सत्य तो स्वयं तुम्हारे भीतर है। सत्य को ढूँढने के लिए मनुष्यों को सभी बन्धनों से स्वतन्त्र होना आवश्यक है।"

कृष्णामूर्ति ने तर्क दिया कि "एक सिस्टम आदमी को नहीं बदल सकता, बल्कि आदमी सिस्टम को बदलते हैं।" कृष्णामूर्ति ने अपने पूरे जीवन भर कई देशो को यात्राएँ की। नए लोगों से मिले तथा लोगों को अपने विचारों से प्रभावित किया। इस प्रकार उन्होंने अपना पूरा जीवन एक शिक्षक और छात्र की तरह बिताया और यह बताया कि किस प्रकार सर्वप्रथम मनुष्य के मनुष्य होने से ही मुक्ति की शुरुआत होती है।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान कृष्णामूर्ति की लेखक एल्डस हक्सले से दोस्ती हुई। हक्सले ने इन्हें अपने विचारों को लिखने के लिए प्रेरित किया। इनकी कई लेख तथा पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनमें शिक्षा और जीवन का महत्त्व (1953), पहली और आखिर स्वतन्त्रता (1954) प्रमुख हैं। इन्होंने अपने जीवन काल में अनेक शिक्षण संस्थानों की स्थापना की, जिनमें दक्षिण भारत का 'ऋषिवैली' स्कूल प्रमुख है।

भारत के इस महान् व्यक्तित्व की 91 वर्ष की आयु 17 फरवरी, 1986 ई. में मृत्यु हुई। ओशो का मानना था कि कृष्णामूर्ति अमर है इसलिए इनकी मृत्यु पर दुःखी नहीं होना चाहिए।

कृष्णामूर्ति के अनुसार शिक्षा का अर्थ

जे कृष्णामूर्ति के अनुसार, "शिक्षा का सबसे बड़ा कार्य एक ऐसे समग्र व्यक्तित्व का विकास करना है, जो जीवन को समग्रता को पहचान सके।" इन्होने शिक्षा के महत्त्व पर विशेष बल दिया है। शिक्षा इनके विचारों का मुख्य तत्त्व है। उन्होंने कहा है कि बच्चे शिक्षा पाने दौरान सभी प्रकार की कठिनाइयों से निपटना सीखते हैं।

" शिक्षा के द्वारा ही उनके विचार सकारात्मक दृष्टिकोण में परिपक्व होते हैं तथा उन्हें कठिन परिश्रम के महत्त्व का ज्ञान होता है। उनका मानना था कि शिक्षा के सन्दर्भ में जागरुकता बच्चों के अन्दर मनुष्य के साथ, प्रकृति के साथ तथा मानव निर्मित यन्त्रों के

www.studyinfoeducation.com

साथ सही सम्बन्ध को परिपक्व करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। कृष्णामूर्ति ने शिक्षा मे आन्तरिक अनुशासन पर बल देते हुए कहा है बाहरी अनुशासन मन को मूर्ख बना देता है। यह नकल करने की प्रवृत्ति लाता है। जे. कृष्णामूर्ति अपने शैक्षिक विचारों के माध्यम से शिक्षक एवं छात्र दोनों को यह दायित्व सौंपते हैं कि वे एक अच्छे समाज का निर्माण करें, जिससे सभी मनुष्य बिना किसी हिंसा के शान्ति एवं सुरक्षा के साथ प्रसनतापूर्वक जीवन-यापन कर सकें। उनका मानना था कि यह कार्य शिक्षक एवं विद्यार्थियों के माध्यम से ही सम्भव है, क्योकि "आज के विद्यार्थी ही कल के भविष्य हैं।"

जे. कृष्णामूर्ति की प्रमुख रचनाएँ

- एट द फीट ऑफ द मास्टर (1910)
- एजुकेशन एण्ड द सिग्नीफिकेन्स ऑफ लाइफ (1953)
- प्रथम और अन्तिम मुक्ति (1954)
- फ्रीडम फ्रॉम द नोन (1969)
- द अवेकिंग ऑफ इण्टेलीजेन्स (1973)
- द बुक ऑफ लाइफ (1995)

पाउलो फ्रेरे (Paulo Freire)

पाउलो फ्रेरे ब्राजील के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाविद् थे। इनका जन्म 19 सितम्बर, 1921 को ब्राजील में एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। वर्ष 1934 में इनके पिता की मृत्यु हो गई, जिससे इन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वर्ष 1934 में रेसिफ विश्वविद्यालय में लॉ के लिए दाखिला लिया तथा दर्शन एवं भाषा मनोविज्ञान का अध्ययन किया। इसके पश्चात् एक अध्यापक के रुप में माध्यमिक विद्यालय में कार्य किया। वर्ष 1946 में फ्रेरे को पार्नम्बुकों की स्थिति में सामाजिक सेवा के शिक्षा और संस्कृति विभाग का निदेशक नियुक्त किया गया तथा वर्ष 1961 में इन्हें रेसिफ विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक विस्तार विभाग का निदेशक नियुक्त किया गया। अपने सिद्धान्तों के अनुप्रयोगों में इन्होंने वर्ष 1962 में मात्र 45 दिनों में गन्ने के 300 श्रमिकों को पढ़ना लिखना सिखाया।

वर्ष 1967 में फ्रेरे ने अपनी पहली पुस्तक 'एजुकेशन इज द प्रैक्टिस ऑफ फ्रीडम' प्रकाशित की। इन्होंने अपनी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'पेडागाँगी ऑफ द ऑपरेस्ड' के साथ इसे पहली बार वर्ष 1968 में पुर्तगाली में प्रकाशित किया। फ्रेरे ने मैसाचुसेट्स, संयुक्त राज्य अमेरिका, जेनेवा, स्विट्जरलैण्ड की यात्रा की। इस दौरान इन्होंने शिक्षा सुधार सलाहकार के रुप में कार्य किया, विशेष रूप से गिनी-विसाड और मोजाम्बिक में।

फ्रेरे साओ पाउलो शहर में श्रमिक पार्टी में शामिल होकर (1980-1986) प्रौढ़ साक्षरता परियोजना में पर्यवेक्षक रुप में कार्य किया तथा प्रौढ़ साक्षरता मिशन को आगे बढ़ाया। वर्ष 1988 में इन्हें साओ पाउलो में शिक्षा सचिव नियुक्त किया गया। इन्होंने शिक्षा के

www.studyofeducation.com

सन्दर्भ में अपना विशेष योगदान दिया तथा शिक्षा को सामान्य लोगों तक पहुंचाया। 2 मई, 1997 को साओ पाउलो में दिल के दौरे । कारण इनका निधन हो गया।

पाउलो फ्रेरे के अनुसार शिक्षा

फ्रेरे के अनुसार शिक्षा एक साधन के रुप में कार्य करती है, जो पीढ़ियों को वर्तमान प्रणाली तर्क में एकीकरण की सुविधा प्रदान करती है और इसके अनुरूप बना देती है या यह स्वतन्त्रता का अभ्यास बन जाती है, जिसका अर्थ है पुरुष एवं महिलाएँ वास्तविकता के साथ समीक्षकों से निपटते हैं और उन्हें यह पता चल जाता है कि उन्हें दुनिया के परिवर्तनों में कैसे भाग लेना है। इन्होंने शिक्षा के एक ऐसे दर्शन का योगदान दिया है जोकि न केवल प्लेटो से वन क्लासिकल दृष्टिकोण बल्कि आधुनिक मार्क्सवादी और उपनिवेशवादी विचारकों से भी आया है। फ्रेरे 'क्रिटिकल शिक्षण' (Critical Pedagogy) के पक्षधर थे। उनकी कृति 'दलितों का शिक्षण' बहुत प्रसिद्ध रही है। यह क्रिटीकल शिक्षण आन्दोलन की आधारभूत पुस्तक है। वर्ष 1991 में फ्रेरे ने साओ पाउलो में एक इंस्टीट्यूट स्थापित किया जोकि लोकप्रिय शिक्षा के सिद्धान्तों को विस्तृत करता है। इस संस्थान की वर्तमान में कई देशों में शाखाएँ है।

www.studyofeducation.com

पाउलो फ्रेरे की प्रमुख रचनाएँ

- पेडागॉगी ऑफ द ऑपरेस्ड, 1968
- कल्चर एक्शन फॉर फ्रीडम, 1970
- एजुकेशन फॉर कॉनसियसनेस, 1973
- पेडागॉगी इन प्रोसेस, 1978
- द पॉलिटिक्स ऑफ एजुकेशन : कल्चर पॉवर एण्ड लिवरेशन, 1985
- ए. पेडागॉगी फॉर लिबरेशन, 1987
- पेडागॉगी ऑफ द सिटी, 1991
- पेडागॉगी ऑफ हॉप : रेलिविंग पेडागॉगी ऑफ द ऑपरेस्ड, 1992
- पेडागॉगी ऑफ फ्रीडम, 1996
- पेडागॉगी ऑफ हर्ट, 1997

मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट (Marry Wollstonecraft)

मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट अंग्रेजी लेखक, आधुनिक नारीवादी, दार्शनिक एवं महिला अधिकार समर्थक थीं। इनका जन्म 27 अप्रैल, 1759 को लन्दन में हुआ। इन्होंने अपने पूरे जीवन भर महिला विरुद्ध सामाजिक सम्मेलनों को चुनौती दी तथा प्रतिबन्धित सामाजिक

मानदण्डों की आलोचना की। इसलिए इन्हें नारीवादी आन्दोलनों का अग्रदूत तथा नारीवादी दर्शन के प्रारम्भिक उदाहरणों में से एक माना जाता है। समाज में प्रचलित सामाजिक सम्मेलनों के विरोधाभास में वोलस्टोनक्राफ्ट ने एक लेखक के रूप में कैरियर की शुरुआत की। एक संस्थापक फेमनिस्ट दार्शनिक के रुप में वोलस्टोनक्राफ्ट के सबसे प्रसिद्ध कार्यो में विनडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ मेन' शामिल हैं, जो ब्रिटिश संसद के एडमण्ड बर्क द्वारा फ्रांसीसी क्रान्ति की आलोचना की प्रतिक्रिया है। वोलस्टोनक्राफ्ट ने रिपब्लिकवाद की वकालत की और वंशानुगत विशेषाधिकार के लिए तर्क के समर्थन पर हमला किया।

वर्ष 1792 में महिलाओं के अधिकारों पर एक लेख लिखा; राजनैतिक और नैतिक विषयों पर सरलता के साथ। इनके इस कार्य ने इस तर्क को उन्नत किया कि महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिए जाने चाहिए। वोलस्टोनक्राफ्ट अपने पूरे जीवन महिलाओं के सम्मान एवं अधिकार के लिए निरन्तर प्रयासरत् रहीं। मात्र 38 वर्ष की अवस्था में 10 सितम्बर, 1797 में इनकी मृत्यु हो गई।

इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पति गॉडविन ने महिलाओं के अधिकारों के एक विरोधाभास के लेख को अपने संस्मरण में लिखा, जो उनकी पत्नी के काम का उत्सव था। वोलस्टोनक्राफ्ट को एक ग्राउण्डब्रेकिंग थिंकर एवं आधुनिक नस्लवादी आन्दोलन के अग्रदूत के रुप में जाना जाता है।

मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट के अनुसार शिक्षा

मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट के अनुसार समाज के सभी व्यक्तियों लिए शिक्षा आवश्यक तत्त्व है। इन्होंने अपने संक्षिप्त कैरियर के दौरान उपन्यास एवं पुस्तकें लिखीं, जिसमें इन्होंने बच्चों, युवाओं, महिलाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया। जिसमें 'ए विनडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वोमेन', 'विथ स्ट्रिक्टर्स ऑन पॉलिटिकल एण्ड मोलर सब्जेक्ट' महत्त्वपूर्ण है। इसमें इन्होंने तर्क दिया है कि महिलाएँ स्वाभाविक रुप से पुरुषों से बौद्धिक रुप से कमजोर इसलिए होती हैं, क्योंकि उसके पास शिक्षा की कमी होती है। इसलिए पुरुषों तथा महिलाओं को तर्कसंगत मानकर, तर्क पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

इन्होंने यह उल्लेखित की कि 1700 के दशक में लड़कियों की शिक्षा सीमित थी, वहीं 18वीं सदी में शिक्षा प्राप्त करने वाली भाग्यशाली लड़कियों को नृत्य, चाय परोसना, ड्राइंग और बुनियादी कौशल की कला सिखाई जाती थी। महिलाओं की स्थिति को देखते हुए, इन्होंने लड़कियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया और महिलाओं के लिए अल्पकालिक स्कूल की स्थापना की। साथ ही उभरते बच्चों को शिक्षित करने के साथ आत्मविश्वास, अनुशासन, ईमानदारी, सामाजिक सन्तोष जैसे महत्त्वपूर्ण पक्षों पर बल दिया। इनका मानना था कि शिक्षा तर्क से पढ़ने को प्रेरित करने के साथ, व्यक्ति के विकास को बढ़ाने में सहायक होती है। अतः समाज में अच्छी तरह से शिक्षित महिलाएँ होंगी, तो अच्छी माताएँ तथा पत्नियाँ होंगी, जो राष्ट्र के विकास में सकारात्मक योगदान देंगी। इस प्रकार इन्होंने शिक्षा की आवश्यकता को पुरुषों एवं महिलाओं के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण बताया। इसके साथ ही पुरुषों के समान महिलाओं के भी संसदीय प्रतिनिधित्व के अधिकार का भी आह्वान किया। अत: इन्होंने महिला शिक्षा के मार्ग को प्रशस्त किया, जो वर्तमान में भी समाज में महिलाओं को प्रेरित करती है।

www.studyofeducation.com

मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट की प्रमुख रचनाएँ

- थॉट ऑन द एजुकेशन ऑफ डॉटर्स, 1787
- मैरी ए फिक्शन, 1788
- ऑरिजनल स्टोरी फ्रॉम रीयल लाइफ : विथ कन्वर्सेशन कल्कुलेटेड टू रेग्युलेट एजेक्शन एण्ड फ्रॉम द माइण्ड टू टूथ एण्ड गुडनेश, 1788
- ए विनडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ मेन, इन ए लेटर टू द राइट ऑनरेबल ईडमुण्ड ब्रुके, 1790
- मैरी एण्ड मारिया, 1791
- ए विनडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वोमेन : विथ स्ट्रिक्टर्स ऑन पोलिटिक्स एण्ड मोरल सब्जेक्ट्स, 1792
- मारिया : और द रौंग्स ऑफ वोमेन, 1798

नेल नौडिंग्स (Nel Nodding)

निल नौडिंग्स अमेरिका की प्रसिद्ध दार्शनिक तथा शिक्षाविद् हैं। इनका जन्म 19 जनवरी, 1929 को अमेरिका में हुआ था। इन्होंने नई जर्सी के मोण्टक्लेयर स्टेट कॉलेज से स्नातक की डिग्री प्राप्त की तथा स्टेनफोर्ड ग्रेजुएट स्कूल ऑफ एजुकेशन से शिक्षाशास्त्र में पी. एच. डी. की। नौडिंग्स ने शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों कार्य किया। उन्होंने अपने जीवन के 17 वर्ष प्राथमिक पाठशाला में तथा हाई स्कूल विद्यालय में गणित के शिक्षक के रूप में कार्य किया। वर्ष 1977 में ये स्टेनफोर्ड संकाय की सदस्य बनी तथा वर्ष 1992 से 1998 तक प्रोफसर के पट पर कार्यरत् रहीं।

स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी की ओर से इन्हें वर्ष 1981, 1982, 1987 में शिक्षण उत्कृष्टता पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके पश्चात् इन्होंने युनिवर्सिटी के डीन के रुप में चार वर्ष कार्य किया। स्टेनफोर्ट से सेवानिवृति य कोलम्बिया तथा कोलगेट यूनिवर्सिटी में कार्यरत् रहीं। यह दर्शन शिक्षा संस्था तथा जॉन डी वी संस्था की अध्यक्षा रहीं। इन्होंने शिक्षा के विकास एवं उत्थान के लिए इनकी कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकासित हुई, जिसमें अबेकिंग द इनर आई : इन्ट्यूशन इन एजुकेशन, वॉमेन एण्ड एविल, हैपीनेश इन एजुकेशन, फिलॉस्फी ऑफ एजुकेशन आदि प्रमुख हैं।

नेल नौडिंग्स के अनुसार शिक्षा

नेल नौडिंग्स ने शिक्षा के महत्त्व को देखते हुए लोगों को शिक्षा के साथ दनिक रुप से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। इन्होंने शिक्षा के दर्शनिक पदों को उजागर करने हेतु 'फिलॉसफी ऑफ एजुकेशन' जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी। -इन्होंने देखभाल के सन्दर्भ में कुछ नैतिक कार्यों अर्थात् नैतिक शिक्षा की व्याख्या की है, जिसमें नैतिकता के लिए कुछ दायित्व की बात की गई है।

शिक्षा के सम्बन्ध में देखभाल करना, छात्र और शिक्षक के सम्बन्ध को दर्शाता है, न केवल देखभाल करने वाले व्यक्ति को। ये बताती है कि शिक्षण कार्य में शिक्षक द्वारा छात्रों के साथ मिलकर कार्य करने की आवश्यकता होती है।

www.studynoteducation.com

शिक्षक शिक्षा में भावना और व्यावसायिकता पर अपने विचार रखते हुए बताते हैं कि शिक्षण में व्यावसायिकता की भावना का विकास हुआ है, जो बढ़ती जा रही है। शिक्षण की चिन्ता के बारे में इन्होंने बताया कि पेशेवर निर्णय की भावना से बिगाड़ होगा। इसलिए ऐसी प्रवृत्तियों एवं अवसादो से बचना चाहिए। उनका मानना है कि एक अनुभवी शिक्षक की कार्य या व्यावसायिक अनुभव योग्यता उपयोगी सिद्ध हो सकती है, जो प्रेरणादायक बन सकती है।

इन्होंने शिक्षण को बच्चों के शिक्षा की देखभाल तथा उसके महत्त्व को पुनः व्यक्त किया है कि केयर मॉडल की नैतिकता में शिक्षा का उद्देश्य खुशी के आस-पास केन्द्रित है। इस सन्दर्भ में इनकी कृति "हैपीनेस एण्ड एजुकेशन' महत्त्वपूर्ण है। इनका मानना है कि इस घटक को शिक्षा में शामिल करने से न केवल हमारे छात्रों एवं शिक्षकों, बल्कि पूरे समुदाय के रुप में बातचीत की अनुमति देकर खुशी के घटकों को समझने में सहायता मिलती है। अतः हमें शिक्षकों और छात्रों के पूरे व्यक्तियों के रुप में बातचीत करने को दिया जाना चाहिए और साथ ही ऐसी नीतियों का विकास किया जाना चाहिए, जो स्कूल के पूरे समुदाय के रुप में मानता हो।

इस प्रकार इन्होंने शिक्षा के दार्शनिक, नैतिक तथा व्यावसायिकता के क्षेत्र में तथा सामाजिक एवं लोकतान्त्रिक क्षेत्र के विभिन्न पक्षों पर शिक्षा के महत्त्व को दर्शाने का प्रयास किया है।

www.studyofeducation.com

नेल नौडिंग्स की रचनाएँ

- केयरिंग : ए फेमिनिन एप्रोच इ एथिक्स, 1984
- वोमेन एण्ड एविल, 1989
- एजुकेशन फॉर इंटेलिजेन्स विलीफ और अनविलीफ, 1993
- एजुकेटिंग मोरल पीपुल, 2002
- हैपीनेस एण्ड एजुकेशन, 2003
- कम टू लव एण्ड हेट वार, 2011
- एजुकेशन एण्ड डेमोक्रेसी इन द 21वीं सेंचुरी, 2013

सावित्रीबाई फुले (Savitribai Phule)

सावित्रीबाई फुले एक प्रमुख भारतीय समाज सुधारक, शिक्षाविद् एवं कवयित्री थी। जिन्होंने 19वीं शताब्दी के दौरान महिला शिक्षा और सशक्तीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इनका जन्म 3 जनवरी, 1831 में महाराष्ट्र के एक किसान परिवार में हुआ था। सावित्रीबाई का विवाह मात्र 9 वर्ष की आयु में ज्योतिबाराव फुले के साथ हुआ। इन्होंने 1848 ई. में शिक्षा के प्रसार हेतु विद्यालय खोला। अपनी कोई सन्तान ना होने के कारण सावित्रीबाई ने ब्राह्मण विधवा के पुत्र को गोद ले लिया, जिसका उनके परिवार में कड़ा विरोध हुआ। फलस्वरुप इन्होंने अपने परिवार से सम्बन्ध तोड़ लिया।

महिलाओं एवं विधवाओं के लिए शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की तथा उन्हें इन्होंने महिला अधिकार एवं सम्मान के लिए संघर्ष करते हुए गरीब शिक्षा एवं विधवाओं का पुनर्विवाह के लिए प्रोत्साहित किया। इन्होंने अछूतों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। 1863

ई. में इन्होंने एक देखभाल केन्द्र की स्थापना की, जिसे बालहत्या प्रतिभानक गृह कहा जाता है, जो सम्भवत: भारत में स्थापित की गई पहली ऐसी संस्था थी, जहाँ गर्भवती ब्राह्मण विधवाएँ एवं बलात्कार पीड़िता अपने बच्चों को सुरक्षित स्थान पर रख सकती थीं। इस प्रकार इनके द्वारा विधवाओं की हत्या रोकने के साथ-साथ शिशु हत्या दर को भी कम किया जा सकने का प्रयास किया गया।

कवयित्री के रुप में सावित्रीबाई ने 2 काव्य पुस्तकें-काव्य फुले, बावनकाशी सुबोधरत्नाकर लिखीं। 1897 ई. में प्लेग फैलने के दौरान अपने पुत्र के साथ पुणे में गरीबों के लिए अस्पताल खोला। इस अस्पताल में गरीबों एवं अस्पृश्य माने जाने वाले लोगों का बिना किसी भेदभाव के इलाज किया गया। बीमारों की सेवा करने के दौरान वे स्वयं प्लेग से पीड़ित हो गई और 10 मार्च, 1897 में इनका निधन हो गया।

सावित्रीबाई फुले का शिक्षा में योगदान

सावित्रीबाई का मानना था कि भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों को समाप्त करने का एकमात्र माध्यम शिक्षा है। शिक्षा द्वारा लोगों को जागरुक करके ही समाज में व्याप्त रुढिबद्ध धारणाओं जाति प्रथा, छुआछूत आदि को समाप्त किया जा सकता है। समाज को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए शिक्षा रुपी दीपक को जलाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने 1848 ई. में मात्र 9 विद्यार्थियों को साथ लेकर स्कूल की शुरुआत की। धीरे-धीरे विद्यालय में छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। बाद में इन्होंने अस्पृश्य व अछूत माने जाने वाले निम्न जातियों के लोगों के लिए स्कूल शुरु किए।

1855 ई. में कृषि विद् मजदूरों एवं श्रमिकों के लिए रात्रि विद्यालय प्रारम्भ किए। विधवा महिलाओं को शिक्षा के लिए प्रोत्साहन हेतु शिक्षा केन्द्र की स्थापना की। इन्होंने बाल विधवाओं को शिक्षित कर मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया।

बच्चों की अनिवार्य शिक्षा के महत्त्व पर माता-पिता के बीच जागरुकता उत्पन्न करने के लिए अभिभावक-शिक्षक बैठकें आयोजित कराईं ताकि वे अपने बच्चों को नियमित रुप से स्कूल भेजें। बच्चों के स्कूल छोड़ने की दर एवं स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति को कम करने के लिए सावित्रीबाई ने स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए वजीफा देने की प्रथा शुरु की। वह युवा लड़कियों की प्रेरणा बनी तथा उन्हें लेखन, पेण्टिंग, कला आदि क्षेत्रों में प्रोत्साहित किया। महिला शिक्षा के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए वर्ष 1852 में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने इन्हें सम्मानित किया।

केन्द्र व महाराष्ट्र सरकार ने इनके सम्मान में कई पुरस्कारों की स्थापना की। इनके सम्मान में डाक टिकट भी जारी किया गया। सावित्रीबाई आधुनिक शिक्षा प्रणाली की प्रथम महिला अध्यापिका थीं तथा इन्हें आधुनिक मराठी कविता का महिला प्रवर्तक माना जाता है। सावित्रीबाई फुले पुरस्कार महाराष्ट्र में सरकार द्वारा महिला समाज सुधारकों को प्रदान किया जाता है।

सावित्रीबाई फुले की प्रमुख रचनाएँ

- काव्य फुले
- बावनकाशी सुबोधरत्नाकर

www.studyofeducation.com

भारतीय संविधान में प्रतिष्ठापित राष्ट्रीय मूल्य

26 जनवरी, 1950 को भारतवर्ष में संविधान लागू हुआ। इस संविधान का निर्माण देश के विभिन्न प्रान्तों की विधानसभाओं से चुने गए प्रतिनिधियों तथा देश रजवाड़ों (रियासत) के प्रतिनिधियों द्वारा गठित संविधान सभा ने किया। संविधान में उन विधियों को स्पष्ट किया गया, जो इस प्रकार के समाज के निर्माण में सहायता कर सकें, जहाँ सभी नागरिकों को समान अधिकार न्याय, स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र एवं समानता आदि मूल्यों को सम्पूर्ण देश में लागू कर सकें। हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की कठिन चुनौतियों को स्वीकार करते हुए एक ऐसे जीवन्त दस्तावेज को बनाने में सफलता प्राप्त की जिसमें वे सभी तत्व शामिल थे, जो एक देश के कुशल प्रशासन चलाने तथा लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना करने के लिए आवश्यक थे, जिसके द्वारा सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हैं।

संविधान के आदर्श (Ideal of Constitution)

www.studyofeducation.com

भारतीय संविधान में न्याय, समानता, स्वतन्त्रता तथा बन्धुत्व आदि मूल्यों को सम्मिलित किया गया है तथा यह स्पष्ट किया गया है कि कानून की दृष्टि में सभी लोग समान हैं तथा किसी को भी न्याय से वंचित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों की अभिव्यक्ति तथा अपने धर्म का अनुसरण करने की स्वतन्त्रता है, जबकि संविधान में वर्णित न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व जैसे आदर्शों को उस समय तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि शिक्षा के द्वारा नागरिकों में इन आदर्शों के महत्त्व से सम्बन्धित समझ उत्पन्न ना हो जाए। शिक्षा के विशेष सन्दर्भ में संविधान में प्रतिष्ठापित राष्ट्रीय मूल्यों-समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, न्याय, स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, समानता एवं स्वाधीनता आदि का संक्षिप्त विवरण अग्रलिखित है

समाजवाद

समाजवाद (Socialism) का लक्ष्य है-वर्गविहीन समाज की स्थापना। समाजवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है कि वह बालक को इस योग्य बना दे कि वह अपने स्वरुप को ठीक से पहचान सके। वह अपने हाथ और मस्तिष्क का प्रयोग करके अपनी इच्छा के अनुरुप अपने पर्यावरण की रचना कर सके। पाठ्यक्रम में से परम्परागत रुढ़िगत बातों को हटा दिया जाए तथा नवीन दृष्टिकोण एवं विज्ञान के अध्ययन पर बल दिया जाए। भारतीय संविधान की धारा 36 से 51 तक नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य रचनात्मक शक्तियों का विकास करना है। अत: शिक्षण विधियों में रचनात्मकता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। छात्रों को इस योग्य बनाना चाहिए कि वे अपने भौतिक वातावरण पर अधिकार कर सकें। शिक्षण विधि यथार्थवादी दृष्टिकोण तथा श्रम पर आधारित होनी चाहिए।

भारतीय संविधान तथा समाजवाद

"हम भारत में वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं।" यह कथन डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का था। उन्होंने कहा था कि संविधान सभा का सर्वोच्च कर्तव्य है कि वह 'वर्गहीन समाज' के उद्देश्य को सामने रखकर संविधान का निर्माण करें। संविधान सभा ने यह बात स्वीकार करते हुए भारतीय संविधान की धारा 38 तथा 39 में लोकतन्त्रीय समाजवादी व्यवस्था के लिए प्रावधान किए।

धारा 38 के अनुसार, "राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था करेगा, जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय, राष्ट्रीय जीवन की सभी समस्याओं को अनुप्राणित भरसक कार्य साधक रुप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।"

धारा 39 के अनुसार,

- राज्य अपनी नीति को विशेष रुप से ऐसे संचालन करेगा कि सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने के अवसर मिलेंगे।
- देश के साधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार बँटा होगा, जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रुप से साधन हो।
- आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि धन तथा उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी केन्द्रण न हो।
- पुरुषों तथा स्त्रियों, दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो। . राज्य प्रयास करे कि सभी को आजीविका के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हों।

धर्मनिरपेक्षता

42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के तहत भारतीय संविधान की उद्देशिका में समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष (पन्थनिरपेक्ष) शब्द जोड़े गए। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता से तात्पर्य है कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा। राज्य में सभी धर्मों एवं पंथों को समान आदर दिया जाएगा, सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाएगी तथा राज्य किसी भी धर्म का विरोधी नहीं होगा।

भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता सम्बन्धी प्रावधान

संविधान के निम्नलिखित प्रावधान धर्मनिरपेक्षता के सूचक हैं के

- धारा 25 धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार
- धारा 26 धार्मिक संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार
- धारा 27 धर्म के नाम पर कर लगाने पर प्रतिबन्ध
- धारा 28 (1) धार्मिक शिक्षा का सरकारी शैक्षिक संस्थाओं में निषेध
- धारा 28 (3) गैर-सरकारी शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा परन्तु इच्छा के विरुद्ध नहीं।

www.studyofeducation.com

- धारा 30 (2) शैक्षिक संस्थाओं को अनुदान देते समय कोई भेदभाव नहीं।
- धारा 36 (1) धार्मिक अल्पसंख्यकों को शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित करने तथा प्रशासन करने का अधिकार।

धर्मनिरपेक्ष शिक्षा के उद्देश्य

धर्मनिरपेक्ष राज में शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर निम्नांकित उद्देश्यों पर बल दिया गया है

- मानवीय गुणों का विकास
- व्यापक दृष्टिकोण का विकास
- आध्यात्मिकता का विकास
- सकारात्मक नैतिकता का विकास

भारत में सभी सरकारी तथा सहायता प्राप्त विद्यालयों की गणापता तथा व्यवस्था धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त पर की जा रही है। इन सैनिक माथे बिना किसी धार्मिक भेदभाव के प्रवेश दिया जाता है। कशा जो पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है, उनमें सभी धार्मिक सिद्धान्तों का ध्यान रखा आता है। शैक्षिक संस्थाओं का वातावरण उदार बनाने पर बल दिया जाता है तथा शिक्षकों की आचार संहिता में धर्मनिरपेक्षता पर बल दिया जाता है।

www.studyofeducation.com

न्याय

न्याय (Justice) के मूल अधिकार की अवधारणा अत्यन्त विस्तृत है। यह सब व्यक्तियों के बीच में तथा राज्य के बीच में न्यायपूर्ण सम्बन्धों की ओर केन्द्रित है। संविधान में न्याय को निम्नलिखित भागों में बाँटा गया है

सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय से तात्पर्य है समाज में सबको बराबरी का स्थान। यह प्रत्येक व्यक्ति को समाज में उचित स्थान प्राप्त करने का विश्वास दिलाता है। यह समान स्तर प्राप्त करने के लिए जो भी कठिनाइयाँ आती हैं, उन्हें दूर करने की प्रेरणा देता है।

सामाजिक न्याय मूल अधिकार को प्रभावशाली बनाने के लिए संविधान में यह धारा प्रस्तुत की गई है कि "राज्य किसी भी नागरिक में भेदभाव, धर्म, प्रजाति, लिंग भेद या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा न ही इनमें से किसी के आधार पर कोई रुकावट या अयोग्यता जन आमोद-प्रमोद, रेस्तराँ, दुकान, होटल, कुओं, तालाबों एवं नहाने के घाटों इत्यादि के उपयोग पर लगाएगा। किसी

व्यक्ति को अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने को बाध्य नहीं किया जाएगा। केवल राज्य ही अनिवार्य सेवा के लिए किसी को बाध्य कर सकेगा, जैसा कि युद्ध के समय सैन्यकरण और ऐसा केवल राष्ट्र के लिए बिना किसी प्रजाति या जाति के भेदभाव के होगा। कोई भी नागरिक धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या निवास स्थान के आधार पर राज्य की सेवा में नियुक्ति के लिए अयोग्य नहीं समझा जाएगा।" सामाजिक न्याय यह भी स्पष्ट करता है कि यदि कोई भी अयोग्यता पिछड़े वर्गों पर जबरन लगाई जाएगी, तो यह कानून के खिलाफ होगी। हमारे संविधान ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था में लाने की चेष्टा की है, इसमें अस्पृश्यता को कानून द्वारा रोक देने का प्रावधान किया गया है।

आर्थिक न्याय

आर्थिक न्याय का संविधान प्रदत्त मूल अधिकार यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक नागरिक को सम्पत्ति अर्जित करने का, उसे रखने का और उपयोग करने का अधिकार है। वह कोई भी व्यापार व व्यवसाय अपने विकल्प के अनुसार अपना सकता है। व्यवसाय या व्यापार की स्वतन्त्रता का स्पष्ट रूप से यह तात्पर्य है कि व्यक्ति को इस बात के अवसर मिलने चाहिए कि वह अपनी आवश्यकता के अनुसार किसी भी प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त कर सके। शैक्षिक दृष्टिकोण से इसका अभिप्राय यह है कि राज्य किसी को कोई वृत्ति के चयन के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

राजनैतिक न्याय

संविधान ने प्रत्येक व्यक्ति जो 18 वर्ष की आयु पूरी कर चुका है तथा भारत का नागरिक है उसे मतदान का अधिकार प्रदान किया है। वह राज्य की विधानसभा पंचायत/स्थानीय निकाय तथा लोकसभा के लिए अपने मनपसन्द उम्मीदवार को चुन सकता है। यह प्रावधान देश में शिक्षा संगठन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। संविधान ने यह अधिकार तो मतदाता को दे दिया है, परन्तु इस अधिकार का सदुपयोग कैसे किया जाए यह मतदाता पर है। निर्भर करता अशिक्षित तथा ज्ञानरहित भतदाता को फुसलाया भी जा सकता है। इसी कारण हमारे देश में मतदाता को बहलाकर, भड़काकर, खरीदकर, लालच देकर तथा उसे धमकाकर वोट डलवा लिया लिया जाता है। इन दोषों को शिक्षा के प्रसार के द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

www.studyofeducation.com

स्वतन्त्रता

संविधान ने प्रत्येक नागरिक को स्वतन्त्रता (Liberty) का अधिकार दिया है, संगठन एसोसिएशन बनाने का अधिकार है। सारे देश में स्वतन्त्र भ्रमण करने का किसी भी देश के भाग में रहने का स्थान चुनने का अधिकार है। उसे अपनी भावनाएँ अभिव्यक्त करने का अधिकार दिया गया है। अपनी निजी संस्कृति, धर्म का संवर्द्धन करने का अधिकार है। किसी को अपने धर्म के कारण किसी सार्वजनिक संस्था में प्रयोग से रोका नहीं जा सकता।

संविधान में स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए तथा शोषण से रक्षा के लिए अनेक अधिकार भारत के नागरिकों को दिए हैं, किन्तु इनका उपयोग उचित रूप से तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि व्यक्ति उनको उस भावना से ग्रहण करे जिस भावना से वे प्रदान किए गए हैं।

इसके लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह सत्य है कि वाक् अभिव्यक्ति का अधिकार लोगों को अपने विचार प्रकट करने के लिए दिया गया है, किन्तु जब कोई व्यक्ति इनका उपयोग राष्ट्र की एकता व अखण्डता के खिलाफ, सामाजिक सद्भाव के खिलाफ करता है, तो इनका दुरुपयोग माना जाता है। इस प्रकार के दुरुपयोग रोकने के लिए अपने नागरिकों को शिक्षित करना होगा।

लोकतन्त्र (जनतन्त्र)

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के अनुसार, "लोकतन्त्र (Democracy) जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन है।" यह परिभाषा जनतन्त्र की परम्परागत धारणा है। इस परिभाषा में जनता तथा राज्य के सम्बन्धों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। जनतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि इसके सिद्धान्तों तथा मूल्यों का प्रयोग जीवन के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षिक सभी क्षेत्रों में किया जाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया गया तो लोकतन्त्र असफल हो जाएगा।

आधुनिक समय में लोकतन्त्र का उपयोग निम्नलिखित क्षेत्रों में किया जाता है

- राजनैतिक लोकतन्त्र जनता द्वारा जनता का प्रशासन।
- आर्थिक लोकतन्त्र जनता द्वारा जनता के लिए धन उत्पत्ति तथा वितरण।
- सामाजिक लोकतन्त्र जाति, धर्म, वर्ग तथा लिंग के आधार पर मनुष्यों में कोई भेद नहीं होना।

शिक्षा का लोकतान्त्रिक प्रारुप

लोकतान्त्रिक शिक्षा का अर्थ है-शिक्षा पर लोकतान्त्रिक मूल्यों का प्रभाव। शिक्षा में लोकतान्त्रिक विचारधारा का प्रभाव निम्नलिखित पर पड़ता है

समान अवसर प्रदान करना तथा व्यक्तिगत विभिन्नता का आदर करना

- सार्वभौमिक तथा अनिवार्य शिक्षा
- नि:शुल्क शिक्षा
- प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था
- बाल-केन्द्रित शिक्षा
- शिक्षण विधियाँ व्यक्तिगत अध्ययन का महत्त्व
- सामाजिक क्रियाएँ
- छात्र संघ
- शिक्षक के व्यक्तित्व का सम्मान
- विद्यालय-प्रशासन

www.studyofeducation.com

- बुद्धि परीक्षाएँ
- बालक का शारीरिक स्वास्थ्य
- विद्यालय
- शिक्षा के समस्त साधनों में सहयोग

लोकतान्त्रिक शिक्षा के उद्देश्य

लोकतान्त्रिक शिक्षा के लक्ष्य इस प्रकार हैं

- अच्छी रुचियों का विकास करना।
- लोकतान्त्रिक मूल्यों का विकास करना
- व्यावसायिक कुशलताओं का विकास विकास करना
- अच्छी आदतों का चिन्तन शक्ति का विकास करना
- सामाजिक दृष्टिकोण का विकास करना
- नागरिकता के गुणों का प्रशिक्षण देना
- व्यक्तित्व का सुसंगत विकास करना
- नेतृत्व के गुणों का विकास करना तथा
- राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास करना।

www.studyoreducation.com

समानता

सामाजिक सन्दर्भो में समानता (Equality) का अर्थ किसी समाज की उम स्थिति से है, जिसमें उस समाज के सभी लोग समान अधिकार या प्रतिष्य रखते हैं। यह अधिकार देश के कानून के समक्ष सबको बराबर मान्यता देत है। प्रत्येक नागरिक को कानून का संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है। कानून किसी भी नागरिक के साथ जाति वर्ग या धर्म के आधार पर भेदभार नहीं कर सकता। कानून सब के लिए समान है। समानता का अधिकार उ समय ही प्रभावपूर्ण होता है जब इसे व्यवहार में लाने वाले योग्य हो। योग्यता शिक्षा से ही आ सकती है। यह अधिकार व्यक्ति की गरिमा राष्ट्र की एकता को मान्यता देता है।

स्वतन्त्रता, समानता तथा न्याय के अधिकार संविधान में दिए गए हैं, किन एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता अन्य की स्वतन्त्रता के बीच में बाधा उत्पन्न करे, इसलिए कुछ सीमाएँ इन अधिकारों को व्यवहार में लाने पर जनहित के दृष्टिकोण से लगा दी गई हैं, जबकि मूल अधिकारों के प्रयोग में दूसर व्यक्तियों की स्वतन्त्रता में रुकावट पड़ती है या वह समाज विरोधी है या वह अनैतिक है तो उन्हें व्यवहार में लाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारे व्यक्तित्व की मान-मर्यादा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, परन्तु कोई व्यक्ति इसकी आड़ लेकर राष्ट्रीय सद्भाव व बन्धुत्व की भावना को क्षति नहीं पहुँचा सकता।

शिक्षा का कार्य नई पीढ़ी को इस बात से अवगत कराना है। इसके साथ ही शैक्षिक अवसरों की अवधारणा का निहितार्थ विद्यार्थियों को योग्यता अनुरूप संसाधन उपलब्ध कराना होता है। बन्धुत्व हमारे संविधान का एक अभिन्न अंग है। अतएव वे देश में इसके विकास के प्रयत्न करें तथा ऐसे कार्य : करें, जिससे बन्धुता की भावना प्रभावित हो।

इस प्रकार भारतीय संविधान क्षेत्रवाद, जातिवाद तथा किसी विशेष धर्म, ईश्वर तथा मोक्ष के सन्दर्भ में कोई सहमति नहीं देता है, जिससे भारतीय एकता को आघात पहुँचे।

स्वाधीनता

स्वाधीनता या स्वतन्त्रता (Liberty) से आशय व्यक्ति द्वारा अपने क्रियाकलापों का स्वयं द्वारा नियन्त्रण से है अर्थात् किसी राज्य पर राज्य के निवासियों का शासन या स्वायत्त शासन। भारत ब्रिटेन का लम्बे समय तक | उपनिवेश रहा था। इसके पश्चात् वर्ष 1947 में लम्बे संघर्ष के पश्चात्। स्वायत्त शासन को प्राप्त किया।

उल्लेखनीय है कि औपनिवेशिक शासन के दौरान भी शिक्षा के क्षेत्र में नीतियाँ बनाई गईं तथा स्वतन्त्रता के पश्चात भी बनाई गई, जो वर्तमान में जारी हैं। इनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है

ब्रिटिश काल के दौरान भारत की समस्त शिक्षा नीतियाँ ब्रिटिश विद्वानों तथा ब्रिटिश प्रशासन की देखरेख में बनाई जाती थीं, जिनमें 1518 का आज्ञा-पत्र, 1833 का आज्ञा-पत्र, लॉर्ड मैकाले का अधोगामी निस्पन्दन सिद्धान्त, वुड घोषणा पत्र 1854, स्टेनली का आदेश पत्र, भारतीय शिक्षा आयोग (हण्टर कमीशन) 1882, भारतीय विश्वविद्यालय आयोग 1902, हर्टाग समिति 1929, सार्जेण्ट रिपोर्ट 1944 आदि प्रमुख हैं, परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय शिक्षा नीति विधान में वर्णित मूल्यों समानता, धर्मनिरपेक्षता एवं । स्वतन्त्रता आदि मूल्यों से प्रभावित हुई तथा स्वाधीनता प्राप्त करने के पश्चात भारत में शिक्षा के विकास एवं सुधार के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया। जिनमें कुछ प्रमुख समितियाँ विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधाकृष्णन आयोग, 1948), माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर आयोग, 1952), कोठारी आयोग (1964), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), यशपाल समिति (1992), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या अधिनियम (2005) आदि प्रमुख हैं। जिन्होंने शिक्षा के विकास एवं सुधार में विशेष । योगदान दिया है तथा भारत को प्रगति के पथ पर अग्रसर किया है।

वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा में कम्प्यूटर साक्षरता, गणित एवं विज्ञान, माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण, प्रौद्योगिक एवं प्रबन्ध शिक्षा, स्त्री शिक्षा, विकलांग एवं प्रौढ़ शिक्षा, राष्ट्रीय परीक्षण सेवा, नवोदय विद्यालय, अल्संख्यकों की शिक्षा आदि मूल्यों को सम्मिलित किया गया है।

भारतीय संविधान में शिक्षा सम्बन्धी अनुच्छेद

अनुच्छेद 21 (A) शिक्षा का अधिकार, 6 14 वर्ष के बालकों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा।

www.studyofeducation.com

अनुच्छेद 28 (1) राज्य पोषित विद्यालय। संस्थान में धार्मिक शिक्षा का निषेध।

अनुच्छेद 46 राज्य जनता के निर्बल वर्गों; विशेषकर अनुसूचित जातियों के शिक्षा सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय व शोषण से रक्षा करेगा।

अनुच्छेद 29 (1) भारत के निवासियों को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति के संवर्द्धन का अधिकार। अनुच्छेद 29 (2) राज्य पोषित विद्यालय। संस्थानों में नागरिक को धार्मिक/जातिगत प्रजातिगत/भाषा आदि के आधार पर भेदभाव नहीं होगा।

अनुच्छेद 30 धर्म या भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा संस्थानों की स्थापना कर सकेंगे। अनुच्छेद 41 राज्य कुछ दशाओं में दुर्बल वर्ग के लिए शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद 45 राज्य सभी बालकों के लिए छः वर्ष की आयु पूरी करने तक प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखदेख और शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेगा।

अनच्छेद 51 (क) यदि माता-पिता या संरक्षक हैं, छः वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करें। .

अनुच्छेद 250 (A) प्रत्येक राज्य और प्रत्येक स्थानीय पदाधिकारी भाषायी अल्पसंख्यकों के बच्चों को प्राथमिक स्तर पर मातृ-भाषा में शिक्षा प्राप्त करने की पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 351 हिन्दी भाषा की वृद्धि करना, उसका विकास करना व उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा, जिससे यह भारत की मिश्रित संस्कृति के विभिन्न अंगों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।

www.studyofeducation.com